Dr. C.V. Raman University
Kargi Road, Kota, BILASPUR, (C. G.),
Ph. : +07753-253801, +07753-253872
E-mail : info@cvru.ac.in | Website : www.cvru.ac.in

World History (18 and 19 Century) –I

Centre for Distance & Online Education

Faculty of Arts

World History
(18 and 19 Century) –I

1MAHIS4

DR. C.V. RAMAN UNIVERSITY
Chhattisgarh, Bilaspur
A STATUTORY UNIVERSITY UNDER SECTION 2(F) OF THE UGC ACT

1MAHIS4
World History (18 and 19 Century) –I

1MAHIS4

World History (18 and 19 Century) –I

Credit- 4

Subject Expert Team

Dr. Ramratan Sahu Associate Professor Dr. C. V. Raman University Kargi Road, Kota, Bilaspur (C.G.)

Dr. Anju Tiwari Associate Professor Dr. C. V. Raman University Kargi Road, Kota, Bilaspur (C.G.)

Dr. Mahesh Kumar Shukla Associate Dr. C. V. Raman University Kargi Road, Kota, Bilaspur (C.G.)

Dr. Manju Sahu Assistant Professor Dr. C. V. Raman University Kargi Road, Kota, Bilaspur (C.G.)

Dr. Krishna Kumar Pandey Associate Professor Dr. C. V. Raman University Kargi Road, Kota, Bilaspur (C.G.)

Dr. Pravin Kumar Mishra Professor Department of Social Science (History) at GGU, Bilaspur (C.G.)

Dr. Mamta Garg Dean Rajive Gandhi Govt.P.G. college Ambikapur(C.G.)

Dr. Ranjeet Kumar Barik Assistant Professor**,** Govt. Girls college Near Govt. Dist. Library Raigarh (C.G.)

Course Editor:

Dr. Pradeep Shukla Professor, Department of History, Guru Ghasidas, University Koni Bilaspur (C.G.).

Unit Written By:

1. Dr. Ramratan Sahu

Associate Professor, Dr. C. V. Raman University, Bilaspur (C.G.)

2. Dr. Manju Sahu

Assistant Professor, Dr. C. V. Raman University, Bilaspur (C.G.)

3. Dr. Rita Bajpai

Assistant Professor, Dr. C. V. Raman University, Bilaspur (C.G.)

Warning: All rights reserved, No part of this publication may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior written permission from the publisher. Published by: Dr. C.V. Raman University Kargi Road, Kota, Bilaspur, (C. G.)

Edition : March 2024

Published by: Dr. C.V. Raman University Kargi Road, Kota, Bilaspur, (C. G.), Ph. +07753-253801,07753-253872 E-mail: info@cvru.ac.in, Website: www.cvru.ac.in

अध्याय	पृष्ठ क्रमांक
यूनिट–I	
1. विश्व में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का उदय एवं पुनर्जागरण युग *(The Emergence of the Scientific view of the World & Age of Enlightenment)*	01
2. यूरोप में वैज्ञानिक एवं कृषि क्रांति *(Scientific and Agriculture Revolution in Europe)*	39
यूनिट–II	
3. औद्योगिक क्रांति और नए सामाजिक वर्गों का उदय *(Industrial Revolution and Emergence of new Social Classes)*	45
4. अमेरिका का स्वतंत्रता युद्ध : कारण और परिणाम *(The American War of Independence : Causes and Impact)*	58
यूनिट–III	
5. फ्रांस की क्रांति *(The French Revolution)*	69
6. राष्ट्रीय सभा और डायरेक्ट्री *(National Assembly and Directory)*	98
यूनिट–IV	
7. नेपोलियन बोनापार्ट का युग *(The Age of Napolean Bonaparte)*	121
8. वियेना कांग्रेस मेटरनिख युग और यूरोपीय संहति *(The Vienna Congress, Age of Meternich & the Concert of Europe)*	138
यूनिट–V	
9. पश्चिमी यूरोप में उदारवाद का उदय और लोकतंत्र *(The Growth of Liberalism and Democracy in Western Europe)*	154

●●●

अध्याय–1 विश्व में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का उदय और पुनर्जागरण युग

(THE EMERGENCE OF THE SCIENTIFIC VIEW OF THE WORLD & AGE OF ENLIGHTENMENT)

NOTES

इकाई अध्याय की रूपरेखा (इकाई–1)

1.0 उद्देश्य

1.1 परिचय

1.2 सामंतवाद का पतन

1.3 सामंतवाद के पतन के कारण

1.4 आधुनिक युग का प्रारंभ

1.5 यूरोप के आधुनिक युग की विशेषताएँ

1.6 पुनर्जागरण

1.7 कलात्मक विकास

1.8 प्रमुख चित्रकार

1.9 राष्ट्रीय साहित्य का विकास

1.10 धार्मिक विशेषताएँ

1.11 राजनीतिक और सामाजिक विकास

1.12 सामाजिक परिवर्तन

1.13 वैज्ञानिक अविष्कार एवं नयी खोजें

1.14 इटली में पुनर्जागरण

1.15 इंग्लैंड में पुनर्जागरण

1.16 धर्म सुधार आंदोलन

1.17 धर्म सुधार आंदोलन के कारण

1.18 स्विट्जरलैंड में धर्म सुधार आंदोलन

1.19 इंग्लैंड में धर्म सुधार आंदोलन

1.20 इंग्लैंड में धर्म सुधार आंदोलन के कारण

1.21 प्रति धर्म सुधार आंदोलन

1.22 सारांश

1.23 अभ्यास प्रश्न

1.24 संदर्भ ग्रन्थ सूची

NOTES

1.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् इस योग्य हो सकेंगे कि–

1. **विश्व इतिहास के समसामयिक घटनाक्रम से परिचित हो सकेंगे।**
2. पुनर्जागरण युग की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
3. सामंतवाद के पतन को जान सकेंगे।
4. तात्कालीन समय की आर्थिक राजनैतिक एवं सामाजिक स्थिति का अवलोकन कर सकेंगे।

1.1 परिचय

यूरोप के इतिहास का मध्यकाल सामंतवादी व्यवस्था का युग माना जाता है। सामंतवादी पद्धति ने जीवन की गतिशीलता को स्थिर करके रखा हुआ था। अपरिवर्तनवादी मूल्यों का विकास इस पद्धति की विशेषता थी। सामंतवाद का अर्थ था **"राजा द्वारा जो जमीन धनी सरदार को दी जाती थी उसे 'यूड' अथवा 'जागीर' कहा जाता था। धनी सरदार सामंत या जागीरदार कहलाने लगे। इनके अधीन छोटे जमींदार तथा उसके नीचे किसान एवं अंत में भूमिहीन अर्धदास होते थे। इस प्रकार राजा से लेकर अर्धदास तक सम्बन्धों की एक कड़ी बनी, जिसका आधार भूमि थी। इस कड़ी का सबसे महत्वपूर्ण एवं शक्तिशाली व्यक्ति सामंत होता था।"**

मार्क ब्लाक ने यूरोपीय सामंतवाद की कुछ विशेषताएँ इस प्रकार बताई हैं – जागीर प्रथा, अधीन कृषक वर्ग, आज्ञापालन तथा संरक्षण रूपी बन्धन, विशिष्ट योद्धावर्ग की प्रभुसत्ता और सत्ता का विखण्डन इत्यादि।

बीच के अनुसार सामंतवाद का अर्थ था – **"प्रत्येक व्यक्ति को अपने से नीचे वर्ग वाले का शोषण करने का अधिकार प्राप्त था और साथ–साथ अपने से ऊपर वाले व्यक्ति से शोषित होने का भी।"**

सामंतवादी व्यवस्था में शक्ति का मुख्य केन्द्र राजा नहीं सामंत होते थे। ये अपनी जागीर के एक तरह से राजा ही होते थे। ये सेना रखते थे तथा राजा प्रायः सामंतों की सेना पर निर्भर होता था। आय का प्रमुख स्रोत भी इनके पास होता था।

1.2 सामंतवाद का पतन (The end of Feudalism)

सामंतों के भोगविलास पूर्ण जीवन को देखकर लोगों में असंतोष उत्पन्न हुआ और वे अपने शोषकों (सामंतों) के विरुद्ध बगावत की भावना से भर गये।

सामंतवादी व्यवस्था में कई दोष उत्पन्न हो गये जिनके कारण सामंतवादी तंत्र का नैतिक पतन हो गया और सामंतों का वर्चस्व धीरे–धीरे समाप्त हो गया।

1.3 सामंतवाद के पतन के कारण (CAUSES OF BREAKDOWN OF THE FEUDALISM)

(1) आपसी लड़ाइयाँ,

(2) नये हथियार तथा बारूद का आविष्कार,

(3) किसानों का विद्रोह,

(4) व्यापार–वाणिज्य का विकास,

(5) वस्तुविनिमय की अपेक्षा मुद्रा का प्रसार,

(6) पूँजीवाद का उदय,

(7) राजाओं का स्थायी सेना रखना प्रारंभ करना,

(8) राजाओं तथा व्यापारी वर्ग की साँठगाँठ,

(9) पुनर्जागरण तथा धर्मसुधार आंदोलनों का होना,

(10) राष्ट्रीय राज्यों का उदय,

(11) धर्म युद्धों का प्रभाव,

(12) नये नगरों का विकास,

(13) मध्यमवर्ग की महत्वाकांक्षा।

(1) आपसी लड़ाइयाँ तथा धर्मयुद्ध

सामन्तवाद के पतन का महत्वपूर्ण कारण है उनकी आपसी लड़ाइयाँ एवं यूरोप के धर्मयुद्ध। सामंत लोग अपनी सेना रखते थे और देश की रक्षा के लिए मिलकर लड़ते थे परन्तु उनका व्यक्तिगत्त अहं और वीरता प्रदर्शन की भावना उन्हें आपसी संघर्षों में भी उलझाये रखती थी। आपसी लड़ाइयों में धन–जन दोनों की हानि होती थी। फसलें नष्ट हो जाती थीं। बहुत सारे सैनिक मारे जाते थे। इससे आम जनता की परेशानियाँ बढ़ जाती थीं और सामंतों की स्थिति कमजोर हो जाती थी।

यूरोप में दो सौ वर्षों तक धर्म युद्ध चला। 13वीं शताब्दी के अन्त तक यह धर्म युद्ध चलता रहा। इन युद्धों में बहुत सारे सामंत तबाह हो गये।

धर्म युद्ध समाप्त होते ही इंग्लैंड और फ्रांस के सामंतों के बीच युद्ध छिड़ गया जो लगभग एक शताब्दी तक चला। इसके बाद इंग्लैंड में **'गुलाबों का युद्ध'** प्रारंभ हो गया। इस युद्ध से इंग्लैंड के सामंतों को बहुत हानि हुई। इस युद्ध से सामंतवाद पर दो तरह से प्रभाव पड़ा। एक तो युद्धों में सामंतों की शक्ति क्षय हुई दूसरी इससे राजाओं को हस्तक्षेप का अवसर मिला और राजा की शक्ति और प्रभाव बढ़ गया। युद्धों से आम जनता बहुत परेशान हुई तथा उसके अन्दर सामंतों के प्रति घृणा पैदा हुई। इनकी आपसी लड़ाइयों से शक्तिशाली राज्य की अवधारणा को बल मिला। कहा जाता है कि यदि इंग्लैंड के यार्कशायर और लंकास्टर वंश के सामंत आपस में न लड़ते तो वहाँ ट्यूडर वंश का उदय नहीं होता।

(2) नये हथियार गोला–बारूद तथा बन्दूकों का आविष्कार

सामंतों की आपसी लड़ाइयाँ तथा युद्ध परम्परागत तरीके के हथियारों से होते थे, परंतु जैसे–जैसे यूरोप में बन्दूक तथा गोला–बारूद का प्रवेश हुआ सामंतों का सामरिक महत्व घट गया। उनके अभेद्य किले अब बारूद के आविष्कार से अभेद्य नहीं रहे। मंगोलों ने बारूद को यूरोप में पहुँचाया तथा मध्ययुग के अंत तक बन्दूक के प्रयोग से पैदल सेना को प्रमुखता मिली। सामंतों की घुड़सवार सेना का महत्व कम हो गया। राजा लोग पैदल सेना स्वयं रखने लगे जो बन्दूकों से लैस होती थी।

(3) कृषकों का विद्रोह

सामंतवाद की स्थिति कमजोर करने में यूरोप के कृषकों के विद्रोह का योगदान महत्वपूर्ण है। सम्पूर्ण सामंती व्यवस्था कृषकों के शोषण पर निर्भर करती थी। इस शोषण के कारण कृषकों में भारी असंतोष था। चौदहवीं सदी में इस असंतोष ने भयंकर विद्रोह की शक्ल अख्तियार कर

NOTES

ली। इसी बीच यूरोप में महामारी फैल गई। इसे **'काली मौत'** कहा जाता है। इस महामारी से यूरोप की आधी आबादी नष्ट हो गई। इस कारण अब मजदूरों तथा दासों की संख्या बहुत कम हो गई। अब किसानों की मजदूरी बढ़ना स्वाभाविक था, परंतु इग्लैंड में सामंतों ने मजदूर कानून के तहत मजदूरी निश्चित कर दी इससे अधिक मजदूरी किसी को नहीं मिल सकती थी। इस स्थिति के विरुद्ध 1381 ई. में **वाट टाइलर** के नेतृत्व में किसानों ने विद्रोह किया। इसमें उन्होंने माँग रखी कि **'मजदूर कानून'** खत्म हो, लगान दर सस्ती की जाए तथा **कम्मी प्रथा** समाप्त हो। विद्रोह को निर्दयतापूर्वक दबा दिया गया। इसी तरह का विद्रोह फ्रांस में 1858 में हुआ था जिसे **'जैकरी विद्रोह'** कहते हैं। इन विद्रोहों में किसानों की स्थिति मजबूत थी। उनके पास आजीविका के साधन चुनने का विकल्प था। इन विद्रोहों से सामंत व्यवस्था को क्षति पहुँची तथा किसानों की मुक्ति का रास्ता बन गया।

(4) व्यापार–वाणिज्य का विकास

सामंतवाद का आर्थिक आधार कृषि तथा लगान था। जागीर (यूड) के शासक के रूप में वे इन्हीं आधारों पर अपना वजूद बनाये रखे थे। चौदहवीं, पंद्रहवीं शताब्दी में कई कारणों से वाणिज्यिक क्रांति ने व्यापार को बढ़ावा दिया। विदेशों से सम्पर्क, शहरों का विकास तथा वैज्ञानिक आविष्कारों ने व्यापार के विकास को प्रोत्साहन दिया। व्यापार के विकास ने नए व्यापारी वर्ग के उदय का मार्ग प्रशस्त किया। व्यापारिक वर्ग के पास पैसा था। यह पैसा वह राजाओं को सहायतार्थ देने लगा। इससे सामंतवाद के पतन में सहयोग मिला। सामंतों की कमजोर आर्थिक स्थिति ने उनकी राजनैतिक तथा सैनिक शक्ति को भी कमजोर किया।

(5) मुद्रा प्रसार एवं पूँजीवाद का उदय

व्यापार के विकास ने मुद्रा के प्रसार को प्रोत्साहन दिया। मुद्रा के चलन से सामंतों और किसानों के बीच का सम्बन्ध टूटने लगा। पहले वस्तु के बदले वस्तु के साथ–साथ सेवाओं का आदान–प्रदान होता था। सामंत लोग किसानों से अनाज के बदले काम कराते थे। परंतु मुद्रा के प्रसार ने उन्हें कार्य के बदले लगान के रूप में सेवा के स्थान पर 'मुद्रा' लेने को प्रेरित किया। इससे किसानों और सामंतों के बीच स्वामी–सेवक का रिश्ता खत्म होने लगा। इस कारण सामंतों की राजनीतिक शक्ति में कमी आयी। अपनी जागीरों से अधिक से अधिक पैसा (मुद्रा) कमाने के प्रयास में सामंतों ने कृषि का व्यवसायीकरण करना प्रारंभ किया। इससे **मैनर (जागीर)** व्यवस्था धीरे–धीरे समाप्त होने लगी। जैसे–जैसे कृषि का व्यवसायीकरण बढ़ता गया सामंती व्यवस्था बिखरती गई।

मुद्रा प्रसार, व्यापार के विकास, तथा अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्धों के बढ़ने से **'जीवन निर्वाह अर्थव्यवस्था'** की पद्धति खत्म होने लगी। मुनाफा कमाने की प्रवृत्ति बढ़ने लगी। ब्याज पर पैसा लेना–देना, साख पद्धति के प्रारंभ ने भी पूँजीवाद का मार्ग प्रशस्त किया। इस तरह गतिहीन सामंती व्यवस्था के स्थान पर अब गतिशील, प्रतियोगिता और मुनाफा कमाने की पद्धति स्थान बना रही थी जिसे पूँजीवाद कहा जाता है।

(6) शक्तिशाली राष्ट्रीय राज्यों का उदय

बदलती हुई आर्थिक स्थिति, पूँजीवाद के उदय तथा व्यापार का बढ़ता हुआ क्षेत्र, कृषि का वाणिज्यीकरण इत्यादि कारणों से यह महसूस होने लगा कि अब एक शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार हो, एक से कानून तथा नियम हों। व्यापारी, मजदूर, किसान, उद्योगपति इत्यादि सभी नये वर्ग एक सुदृढ़ राज्य को ही अपना हितकर मानने लगे। इन्हीं स्थितियों में राजा का महत्व बढ़ा उसने स्थायी सेना रखना प्रारंभ किया। राजा के लिए आर्थिक सहायता व्यापारी वर्ग ने दी। इससे व्यापारी और शासकों के बीच नए संबंध बनने लगे। नये राष्ट्रों का उदय होने लगा। सामंतों के विरुद्ध व्यापारी वर्ग ने राजा को आर्थिक सहायता दी जिससे भाडे पर सेना रखना

सम्भव हुआ। इस तरह एक नये तंत्र का उदय हुआ जिसे नौकरशाही वर्ग कहा जाता है, और सामंतों की स्थिति पृष्ठभूमि में चली गई।

NOTES

(7) पुनर्जागरण तथा धर्मसुधार आंदोलन

सामंतवाद के पतन में पुनर्जागरण तथा धर्मसुधार आंदोलनों ने भी महत्वपूर्ण योग दिया। पुनर्जागरण आंदोलन ने मानववाद और राष्ट्रीय राज्यों के उदय का मार्ग बनाया। अब मनुष्य का विवेक जागृत होने लगा जिससे शोषण के विरुद्ध आवाज उठायी जा सकती थी। धर्मसुधार आंदोलन ने चर्च की सत्ता पर कुठाराघात किया जो सामंती व्यवस्था का मुख्य आधार था।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि – **''सामंतवाद का पतन उस सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक धार्मिक एवं बौद्धिक वातावरण में हुआ, जिसका उदय बड़ी तेजी से 13वीं शताब्दी में होने लगा था। वाणिज्यिक क्रांति, पूँजीवाद का उदय, राष्ट्रीय राज्यों का उदय, धर्मयुद्ध, सामंती युद्ध इत्यादि घटनाओं ने सामंतवाद के पतन में अपनी भूमिका निभाई।''**

1.4 आधुनिक युग का प्रारंभ (ADVENT OF MODERN AGE)

यूरोप में आधुनिक युग के प्रारंभ का अर्थ है, **मध्ययुगीन मूल्यों एवं प्रवृत्तियों का समाप्त होते जाना और नये जीवन मूल्यों, नई प्रवृत्तियों, नई सोच का प्रारंभ होना।** आधुनिकता कोई एक वस्तु नहीं है जो किसी एक निश्चित तिथि या समय से प्रारंभ हो। किसी देश या महाद्वीप के इतिहास में युगीन प्रवृत्तियों एवं विचारधाराओं के परिवर्तन का आधार जो प्रमुख घटना होती है, प्रायः उस घटना की तिथि को परिवर्तन बिन्दु मान लिया जाता है। यूरोप के अलग–अलग देशों में अलग–अलग समय एवं घटनाओं से आधुनिकता का प्रारंभ हुआ होगा, परन्तु इतिहासकारों ने अध्ययन की सुविधा से आधुनिक युग के प्रारंभ की कुछ घटनायें स्वीकृत की हैं।

यूरोप में **'पुनर्जागरण'** को आधुनिकता का प्रारंभ बिन्दु माना गया है। यह सांस्कृतिक क्षेत्र में आधुनिकता का प्रारंभ था। मानव का दृष्टिकोण मध्यकालीन सामंतवादी विचारधारा और मूल्यों से हटकर, मानवीय और इहलौकिक सोच धारण कर रहा था। राजनीतिक रूप से 1453 में कुस्तुनतुनिया की पराजय, तुर्कों के द्वारा होने को आधुनिक युग का प्रारंभबिन्दु माना है। प्रो. **लालबहादुर वर्मा** लिखते हैं – **''सांस्कृतिक इतिहास का समर्थक और स्वयं 'आधुनिक संस्कृति के स्रोत' के लेखक प्रीजवर्ड स्मिथ ने अपनी पुस्तक 'लूथर' की भूमिका में स्पष्ट लिख दिया है कि कैथोलिक और प्रोटेस्टेंट दोनों चर्च हमेशा विकास के विरोधी रहे हैं चाहे सामाजिक विकास हो या वैज्ञानिक इसीलिए वह आधुनिक युग की शुरुआत कुस्तुनतुनिया के पतन (1453) से नहीं बल्कि कोपरनिकस की विभिन्न ग्रहों की गति सम्बन्धी क्रांतिकारी पुस्तक, जिसमें उसने धरती द्वारा सूरज का चक्कर लगाने की बात की थी, के प्रकाशन (1543) से मानता है।''** कोपरनिकस की पुस्तक के प्रकाशन से आधुनिक युग का प्रारंभ मानने का अर्थ था कि मध्यकालीन धार्मिक एवं सांस्कृतिक सोच पर सीधा प्रहार कोपरनिकस ने किया था।

कुस्तुनतुनिया के पतन से यूरोप के आधुनिक युग का प्रारंभ मानने का कारण था कि इसके बाद कई भौगोलिक खोजें हुईं। यूरोप का भारत तथा अमेरिका जैसे विशाल देशों से सम्पर्क हुआ। सामाजिक–आर्थिक परिवर्तन हुए। नये व्यापारिक मार्ग खोजे गए। सामाजिक जीवन में सामंत की भूमिका खत्म होने लगी तथा नये व्यापारिक वर्गों का प्रभुत्व बढने लगा। राजनैतिक क्षेत्र में राजाओं की शक्ति बढ़ने लगी सामंतों की भूमिका कम हो गई। नये सुदृढ़ राज्यों के उदय का मार्ग प्रशस्त हुआ।

NOTES

1.5 यूरोप के आधुनिक युग की विशेषताएँ

आधुनिक युग के प्रारंभ के लक्षण (विशेषताएँ) विभिन्न इतिहासकारों ने अलग-अलग तरीके से प्रतिपादित किये हैं। **राबर्ट इरगैंग** के अनुसार आधुनिक युग की निम्न विशेषताएँ हैं –

- राष्ट्रीय राज्यों का उत्थान
- अमेरिका तथा एशिया में यूरोपीय प्रसार
- बौद्धिक जागृति
- आधुनिक विज्ञान का उत्थान
- सामन्तवाद का पतन
- धार्मिक नास्तिकता एवं संघर्ष
- लौकिक भावना की वृद्धि एवं प्रगति
- आधुनिक पूँजीवाद का उत्थान
- प्रोटेस्टेन्ट चर्च की स्थापना
- मध्यम वर्ग का उत्थान
- अन्तरराष्ट्रीय व्यापारिक प्रतिस्पर्द्धा
- रोमन साम्राज्य का पतन

इतिहासकार **फिशर** के अनुसार आधुनिक युग की निम्नलिखित विशेषतायें हैं – **"यूरोपीय सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक क्षेत्रों में अनेक परिवर्तनों के होते हुए भी पुरानी परम्पराओं और आदर्शों की छाप अवश्य पायी जाती है। ..... परन्तु आधुनिक युग के प्रारम्भ के साथ-साथ विचार स्वातंत्रय, प्रचलित संस्थाओं एवं मान्यताओं को चुनौती व विरोध स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होते हैं। चर्च की प्रभुसत्ता से मुक्त स्वतन्त्र चिन्तन, लेखन एवं मुद्रण, मध्ययुगीन रोमन साम्राज्य एवं सार्वभौम रोमन चर्च के स्थान पर राष्ट्रीय राज्यों एवं राज्याश्रित चर्च या स्वतन्त्र चर्च की स्थापना, पोपशाही का पतन एवं निरंकुश राज्यों का उत्थान, सामन्तशाही का उन्मूलन एवं सामन्तयुगीन संस्थाओं एवं व्यवस्थाओं के स्थान पर नवीन सामाजिक तथा राजनीतिक संस्थाओं एवं व्यवस्थाओं का आरम्भ।"**

यूरोप के आधुनिक युग की प्रमुख विशेषताओं का अध्ययन निम्न बिन्दुओं के संदर्भ में करेंगे:–

- सांस्कृतिक विशेषताएँ – पुनर्जागरण तथा धर्म सुधार आन्दोलन,
- राजनैतिक विशेषताएँ,
- आर्थिक विशेषताएँ,
- सामाजिक विशेषताएँ।

सांस्कृतिक विशेषताएँ

आधुनिकता का प्रारम्भ भौतिक क्षेत्र में बाद में होता है मानसिक क्षेत्र में पहले। पुनर्जागरण एक मानसिक-वैचारिक क्रान्ति होती है। मनुष्य अपनी जड़ता से अन्धकार से मुक्ति पाने के लिए संघर्षशील होता है। वैचारिक क्षेत्र में ईश्वर की जगह मनुष्य विचार के केन्द्र में आता है तथा परलोक की जगह इहलौकिक दृष्टिकोण का विकास। यूरोप के पुनर्जागरण तथा आधुनिक युग के संदर्भ में **श्री लालबहादुर वर्मा** का कथन इस प्रकार है – "तेरहवीं शताब्दी के बाद जैसे भोर की हवा चली। यूरोप ने अंगड़ाई ली। इटली के नगरों में यूनान और रोम की उपलब्धियों की याद ताजा होने लगी। बढ़ते व्यापार ने नगरों का विस्तार किया था। इन नगरों में एक महत्वाकांक्षी और अपेक्षतया उदार मध्यवर्ग जन्म ले रहा था जो मध्ययुग की रूढ़ियों के बोझ से मुक्ति चाहता था। यहाँ कुछ नया हो सकता था, पुराने को नया रूप देना संभव था, इसलिए विचारों, साहित्य और कला के क्षेत्र में यूनान और रोम से प्रेरणा लेकर एक ऐसे समाज की रचना मनुष्य ने शुरू की जिसमें यथास्थिति के प्रति मोह न हो, जहाँ मनुष्य अपने बंधनों को काट

सके, जहाँ धर्म केंद्रित समाज के स्थान पर मानव केंद्रित समाज बन सके– जिसमें व्यक्ति और उसकी समस्त संभावनाओं को उचित स्थान मिल सके। इसी प्राचीन यूरोप की प्रेरणा के आधार पर यूरोप के निर्माण के प्रारंभ को पुनर्जागरण कहते हैं।"

NOTES

धार्मिक जागृति में **'ईसाई जगत की एकता'**, पोप की निरंकुशता तथा धर्म का राजनीति पर प्रभुत्व से मुक्ति का आंदोलन चला। अब आधुनिक युग के प्रारंभ में राजनीति ने धर्म पर अपना नियंत्रण स्थापित करना प्रारंभ कर दिया। मार्टिन लूथर तथा हेनरी अष्टम के धर्म सुधार आंदोलन नये युग की महत्वपूर्ण घटनायें हैं।

राजनैतिक विशेषताएँ

राजनीति के क्षेत्र में आधुनिक युग के प्रारंभ का अर्थ था सामंतवाद का पतन तथा नये निरंकुश राष्ट्रीय राजतन्त्रों का उदय तथा पवित्र रोमन साम्राज्य की अवनति। पन्द्रहवीं और सोलहवीं शती में यूरोप के कई देशों–फ्रांस, स्पेन, इंग्लैंड– में शक्तिशाली राजतंत्रों का उदय हुआ। सामंतवादी व्यवस्था के पतन से – डेनमार्क, नार्वे, पुर्तगाल, स्वीडन तथा पोलैण्ड आदि में भी स्वतंत्र शक्तिशाली राजतंत्रों की स्थापना हुई। इसके अतिरिक्त शक्ति संतुलन के सिद्धांत का जन्म तथा नई दुनिया की खोज से उपनिवेशवाद का उदय भी हुआ। इन सब परिवर्तनों से राष्ट्रवाद की भावना का जन्म हुआ।

आर्थिक विशेषताएँ

आधुनिक युग के आरम्भ के साथ–साथ यूरोप के आर्थिक क्षेत्र में नये आयामों का उदय हुआ। पुरानी सामंती पद्धति 'ग्रिड व्यवस्था' की धीरे–धीरे समाप्ति तथा व्यापार तथा वाणिज्य के क्षेत्र में नए रास्तों की खोज इस युग की प्रमुख विशेषताएं है। कोलम्बस द्वारा 1492 में अमेरिका की खोज तथा वास्को–डी–गामा द्वारा भारत के बन्दरगाह कालीकट पर पहुँचना यूरोप के लिए व्यापारिक क्षेत्र में 'उपनिवेश' व्यवस्था के नए क्षेत्रों की खोज थी। अब वाणिज्यिक क्रांति हुई। इसके साथ–साथ मुद्रा का प्रसार बढ़ने लगा और नये उद्योग–धन्धे, बैंकों तथा ज्वाइंट स्टॉक कंपनियों का प्रारंभ भी हुआ। अब उत्पादन व्यापार के लिए होने लगा। निर्वाह अर्थव्यवस्था की अपेक्षा व्यापारिक आवश्यकता के लिए उत्पादन का प्रारंभहुआ। मुद्रा प्रसार तथा अतिशेष उत्पादन ने पूँजीवाद के विकास का मार्ग खोल दिया।

सामाजिक विशेषताएँ

आधुनिक युग के प्रारंभ के साथ–साथ सामंतीय ढंग का सामाजिक ढाँचा चरमराने लगा। व्यक्तिवादी दृष्टिकोण का विकास हुआ तथा समाज में शक्तिशाली सामंत था, शोषित किसान, दास तथा मजदूरों के अतिरिक्त अब मध्यवर्ग का उदय एक महत्वपूर्ण विशेषता है। नये व्यापारी वर्ग तथा कर्मचारी वर्ग भी इस मध्यवर्ग के साथ–साथ समाज में स्थान बनाने लगे।

1.6 पुनर्जागरण (RENAISSANCE)

यूरोप में पुनर्जागरण का समय 1300 से 1600 ई. तक माना गया है। फ्रांसीसी लेखक दिदेरो ने **'रिनेसां'** शब्द का प्रयोग नवीन साहित्य और कला के विकास के सन्दर्भ में किया था। 'रिनेसां' फ्रांसीसी भाषा का शब्द है जिसका शाब्दिक अर्थ होता है **'फिर से जागना'**। पुनर्जागरण का अध्ययन हम निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत करेंगे –

(1) पुनर्जागरण का अर्थ
(2) पुनर्जागरण के कारण
(3) पुनर्जागरण का स्वरूप या विशेषताएँ
(4) पुनर्जागरण अलग–अलग देशों में
(5) पुनर्जागरण से सम्बन्धित व्यक्ति

NOTES

(1) पुनर्जागरण का अर्थ

यूरोप के इतिहास में पुनर्जागरण का अर्थ उन परिवर्तनों से है जो मध्ययुग से आधुनिक युग में आने के साथ हुए। यह परिवर्तन सभी क्षेत्रों में दिखाई देते हैं। सम्पूर्ण जीवन जैसे नींद से जागकर अंगड़ाई लेने लगा हो। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नई चेतना, नए मूल्यों का पदार्पण हो गया हो। सूरज की किरणों ने सम्पूर्ण अंधकार को नष्ट कर दिया हो। मध्ययुग के बाद सम्पूर्ण यूरोपीय जीवन इसी तरह के नव प्रकाश से आलोकित हो रहा था। नये विचार, नए आविष्कार, नई खोजें, नया दृष्टिकोण, नई जीवन शैली, नये वर्गों का उदय, प्राचीन जड़ मूल्यों का टूटना, अगतिशीलता की जगह प्रवाह निर्भयता, जड़ और सड़ चुकी मान्यताओं एवं अन्धविश्वासों की जगह नयी स्वस्थ मानवीय परम्पराओं का निर्माण, मानव जीवन के प्रति नई आस्था का उदय। ये सब परिवर्तन पुनर्जागरण से सम्बन्धित हैं। यह पुनर्जागरण भी था और पुनर्जागरण के कार्य भी थे। कुछ इतिहासकारों की दृष्टि में पुनर्जागरण का अर्थ इस प्रकार है –

- **थेविल** के अनुसार – **"पुनर्जागरण का अर्थ मध्य–युग के साथ पूर्ण रूप से सम्बन्ध–विच्छेद करना नहीं था। यह एक सांसारिक आंदोलन था जिसके अन्तर्गत वे सभी महत्वपूर्ण परिवर्तन आते हैं जो मध्यकालीन युग के अन्त में तथा आधुनिक काल के प्रारंभ में दृष्टिगोचर होते हैं।"**
- **फिशर** के अनुसार – **"सर्वप्रथम, इटली के नगरों में प्राचीन यूनानी एवं रोमन कला, साहित्य, संस्कृति का पुनः सृजन, मानववादी आन्दोलन का प्रारम्भ, धार्मिक क्षेत्र में प्राचीन यूनानी सभ्यता का समावेश, स्थापत्य कला एवं चित्रकला का नया स्वरूप, व्यक्ति एवं व्यक्तिवादी सिद्धांतों का विकास, नवीन स्वाद, दृष्टिकोण वैज्ञानिक तथा ऐतिहासिक आलोचना, छापेखाने का आविष्कार, दर्शन शास्त्र एवं धर्मशास्त्र का नया स्वरूप तथा विवेचना इत्यादि तथ्यों एवं विशेषताओं को सामूहिक रूप से पुनर्जागरण या सांस्कृतिक पुनरुत्थान कहते हैं।"**
- **रॉबर्ट इरगैंग** के अनुसार–**"व्यापक तौर पर रिनेसां (पुनर्जागरण) का अभिप्राय मध्य युग में वर्तमान युग को प्रारम्भ करने के उन सभी परिवर्तनों से है, जिनके द्वारा सामन्तशाही का पतन, प्राचीन साहित्य का अध्ययन, छापेखाने का प्रारंभ, बारूद एवं कुतुबनुमा का आविष्कार, नए व्यापारिक मार्गों का आरंभ, अमेरिका की खोज तथा प्रारम्भिक पूँजीवाद का प्रारंभ इत्यादि हुए।"**

इस तरह पुनर्जागरण नये युग, नए दृष्टिकोण, नये मूल्यों तथा नये परिवर्तनों का द्योतक था।

(2) पुनर्जागरण के कारण

यूरोप में 11वीं शताब्दी से कुछ ऐसी स्थितियाँ बन रही थीं जिनकी वजह से 13वीं – 14वीं शताब्दी तक कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन होने लगे जिसे पुनर्जागरण कहा जाता है। ये परिस्थितियाँ इस प्रकार थीं –

- आर्थिक जीवन में हुए परिवर्तन।
- नए विचारकों का उदय।
- लोक भाषा और लोक संस्कृति का महत्व बढ़ा।
- कुस्तुनतुनिया का पतन।
- नये वैज्ञानिक अविष्कारों का होना।

- मानववादी दृष्टिकोण का विकास।
- नए वर्ग तथा नगरों का विकास।

(i) **आर्थिक जीवन में हुए परिवर्तन** :– किसी भी समाज का मूलाधार होता है आर्थिक व्यवस्था। जब आर्थिक आधार और संरचना में परिवर्तन होता है तो सम्पूर्ण जीवन, चाहे वह राजनीतिक हो या सामाजिक या धार्मिक, में परिवर्तन की लहर चल पड़ती है। यूरोप के पुनर्जागरण का सबसे महत्वपूर्ण कारण वहाँ हो रहे आर्थिक परिवर्तन ही थे। ये आर्थिक परिवर्तन मुख्यतः दो तरह के थे, एक तो विनिमय के लिए उत्पादन होना, दूसरे व्यापार का विकास। इनके अतिरिक्त मुद्रा का प्रसार तथा अन्य सहयोगी परिस्थितियाँ मौजूद थीं।

पुनर्जागरण का प्रारंभ सबसे पहले इटली में हुआ, क्योंकि वहाँ व्यापार के विकास के कारण यूरोप का बहुत सा धन एकत्र हो रहा था। व्यापारी वर्ग के पास जब बहुत सा धन एकत्र हुआ तो उन्होंने ज्ञान–विज्ञान के उत्थान के लिए उस धन का कुछ हिस्सा व्यय किया। इसका कारण था कि व्यापारी वर्ग सामंतवाद तथा चर्च दोनों की समाप्ति चाहता था। लोगों के मन से इनका आतंक समाप्त हो इसके लिए ज्ञान के रास्तों को खोलना आवश्यक था। दूसरे नगरों में दूसरे देशों से व्यापारी वर्ग आते–जाते रहते थे, इससे नये विचारों का आदान–प्रदान बढ़ने लगा। इसके अतिरिक्त व्यापार के विकास से अतिशेष उत्पादन किया जाने लगा। उत्पादन का उद्देश्य सिर्फ जीवन निर्वाह न होकर विनिमय हो गया। इसी के साथ प्रत्येक छोटे–बड़े नगरों में एक अनुत्पादक वर्ग का उदय हुआ जिसे व्यवसायी वर्ग कहते थे। इससे समाज के आपसी सम्बन्धों में परिवर्तन आया। उत्पादन के साधनों में परिवर्तन आने से संबंधों में भी परिवर्तन होने लगा। समाज में नई चेतना, नई ऊर्जा का संचार होने लगा। उत्पादकता बढ़ने से समाज के अन्य क्षेत्रों में भी परिवर्तन की संभावनायें प्रबल होने लगीं।

(ii) **नए विचारकों का उदय** :– मध्यकालीन यूरोप में पंडितपंथी विचार पद्धति का प्राधान्य था। अरस्तु के दर्शन का बोलबाला था। विचार परंपराओं से बँधे थे, वे अगतिशील तथा जड़ हो रहे थे। तर्क और विवेक का अभाव था, परंतु इसी स्थिति से कुछ ऐसे विचारक, कवि, दार्शनिकों का उदय हुआ जिनकी वजह से नये विचारों का उदय हुआ। इनमें 13वीं शताब्दी में इंग्लैंड में 'रोजर बेकन' नये विचार–तर्क और कल्पना को साथ लेकर आया। उसने कहा कि **"बिना प्रयोग के कुछ भी जाना नहीं जा सकता"** इससे ही आगे चलकर वैज्ञानिक पद्धति का प्रारंभ हुआ जो भविष्य में आधुनिकता का आधार बनी। उसने अपनी कल्पना शक्ति से कहा था, जो बाद में सच हुआ कि, ऐसी गाड़ी बन सकती है जो बिना किसी पशु के चलाये हुए भी युद्ध–रथों के समान बेहिसाब तेज चाल से चल सकती है तथा ऐसी उड़ान मशीन का भी बनना संभव है जो अपने बीच में बैठे हुए मनुष्य के किसी कल के घुमाते ही उड़ते हुए पक्षी के समान त्रिम परों को फड़फड़ाती हुई वायुमंडल में घात–प्रतिघात करती विचरने लगे।

इटली में प्रसिद्ध कवि दांते ने इटालियन भाषा का प्रयोग किया और लैटिन भाषा के बंधन को कमजोर किया। उसने बौद्धिक ताकत को जनता की ताकत से जोड़ा। इस तरह नई चेतना का जन्म कई नये विचारों के परिणामस्वरूप हुआ।

(iii) **लोक भाषा और लोक संस्कृति का प्रसार** :– पुनर्जागरण किसी एक व्यक्ति या एक विशिष्ट वर्ग में नहीं आया यह सम्पूर्ण यूरोपीय जीवन का परिवर्तन था। विशेषकर आम जीवन नई चेतना से महकने लगा था। इसका एक कारण था लोक भाषाओं का महत्व बढ़ना तथा उसके माध्यम से लोक संस्कृति को महत्व मिलना। यूरोप में लैटिन भाषा का अधिकार था जो एक विशिष्ट वर्ग की भाषा थी, परंतु धीरे–धीरे इतालवी, फ्रांसीसी, अंग्रेजी तथा जर्मन भाषाओं के विकास ने आम आदमी को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता दी।

(iv) **कुस्तुनतुनिया का पतन** :– पन्द्रहवीं शताब्दी की महत्वपूर्ण घटना 1453 में कुस्तुनतुनिया के रोमन साम्राज्य के पतन से सम्पूर्ण यूरोप में हलचल मच गयी। तुर्कों ने

कुस्तुनतुनिया पर कब्जा कर लिया। इसके साथ ही उन्होंने पूर्वी भूमध्यसागर का मार्ग रोक लिया। यूरोप के व्यापारियों ने दूसरे मार्गों की खोज की। नये मार्गों की खोज से नयी दुनिया से यूरोप का सम्पर्क बढ़ा। भौगोलिक खोजों का दौर चालू हुआ और मानव ज्ञान का बहुत विस्तार हुआ इससे संकुचित विचारधारायें धीरे–धीरे टूटने लगीं।

NOTES

(v) **नये वैज्ञानिक आविष्कारों का होना** :– व्यापार के विकास से अधिक धन एकत्र हुआ। अतिशेष धन नये आविष्कारों को क्रियान्वित करने में सहायक हुआ। पुनर्जागरण के लिए आवश्यक था कि नए विचारों का प्रचार–प्रसार हो। इसके लिए कागज तथा मुद्रणालय के आविष्कार ने सबसे महत्वपूर्ण कार्य किया।

इन नये आविष्कारों में प्रमुख थे –

- छापेखाने का आविष्कार
- कागज का आविष्कार
- बारूद तथा बन्दूकों का आविष्कार
- कुतुबनुमा का आविष्कार।

इन से पुनर्जागरण के प्रचार–प्रसार में सहायता मिली।

(vi) **मानववादी दृष्टिकोण का विकास** :– ज्ञान के नये क्षेत्रों के विकास ने मानववादी दृष्टिकोण को विकसित किया। मानववादी दृष्टिकोण के विचारकों में डच लेखक **'इरास्मस'** ने ईसाई धर्म की कमजोरियों को जनता के सामने रखा। उसने आम इन्सान को महत्व दिया।

(vii) **नये नगरों तथा वर्गों का विकास** :– व्यापारिक विकास के कारण कई देशों में बड़े–बड़े नगरों का विकास हो रहा था। नये नगर शिक्षा, विद्या का केन्द्र होते थे। वहाँ विभिन्न लोग आपस में मिलते थे विचारों का आदान–प्रदान होता था। इससे पुनर्जागरण को बल मिला।

(3) पुनर्जागरण का स्वरूप और विशेषतायें

(i) **स्वरूप** :– पुनर्जागरण का वास्तविक स्वरूप मानवतावादी था। मानवतावाद का अर्थ है कि सृष्टि के केन्द्र में ईश्वर न होकर मनुष्य है। मनुष्य एक स्वतंत्र, सचेत, विवेकशील तथा दायित्वयुक्त प्राणी है। यह एक भारवाही पशु मात्र नहीं है जिसे बोझा ढोने के लिए पशु की तरह इस्तेमाल किया जाए। मध्ययुग में ईसाई धर्मशास्त्री मनुष्य के शरीर को अध्यात्म का दुश्मन मानते थे और मानव बुद्धि को इतना कमजोर कि ईसाई प्रेरणा के बिना मानव कुछ कर ही नहीं सकता। मध्ययुग दैवी व धार्मिक मूल्यों तथा विश्वासों से संचालित था। पुनर्जागरण ने मनुष्य को अन्धी आस्था और विवेकहीनता के अंधेरे कोटरों से बाहर निकाला और मनुष्यत्व की मानवीय गरिमा और महत्व को प्रतिष्ठित किया। मानवतावाद का पुनर्जागरणकालीन अर्थ यह भी था कि – **''मानववाद का अर्थ उस उन्नत ज्ञान से है जिसके अनुसार प्राचीन साहित्य में ही मानवता, सौन्दर्य, माधुर्य तथा जीवन की सार्थकता निहित है।''**

पुनर्जागरण के मानववादी स्वरूप का एक आयाम था व्यक्तिवादिता का विकास। व्यक्तिवाद पुनर्जागरण की सांसारिक भावना का नया आयाम था। इस व्यक्तिवादिता ने मानव मात्र के स्वाभिमान और अहं को मजबूत किया। प्रत्येक मनुष्य की अपनी स्वतंत्र सत्ता तथा गरिमा का महत्व है। वह ईश्वर के सामने कोई सामान्य वस्तु नहीं है। इसी व्यक्तिवादिता ने **बेनवेनुतो सेलनी** जैसे झूठे, चोर तथा बलात्कारी व्यक्ति को पुनर्जागरण का सबसे महत्वपूर्ण कलाकार बना दिया।

पुनर्जागरणकालीन मानवतावाद के सम्बन्ध में एक लेखक का अभिमत इस प्रकार है – **''एक बात हम यह भी समझ लें कि मानवतावाद का अर्थ केवल मानव के प्रति रुचि**

ही नहीं है, बल्कि इसका उद्देश्य यह जानना भी है कि अतीत के स्वर्ण युग के प्रति हमारी दिलचस्पी का व्यावहारिक उपयोग वर्तमान जीवन, विचार, अभिव्यक्ति के उचित मानदण्डों को निर्धारित करने में कैसे हो। पुनरुत्थान महान पुरुषों की लेखनी एवं विचारों के अध्ययन के बाद मानवतावाद के बारे में जो एक और अवधारणा स्पष्ट होती है वह यह है कि कुछ अपवादों को छोड़कर यह मानवतावाद अपने स्वरूप में ईसाई मानवतावाद ही है, पूरी तरह धर्मनिरपेक्ष मानवतावाद नहीं है। बदलती हुई सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थितियों के अनुकूल ईसाई जीवन और मान्यताओं में सुधार लाना इस मानवतावाद का एक प्रमुख लक्ष्य है। दान्ते और इरास्मस की व्यंग्यात्मक लेखनी में इसायित के सुधार की तड़प तथा गिरजाघरों की छतों व दीवारों पर युग के महान चित्रकारों की मानवीय दृष्टि को आंका जा सकता है।''

पुनर्जागरण का स्वरूप मानसिक भी था। यह मानसिक क्रांति थी। मानसिक क्रांति इस अर्थ में कि इसने प्राचीन यूनानी विचारकों की तर्क प्रणाली को अपनाया। मध्ययुगीन अन्धविश्वास और विवेकहीनता के स्थान पर तर्क और विवेक का इस्तेमाल, इसे मानसिक स्वरूप प्रदान करता है। इसलिए **हेनरी** एस. लुक्स का कहना है कि – **''पुनर्जागरण से तात्पर्य मध्ययुगीन विचारों के तरीकों में परिवर्तन से है।''**

पुनर्जागरण के स्वरूप के सम्बन्ध में प्रो. लालबहादुर वर्मा का यह कथन महत्वपूर्ण है – **''नई विद्या ने जो ज्योति जलाई थी उसके मानवतावादी प्रकाश में अंधकार घटने लगा। एरासमस के क्रम में अंग्रेज विद्वान टामस मोर ने 'यूरोपिया' नामक ग्रंथ में एक नए समाज की कल्पना की जो तत्कालीन यथार्थ के स्थान पर एक आदर्श स्थापित कर सके। कोपरनिकस के सिद्धांत को केपलर ने गणित से और गैलिलियो ने अपनी दूरबीन से अकाट्य साबित कर दिया। विचारों की पुष्टि के लिए प्रयोग का महत्व बढ़ने लगा। गणित की अभूतपूर्व सफलताओं ने भौतिकशास्त्र को बल दिया। बाद में न्यूटन ने गुरुत्वाकर्षण और गति के सिद्धांतों के आधार पर भौतिक जगत की समझदारी को नया आयाम दिया। कुल मिलाकर मनुष्य के अंधविश्वास ढहने लगे और तर्क पद्धति का विकास होने लगा। मनुष्य ने आस्था के स्थान पर विवेक से कार्य लेना शुरू किया। सामाजिक विज्ञान के क्षेत्र में भी मैकियावेली से बेकन तक लोग अध्ययन के नए तरीके ढूँढ़ने में व्यस्त हो गए। दर्शन का स्वरूप बदल गया। ऐसा प्रतीत होता है जैसे मनुष्य ने केवल परंपरा के आधार पर किसी सच्चाई को मानने से इन्कार कर दिया हो। वह प्रश्न करने लगा क्योंकि अब वह जिज्ञासु था और वैज्ञानिक आविष्कारों ने उसकी अधास्था को डगमगा दिया था।''**

विस्तार की दृष्टि से पुनर्जागरण सबसे पहले इटली में प्रारंभ हुआ तथा फ्रांस, इंग्लैंड तथा स्पेन में बाद में प्रारंभ हुआ।

(ii) **विशेषताएँ** :- पुनर्जागरण की विशेषताओं का अर्थ है कि पुनर्जागरण काल में किन–किन क्षेत्रों में क्या परिवर्तन या विकास हुआ। इसे हम निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत समझेंगे–

(a) कलात्मक विकास

(b) राष्ट्रीय साहित्य का विकास

(c) धार्मिक विशेषताएँ

(d) राजनैतिक और सामाजिक विकास

(e) वैज्ञानिक आविष्कार एवं नयी खोजें।

NOTES

बोध प्रश्न

1. पुनर्जागरण से आप क्या समझते हैं?

....

....

....

2. सामंतवाद की परिभाषा एवं अर्थ बताइये?

....

....

....

1.7 कलात्मक विकास

यूरोप में पुनर्जागरण की चेतना जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नया रंग और नया जीवन लेकर उदित हुई। पुनर्जागरण का मुख्य संबंध जीवन की भावनात्मकता अर्थात् मनुष्य की चेतना और उसकी सांस्कृतिक अभिव्यक्ति से था। अतः पुनर्जागरण काल में सांस्कृतिक क्षेत्र में भी नयापन आया। जिस तरह साहित्य के क्षेत्र में यूरोप में अभिरुचि बढ़ी उसी तरह कला के क्षेत्र में भी नयापन दिखाई देता है। कलाकार तथा शिल्पकारों ने प्राचीन ललित कलाओं से प्रेरित होकर कला के क्षेत्र में नये आदर्श तथा नये प्रतिमान खड़े किये। पुनर्जागरण काल से पूर्व की कला मुख्यतः धर्म से सम्बन्धित थी परन्तु नयी चेतना के प्रसार से तथा साहित्यिक प्रगति तथा अति प्राचीन सभ्यता से प्रेरित होने के कारण पुनर्जागरण काल की कला ने अपना रूप परिवर्तित किया अतः इस युग की कला पर प्राचीनता की छाप दिखाई देती है। कला के सभी रूपों का विकास हुआ जैसे–**स्थापत्यकला, मूर्तिकला, चित्रकला** इत्यादि। पुनर्जागरण का प्रारंभ इटली में हुआ अतः कलात्मक विकास के नये प्रतिमान भी इटली ने सबसे पहले स्थापित किये। यूरोप की मध्ययुगीन कला के प्रति रुचि कम हुई तथा पुनर्जागरण की नई चेतना की अभिव्यक्ति कला के क्षेत्र में अधिक प्रसिद्ध होती गई। कला के विभिन्न आयामों की अभिव्यक्ति का विवरण इस प्रकार है।

- स्थापत्य कला
- मूर्तिकला
- चित्रकला

(1) **स्थापत्यकला** :– पुनर्जागरणकालीन स्थापत्यकला की विशेषतायें थीं:–

(i) प्राचीन प्रेरणाओं का नवीनीकरण।

(ii) प्राचीन रोमन तथा यूनान की स्थापत्य कला से प्रेरणा।

(iii) मध्ययुगीन गाथिक शैली का बहिष्कार।

(iv) भवन निर्माणों का विशेषीकरण।

(v) व्यक्तिवादी कला।

(vi) मौलिकता एव नवीनता।

(vii) भव्यता एवं विशालता।

(viii) नवीन सौंदर्यबोध की अभिव्यक्ति।

(ix) स्थापत्य के माध्यम से वैभव की अभिव्यक्ति।

पुनर्जागरण कालीन स्थापत्य कला ने 'क्लासिक' शैली से प्रेरणा ली। प्राचीन यूनान तथा रोम में भवन निर्माण कला की 'क्लासिक' शैली का विकास हुआ था। क्लासिक शैली के खंडहर उसकी भव्यता और वैभव के प्रमाण हैं। जैसे एथेंस में **'पार्थेनान'** के गगन चुंबी स्तम्भ, ओलंपिया के भग्नावशेष और सम्पूर्ण यूनान में मंदिरों और महलों के पत्थरों का प्राप्त होना, **रोम के स्टेडियम** और **'एरीना'** इत्यादि ने पुनर्जागरण के कलाकारों को ही नहीं आज के कलाकारों तथा इंजीनियरों को आश्चर्यचकित किया है। न केवल आश्चर्यचकित किया है बल्कि प्रेरित भी किया है। राबर्ट इरगैंग ने लिखा है – **"रिनेसां की स्थापत्य कला वस्तुतः कोई विशेष पृथक एवं अपूर्वशैली न थी, वरन् कई समूहों की समष्टि थी। यह स्वरूप में व्यक्तिवादी थी एवं प्राचीन यूनानी–रोमन तथ्यों में इसकी क्षमता पायी जाती है। इसमें काफी हद तक मौलिकता एवं नवीनता भी थी।"** इस संबंध में प्रो. लालबहादुर वर्मा लिखते हैं – **"इस प्रकार पुनर्जागरण कालीन स्थापत्य कला की विशेषता है प्राचीन प्रेरणाओं का नवीनीकरण। इसीलिए इस काल की किसी इमारत को किसी प्राचीन इमारत की अनुकृति मात्र नहीं कह सकते यद्यपि उसका प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है।"**

यूरोप के पुनर्जागरण का अग्रदूत इटली था, अतः स्थापत्य कला की नवीन क्लासिक शैली का उत्थान भी इटली में हुआ। इटली में नवीन स्थापत्य की अभिव्यक्ति होने के लिए वहाँ की परिस्थितियाँ उत्तरदायी थीं। **प्रो. लालबहादुर वर्मा** ने इस तरफ संकेत करते हुए लिखा है– **"इटली के नगरों और चर्च में अपार धन इकट्ठा हो रहा था। धन की अभिव्यक्ति के विभिन्न माध्यमों में से एक है, भवन निर्माण। भवनों का जब निर्माण प्रारंभ हुआ तो यूनान और रोम के पुराने खंडहरों की ओर ध्यान आकृष्ट हुआ और एक क्लासिकल शैली का प्रारंभ हुआ जो पुनर्जागरण शैली भी कहलाती है। राफेल, माइकेल एंजेलो और पालादियोन जैसे कलाकारों के नेतृत्व में जिस संत पीटर गिरजाघर का रोम में निर्माण हुआ उसके स्तंभों और गुंबज की भव्यता और पूरे भवन की योजना की दृष्टि और विस्तार आज भी चकित कर देते हैं। पोप और धनिकों द्वारा इकट्ठा किये गये अपार धन का निर्माण कार्य में भी उपयोग होने से स्थापत्य की बहुत उन्नति हुई। राजा और सामंतों ने भी अपने महल बनवाए जिनके कुछ बेमिसाल उदाहरण फ्रांस के लुआर प्रदेश में आज भी सुरक्षित हैं। ये 'शातो', गढ़ जैसे महल अपनी सजावट के बावजूद कहीं फूहड़ नहीं लगते।"** **जूलियन हक्सले** के अनुसार–**"पुनर्जागरण की कला व्यवसाय द्वारा अर्जित नगरों की संपत्ति के कारण ही संभव हो सकी।"**

इटली के लोरेंस नगर का मेडिसी परिवार, मिलान नगर का स्फोरजास परिवार, पोप अलेक्जेंडर षष्ठम, जूलियस द्वितीय तथा लेओ दशम इत्यादि स्थापत्य कला के प्रमुख संरक्षक थे। यही कारण है कि इटली के लोरेंस, मिलान तथा रोम में नए गिरजाघरों, भव्य महलों एवं भवनों का निर्माण बहुत अधिक हुआ। रोम में संत पीटर का गिरजाघर पुनर्जागरण कालीन स्थापत्य का अद्वितीय उदाहरण है। वेनिस में भी स्थापत्य कला का विकास हुआ। इटली के अतिरिक्त फ्रांस तथा स्पेन के शासकों ने भी स्थापत्य कला को संरक्षण दिया।

(2) **मूर्तिकला** :– मूर्तिकला का विकास भवन निर्माण कला के साथ–साथ हुआ। पुनर्जागरण कालीन मूर्तिकला की प्रमुख विशेषतायें थीं :–

(i) धार्मिकता से मुक्ति

(ii) आदर्श तथा यथार्थ का समन्वय

(iii) ईश्वर के साथ–साथ आम आदमी भी मूर्तिकला के विषय

(iv) प्राचीन यूनान तथा रोम से प्रेरणा

NOTES

(v) शौर्य और करुणा को बराबर अभिव्यक्ति मिली

(vi) मानवीय सौंदर्य बोध एवं भावनाओं की अभिव्यक्ति

इस युग के मूर्तिकारों में **लोरेंजो गिबेर्ती, दोनातेल्लो, माइकेल एंजेलो, रोष्बिआ** और **वेरोक्लिओ** प्रमुख थे। इन कलाकारों ने केवल ईसा या मरियम की मूर्तियाँ बनाईं बल्कि समकालीन प्रमुख व्यक्तियों तथा बच्चों की भी मूर्तियाँ बनाईं। इस युग में प्रमुख मूर्तियाँ गिरजाघरों में स्वतंत्र रूप से तथा दीवालों पर भी उकेरी गई हैं। रोम के **मोसेज** तथा लोरेन्स के **मेडिसी** गिरजाघरों की मूर्तियाँ मूर्ति कला के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। पुनर्जागरण मूर्ति कला की प्रमुख विशेषता थी कि वह धार्मिक संदर्भों या बन्धनों से मुक्त होकर जीवन के व्यापक सन्दर्भों से जुड़ती है। जीवन के यथार्थ की झाँकी हमें इस युग की मूर्तियों में देखने को मिलती है। इस युग की सबसे विख्यात मूर्ति है, माइकेल एंजेलो की **'डैविड'**। एंजेलो की **'मूसा की मूर्ति'** इसाइयों के लिए कला का उत्कृष्ट उदाहरण तथा यहूदियों के लिए साक्षात् **'मूसा'** थे। संत पीटर के गिरिजाघर में ईसा और मरियम की मूर्ति एकदम मानवीय हैं। मरियम सामान्य माँ भी हैं और ईसा की माँ भी। कलाकार ने **'मातृत्व'** को जिस रूप में अभिव्यक्ति दी है वह ईसा की माँ की अपेक्षा 'माँ' को अधिक सशक्त तरीके से व्यक्त करती है। सलीब से उतारे ईसा की मूर्ति पैगंबर उतने नहीं लगते जितने आम घायल आदमी। यहाँ कलाकार ने करुणा को यथार्थ रूप में अभिव्यक्त किया है। **एंजेलो** के अलावा **दोमातेल्लो** ने प्रकृति से प्रेरित होकर समकालीन व्यक्तियों तथा बच्चों की सहज मानवीय मूर्तियाँ बनाईं। इस प्रकार पुनर्जागरण काल की मूर्तिकला प्राचीन यूनान के शौर्यत्व तथा ईश्वरत्व की अभिव्यक्ति से लेकर आधुनिक युग के सौंदर्यबोध तथा जीवन मूल्यों को अभिव्यक्त करती है।

(3) **चित्रकला** :– पुनर्जागरण काल में चित्रकला का सर्वाधिक विकास हुआ। चित्रकला के क्षेत्र में कलाकारों को प्राचीनता से प्रेरणा मिलने की गुंजाइश नहीं थी अतः कलाकारों ने सर्वथा मौलिक तथा नवीन प्रयोग किये। यह प्रयोग विषय के चुनाव तथा चित्रकला की टेक्निक दोनों में किये गये। सर्वाधिक यथार्थवादिता की अभिव्यक्ति चित्रकला में ही हुई। पुनर्जागरण कालीन चित्रकला के विकास के संदर्भ में **प्रो. लालबहादुर वर्मा** लिखते हैं – **"पुनर्जागरण काल में सबसे अधिक विकास चित्रकला के क्षेत्र में हुआ। पंद्रहवीं शताब्दी तक चित्रकला न केवल धार्मिक विषयों तक सीमित थी वरन् रंगों और उपकरणों का चुनाव भी सीमित था। उस काल के चित्रों में एक अजीब सी उदासी और एकरसता दिखाई पड़ती है। पुनर्जागरण काल के चित्रकारों ने विषयों का चुनाव सीधे जीवन से किया। उनके विषय ईसा और मरियम भी थे पर वे आदमी को भी चित्रित करते थे। प्लास्टर और लकड़ी के पैनल के स्थान पर कैनवास का इस्तेमाल शुरू हुआ। शोख और चटक रंग वर्जित नहीं रहे। तैलचित्रों की परंपरा शुरू हुई। इस क्षेत्र में यूनान और रोम से प्रेरणा मिलने की गुंजाइश नहीं थी क्योंकि उस समय के चित्र उपलब्ध नहीं थे। इसलिए चित्रकार सर्वथा मौलिक प्रयोग भी कर सके। लिओनार्दो–दा–बिंसी, माइकेल एंजेलो, राफेल और टिशियन के चित्र आज तक अद्वितीय माने जाते हैं।"**

1.8 प्रमुख चित्रकार

(1) **लिओनार्दो–दा–बिन्सी (1452 से 1519)** – मोनालिसा की मुस्कान का चित्रकार लिओनार्दो–दा–बिन्ची लोरेंस निवासी था, जो बहुमुखी प्रतिभा का धनी था। उसने अनेक चित्र बनाये परंतु वर्तमान में सिर्फ 17 चित्र ही उपलब्ध हैं। लिओनार्दो न केवल चित्रकार था बल्कि वह संगीतकार, दार्शनिक, गणितज्ञ, वैज्ञानिक भी था। उसके चित्रों में पुनर्जागरण की बहुमुखी कला ऊर्जा दिखाई देती है। उसके चित्रों में भाव समृद्धि और कल्पनाशीलता दिखाई देती है। मोनालिसा के अतिरिक्त **'वर्जिन ऑफ द रोक्स'**, **'दि लास्ट सपर'** जैसे चित्रों से वह विश्व प्रसिद्ध चित्रकार बन गया। लिओनार्दो के चित्रों का मूल्यांकन करते हुए प्रो. वर्मा लिखते हैं –

NOTES

"चित्रों के लिए वह शरीर और उसकी विभिन्न भंगिमाओं और मुद्राओं का विशद अध्ययन करता था। उसके चित्रों में 'लास्ट सपर' और 'मोनालिसा' अनुपम समझे जाते हैं। 'लास्ट सपर' में ईसा मसीह और उनके अनुयायी केवल व्यक्ति नहीं विभिन्न जीवन मूल्यों के प्रतिनिधि लगते हैं। 'मोनालिसा' किसी सुंदरी का चित्र नहीं है। लेकिन उस साधारण सी दिखाई पड़ने वाली महिला की रहस्यमयी मुस्कान का अर्थ दर्शक आज तक अपने-अपने ढंग से लगाते रहे हैं। लिओनार्दो जिस संसार को चित्रित करता था उसमें मानवीय भावनायें अपने सहज और नैसर्गिक रूप में अभिव्यक्त होकर एक सार्वभौमिक सौंदर्य की सृष्टि करती हैं। एडिथ शेल शेक्सपियर की तरह उसे 'पूर्ण मनुष्य' मानता है। जहाँ शेक्सपियर निस्सीम जीवंतता का संबंध जीवन से था, लिओनार्दो का बुद्धि से। लगन का वह इतना पक्का था कि कहा करता था : 'जो दो मालिक की सेवा करता है वह न तो अच्छा कलाकार बन सकता है न अच्छा हमसफर।' उसके लिए कला एक ऐसा समुद्र था जिसमें विज्ञान, अनुभव, ज्ञान, आविष्कार आदि सबकी धाराएँ समा जाती हैं। उसकी प्रतिभा विलक्षण थी जो हर जगह विचरण करती थी – हर वस्तु का पर्यवेक्षण करती हुई, कुछ से घृणा, बहुतों से प्यार और अधिकांश पर दया करती हुई थी।"

लिओनार्दो विज्ञान के युग का **'पहला आधुनिक व्यक्ति'** माना जाता है, क्योंकि यह कला को भी वैज्ञानिक सोच से अलंकृत करता है। इंग्लैंड के विंडसर पैलेस में एकत्र उसके चित्र उसकी गहन वैज्ञानिक दृष्टि का उदाहरण हैं।

(2) **माइकेल एंजेलो (1475–1564)** – यद्यपि माइकेल एंजेलो बहुमुखी प्रतिभा का धनी था तथापि उसे मूर्तिकार तथा चित्रकार के रूप में अधिक प्रसिद्धि मिली। माइकेल का जीवन दुःखी और पीड़ादायक था। उसे जीवन भर सहानुभूति और सुख–शांति नहीं मिली। यही कारण था कि वह अपने चित्रों में सुख और शांति की तलाश करता रहा। उसका सम्पूर्ण जीवन कला के प्रति समर्पित था। उसने रोम के पोप के महल वेटिकन में स्थित छोटे से गिरजाघर **'सिस्टाइन चैपेल'** की छत तथा चौखटों पर बाइबिल की कथाओं को चित्रित किया। उसका सबसे प्रसिद्ध चित्र है **'लास्ट जजमेंट'** जो अपने निरूपण के कारण महान है। उसने लगभग 145 चित्रों की रचना की थी। माइकेल एंजेलो के चित्रों में पुनर्जागरण कालीन चित्रकला ने अपनी चरम अभिव्यक्ति पाई थी। यह अपने आस–पास के परिवेश और वातावरण को अपने चित्रों में संजोता था।

इन प्रमुख चित्रकारों के अतिरिक्त राफेल और टिशियन ने भी चित्रकला के विकास में योग दिया। इटली के चित्रकारों की विषयवस्तु धार्मिक होते हुए भी उनकी दृष्टि में मानवीयता ही महत्वपूर्ण थी। इन कलाकारों के चित्र तत्कालीन समाज के परिवर्तनों को भी यथार्थ रूप में चित्रित करते हैं।

1.9 राष्ट्रीय साहित्य का विकास

मध्यकालीन यूरोप में चर्च का प्रभाव बहुत अधिक था। चर्च का प्रभाव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में था। साहित्य, कला, धर्म, समाज इत्यादि जीवन की अभिव्यक्ति का प्रत्येक माध्यम चर्च और ईसाई धर्म के रंग में रंगा हुआ था। साहित्य जो कि मनुष्य की आन्तरिक संगति की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है वह भी लैटिन भाषा तथा ईसाइयत के बोझ से दबा था। मध्ययुगीन साहित्य अधिकांशतः पादरियों द्वारा लैटिन भाषा में लिखा जाता था जो आदमी के अध्ययन तथा पकड़ से दूर था। इस साहित्य में आम इन्सान को और उसके जीवन की अभिव्यक्ति का कोई अवसर नहीं था। पुनर्जागरण की नई चेतना के उन्मेष ने साहित्य को चर्च और लैटिन भाषा की कैद से आजाद किया। राष्ट्रीय भाषा, लोक भाषा तथा आम आदमी के सुख–दुःख की अभिव्यक्ति को साहित्य का विषय बनाने का श्रेय पुनर्जागरण कालीन लेखकों को जाता है। इस युग में विषय

NOTES

तथा विधाओं दोनों दृष्टियों से बहुत परिवर्तन हुए। नए साहित्यकारों ने, जो मानवीय संवेदना तथा मानव जीवन दोनों से संबद्ध थे, आय की बात उसी की भाषा में कही।

दांते ने अपनी कविता, **पेत्रार्क** ने अपनी जीवनियों और **बीकैसियो** ने अपनी कथाओं, **गिसिआर्दिनी** ने अपने इतिहास, **फिसिनो** ने प्लेटो के अध्ययन, **मैकियावेली ने** अपने राजनैतिक विश्लेषणों, **रावैले** ने अपने वैचारिक विद्रोह से, **मोताइन्य** ने अपने निबन्धों, **चौसर** ने अपनी लोककथाओं तथा **शेक्सपियर** ने अपने नाटकों तथा कविताओं से पुनर्जागरण कालीन साहित्य को नया जीवन दिया। पुनर्जागरण कालीन साहित्यिक गतिविधि का प्रमुख केन्द्र **इरास्मस** था। **इरास्मस पुरातनता और नवीनता का सफल समन्वय था।**

दांते मध्ययुग का अन्तिम और आधुनिक युग का पहला कवि था। उसकी मुख्य कृति **'डिवाइन कॉमेडी'** नये युग के प्रारंभ का मुख्य स्रोत थी। इस कृति में कवि ने नरक और स्वर्ग की काल्पनिक यात्रा का वर्णन किया। इसके माध्यम से उसने अपने देश–प्रेम, राष्ट्रभाषा तथा राष्ट्रीय साहित्य के प्रति लोगों की रुचि पैदा करने की कोशिश की। **पेत्रार्क** मानववाद का प्रबल समर्थक था। उसने कई देशों की यात्रायें करके प्राचीन पांडुलिपियाँ एकत्र करके उनकी प्रतिलिपियाँ तैयार कीं तथा उसने प्राचीन यूनानी साहित्य की पूर्णता तथा सौंदर्य को समझा और उसे संस्कृति के विकास का एक सफल और सशक्त माध्यम माना। उसने अपनी कविता का केन्द्र धर्म और ईश्वर की जगह मनुष्य को बनाया। उसने प्रकृति और मनुष्य के सम्बन्धों की व्याख्या मानववाद के आधार पर की। **पेत्रार्क** का शिष्य **बुकासिया** था, इसने अपनी कथाओं के माध्यम से इतालवी गद्य को जन्म दिया। मैकियावेली राजनीतिक विचारक, इतिहासकार, विचारक, कवि और इतिहास दर्शन का लेखक था। उसकी पुस्तक **'प्रिंस'** इटली की राजनीतिक आकांक्षाओं की परोक्ष अभिव्यक्ति थी। वह राजनीतिक चिन्तन का प्रख्यात और कुख्यात लेखक था। उसके संबंध में डॉ. धर्मवीर भारती ने लिखा है – "अन्तरात्मा की व्यर्थता और इसी सन्दर्भ में नैतिक मूल्यों की निरर्थकता के बारे में नीत्शे से कई शताब्दी पूर्व लगभग ऐसी ही बातें प्रख्यात या कुख्यात मैकियावेली ने कही थीं। उसने भी स्पष्ट यह कहा था कि शासक को अपने किये हुए वायदे नहीं निभाने चाहिये – यदि स्थितियाँ बदल जाएँ। उसे दिखना चाहिये करुणायुक्त, स्नेहशील, क्षमाशील .... होना चाहिए कठोर, निर्मम, आतंककारी। उसे मनुष्य के अन्दर के पशु को पहचानना चाहिए और उस पर नियंत्रण कर उसे हाँकना चाहिए। मैकियावेली ने जब ये बातें कही थीं तो (वह) मनुष्य जाति के कल्याण का दावा नहीं पेश कर रहा था, वह केवल शासक कैसे सत्ता हस्तगत करता है, कैसे अपनी व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा पूरी करता है और सत्ता की तृष्णा के क्षण में कैसे उसके लिए अन्तरात्मा निरर्थक सिद्ध हो जाती है इसका विवरण मात्र कर रहा था, बिना पैगम्बर का लबादा ओढ़े हुए।" मैकियावेली के इस तरह के राजनीतिक सिद्धांतों की वजह से उसे **'आधुनिक चाणक्य'** कहा जाता है। फिशर उसे **'सत्ता की राजनीति का कलाकार'** कहता है। उसने सेजार बोर्जिआ जैसे हत्यारे और बदनाम पोप को अपना नायक बनाया। इससे प्रतीत होता है कि पुनर्जागरण काल में इटली के साहित्यकारों ने धर्म के स्थान पर आम आदमी और तात्कालिक सामाजिक–राजनीतिक यथार्थ को अपना विषय बनाया था।

इरास्मस– हॉलैंड में जन्मा था और पुनर्जागरण युग का महान साहित्यकार तथा विचारक था। वह इंग्लैंड के पुनर्जागरण का मुख्य स्रोत था। **इरास्मस को नए युग का सर्वोत्तम आलोचक कहा जाता है,** क्योंकि वह चर्च का महान आलोचक था। वास्तव में वह चर्च को सुधारना चाहता था इसलिए उसकी कमियों तथा गलतियों की आलोचना करता था। वह मसीही मानवतावाद का प्रचारक था। उसकी पुस्तक **'मूर्खता की प्रशंसा (प्रेज ऑफ फॉली)'** में उसने युद्ध की क्रूरता, प्राचीन जीवन शैली की अपूर्णता, धार्मिक जीवन का खोखलापन, व्यापारियों, वकीलों इत्यादि सभी को अपनी व्यंग्यात्मक शैली का निशाना बनाया है। वह वास्तव में अज्ञानता तथा अंधविश्वास को उखाड़ फेंकना चाहता था, क्योंकि वह विवेकपूर्ण सोच तथा मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा का समर्थक था। इंग्लैंड में **चौसर, समस मोर** तथा शेक्सपियर के प्रयासों से अंग्रेजी भाषा को

प्रतिष्ठा मिली।' चौसर ने लोककथाओं को साहित्य का विषय बनाया तो अंग्रेजी साहित्य की भाषा के रूप में उभरने लगी, उसमें साहित्य की अन्य विधायें पनपने लगीं। **टामस मोर** की प्रसिद्ध पुस्तक **'यूरोपिया'** में वर्तमान ब्रिटेन की तुलना एक काल्पनिक आदर्श समाज से की। इस पुस्तक में वह अपने मानववादी चिंतन को अभिव्यक्ति देता है तथा पूँजीवादी पद्धति तथा उसके शोषण की आलोचना करता है।

शेक्सपियर – इंग्लैंड में एलिजाबेथ युग के पुनर्जागरणकालीन साहित्यकारों का प्रतिनिधि कवि और नाटककार विलियम शेक्सपियर था। वह एक मानवतावादी साहित्यकार था। उसकी प्रमुख कृतियों में – **'मर्चेन्ट ऑफ वेनिस', 'रोमियो जूलियट, 'जूलियट सीजर', 'हेमलैट', 'मैकबेथ', 'एज यू लाइक इट', 'ओथेलो', 'किंग लियर', 'मेरी वाइव्ज ऑफ विंडसर'** बहुत प्रसिद्ध हैं। शेक्सपियर को मानव के अन्तर्मन के चित्रण में महारत हासिल थी। मानव के अन्दर की तमाम अच्छाइयों तथा बुराइयों को उन्होंने चित्रित किया। मनुष्य के स्वभाव तथा उसकी भावनाओं की अभिव्यक्ति में उसने वातावरण के गहन चित्रण की असाधारण तकनीक का सहारा लिया।

1.10 धार्मिक विशेषताएँ

पुनर्जागरण से पहले यूरोप के सम्पूर्ण जीवन पर धर्म एक आतंक की तरह शासन कर रहा था। **प्रो. वर्मा** मध्ययुग पर धार्मिक जीवन की छाया का वर्णन इस तरह करते हैं – "मध्ययुग में धर्म समाज की धुरी था। पश्चिमी यूरोप कैथोलिक चर्च और पूर्वी यूरोप ग्रीक आर्थोडाक्स चर्च की छत्रछाया में जीते थे। इस धार्मिक एकाधिकार ने चर्च को यथास्थितिवाद का पूरी तरह पोषक और अनुदार बना दिया था। धर्म के स्वरूप में किसी भी तरह का परिवर्तन चर्च को असह्य था। चर्च की शक्ति कितनी बढ़ गई थी इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि ग्यारहवीं शताब्दी में पवित्र रोमन सम्राट हेनरी ने जब पोप ग्रेगोरी के हस्तक्षेप को मानने में आनाकानी की तो उस पर इतना दबाव पड़ा कि उसे आल्पस पर्वत को सर्दी के दिनों में पार करके नंगे पाँव पोप से क्षमा माँगने जाना पड़ा था। जब चर्च में पूरी तरह आस्था रखते हुए भी इंग्लैंड में वाइक्लिफ ने और बोहेमिया में हस ने थोड़े सुधारों की बात की तो उन्हें अपनी जान से हाथ धोना पड़ा था। चर्च से प्रारंभिक पोपों की निस्पृहता, सेवाभाव और विद्वता समाप्त हो चुकी थी। विभिन्न संतों के अनुयायी भले हों लेकिन वे अपने को कैथोलिक चर्च के अन्तर्गत ही मानते थे। पूरे मध्ययुग में पुरातन धर्म की न तो कोई समयानुकूल व्याख्या की गई और न ही उसमें कोई परिवर्तन किया गया। धीरे–धीरे चर्च रूढ़ियों, अंधविश्वासों, भ्रष्टाचार और शोषण का उपकरण बन गया था। इन सबका दबाव समाज पर पड़ता था। राजा और सामंत चर्च से समझौता करके हिस्सेदार बन जाते थे लेकिन सामान्यजन तो केवल स्वीकार कर सकता था।"

मध्ययुगीन इस धार्मिक प्रभाव के चलते पुनर्जागरण की नई चेतना ने मनुष्य के महत्व और गौरव को कुछ हद तक प्रतिष्ठित किया। ईश्वर की जगह मनुष्य महत्व ग्रहण करने लगा। पुनर्जागरणकालीन अन्य परिवर्तनों ने मनुष्य के इहलौकिक दृष्टिकोण को विकसित किया। इसके अतिरिक्त मनुष्य के अन्धविश्वास तथा अज्ञानता की जड़ता को तोड़ना प्रारंभ किया। पुनर्जागरण ने वैज्ञानिक दृष्टिकोण, विवेक और तर्क को विकसित किया। यूरोप का मनुष्य गहरी निद्रा से जागने लगा उसके अन्तर्मन पर छाया धर्म का नशा धीरे–धीरे टूटने लगा। अतः अब चर्च की आलोचना प्रारंभ हुई। धर्म के क्षेत्र में सुधारों की माँग जड़ पकड़ने लगी जिसका परिणाम धर्म सुधार आन्दोलन तथा प्रति धर्म सुधार आन्दोलन के रूप में हमारे समक्ष आया।

राबर्ट इरगैंग के अनुसार – "धर्म सुधार आन्दोलन एक जटिल और सुदूर गामी आन्दोलन था। पुनर्जागरण की भाँति ही धर्म सुधार आंदोलन मध्य युग की सभ्यता के विरुद्ध एक साधारण प्रतिक्रिया मात्र थी, परन्तु इसने राष्ट्रों के जीवन को अत्यधिक प्रभावित किया, क्योंकि सभी मनुष्य

NOTES

कला एवं साहित्य की अपेक्षा धर्म में अधिक रुचि रखते थे। इसने मध्यकालीन कैथोलिक धर्म का परित्याग कर आदिम ईसाई धर्म अर्थात् ईसा मसीह, सन्तपाल और ऑगस्टाइन के उपदेशों की महत्ता पर बल दिया। प्रारंभ में यह आन्दोलन एक धार्मिक आन्दोलन था। साथ ही इसमें सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक व बौद्धिक पहलू भी समाहित थे जिनका धर्म से अत्यन्त दूर का सम्बन्ध था।"

सोलहवीं सदी तक यूरोप में कई परिवर्तन हो चुके थे। चर्च की यथास्थिति आधुनिक युग की माँग और आवश्यकता तथा जीवन मूल्यों के प्रतिकूल थी। वह अपने भ्रष्ट स्वरूप के साथ–साथ आर्थिक शोषण के कारण भी आलोचना का शिकार हुआ। पुनर्जागरण आन्दोलन ने मनुष्य के अन्तर्मन को झकझोर दिया था। मनुष्य अब परंपरा के नाम पर कुछ भी स्वीकार करने को तैयार नहीं था। वह अंधी–आस्था के स्थान पर प्रश्नाकुल मानसिकता में बदल रहा था। उसे रूढ़ि के स्थान पर तर्क और अविवेक के स्थान पर विवेक की कसौटी मिल गयी थी। मनुष्य को व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की आवश्यकता ने कैथोलिक चर्च के विरोध में खड़े होने के लिए विवश किया। पुनर्जागरण कालीन इस स्थिति में कैथोलिक चर्च में तो सुधार किये ही साथ में प्रोटेस्टेंट सम्प्रदाय, कैल्विनवाद इत्यादि नए सम्प्रदायों की स्थापना का मार्ग प्रशस्त किया।

1.11 राजनीतिक और सामाजिक विकास

(1) **राजनीतिक परिवर्तन :–** मध्यकालीन यूरोप सामंतवादी जीवन पद्धति से संचालित था। राजनीतिक हलके में राजा की शक्ति कमजोरी थी और राजा सामंतों के सहारे राज्य चलाते थे। सामंतों के पास आर्थिक स्रोत जागीर तथा सैनिक भी होते थे। शार्लमेन के पश्चात् सम्पूर्ण यूरोप में सामंतवाद का विकास हुआ, परंतु पुनर्जागरण के प्रभाव से राजनीतिक क्षेत्र में जो सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए वे इस प्रकार हैं :–

- सामंतवाद का विघटन
- पवित्र रोमन साम्राज्य का विघटन
- नये राष्ट्रीय राजतंत्रों का उदय
- राज्यों पर चर्च के प्रभुत्व का विघटन
- राजा और मध्यवर्ग के संबंधों का विकास
- व्यक्ति और राष्ट्र के संबंधों का नया आधार
- संगठित 'आधुनिक राज्यों' की नींव पड़ी
- छोटी और आन्तरिक एकता से संगठित इकाइयों का उदय हुआ
- राष्ट्रीयता की भावना का विकास
- केन्द्रीय शासन का आधार मजबूत हुआ।

प्रो. लालबहादुर वर्मा के अनुसार पुनर्जागरण के परिणामस्वरूप राजनीतिक जीवन में जो परिवर्तन हुए वे इस प्रकार हैं – "पुनर्जागरण के पहले यूरोप का समाज पूर्णतया सामंती था। राजा भी सामंतों की उठा–पटक में कभी एक तरफ, कभी दूसरी तरफ रहने को मजबूर था। नई परिस्थितियों में सामंतवाद के कमजोर पड़ने से मध्यवर्ग का प्रभाव बढ़ा और राजा अपनी शक्ति बढ़ाने में सफल हुए। एक राष्ट्रीय राजतंत्र का विकास शुरू हुआ। फ्रांस में **फ्रांसिस प्रथम** और **हेनरी चतुर्थ** तथा इंग्लैंड में **हेनरी अष्टम** और एलिजाबेथ के शासनकाल में राष्ट्रीयता के आधार पर केन्द्रीय शासन मजबूत हुआ और राजा में सारे राष्ट्र की शक्ति को केंद्रित माना जाने लगा। यह विकास क्रम में महत्वपूर्ण कदम था। मध्यकाल तक का यूरोप सामंती विभाजनों

के बावजूद सम्राट और पोप की छत्र छाया में एकता के सूत्र में बँधा हुआ था। पुनर्जागरण के बाद जो राष्ट्रीय राज्य (नेशन स्टेट) जन्मे उनके कारण यूरोप में ऊपर से थोपी हुई एकता के स्थान पर और संगठित छोटी इकाइयों का जन्म हुआ। यद्यपि प्रोटेस्टेंट धर्म के विकास के बावजूद कैथोलिक चर्च और राष्ट्रीयता के उदय के बाद भी पवित्र रोमन साम्राज्य सबसे शक्तिशाली और बड़ी इकाई के रूप में बने रहे फिर भी लैटिन के स्थान पर अंग्रेजी, फ्रांसीसी, जर्मनी और स्पेनिश जैसी भाषाओं के कारण राष्ट्रों का आंतरिक संगठन और इस कारण शक्ति बढ़ने लगी। इस बढ़ती शक्ति के वाहक मध्यवर्ग और पूँजीपति वर्ग का महत्व बढ़ने लगा और धीरे–धीरे राजसत्ता की हिस्सेदारी में राजा और मध्यवर्ग की परिस्थितिजन्य निकटता भी बढ़ने लगी। सत्ता के संघर्ष में सामंत, राजा और मध्यवर्ग के त्रिकोण में सामंत अकेला पड़ने लगा। यह सच है कि शीघ्र ही स्वयं राजा और मध्यवर्ग के अंतर्विरोध बढ़ने लगे जिसकी परिणति फ्रांस की क्रांति में दिखाई पड़ती है, पर सामंती व्यवस्था के पतन के लिए इन दो तत्वों के बीच की प्रारंभिक निकटता सिद्ध हुई।''

पुनर्जागरण ने यूरोप और परोक्ष रूप से सारे विश्व के राजनीतिक जीवन को राज्य की नई अवधारणा दी और व्यक्ति तथा राजा के संबंधों के नए आधारों की पृष्ठभूमि प्रस्तुत की। व्यक्ति और राष्ट्र की अस्मिता की स्पष्ट व्याख्या और उनके संबंधों की अधिक संगठित रूपरेखा का आधार उन्हीं मूल्यों में निहित था जिनका पुनर्जागरण पोषक सिद्ध हुआ।

1.12 सामाजिक परिवर्तन

मध्यकाल से आधुनिक युग में प्रवेश का मुख्य लक्षण था पुनर्जागरण ने धर्म, राजनीति, सांस्कृतिक इत्यादि क्षेत्रों में नये आदर्श तथा मूल्यों की स्थापना की। इसका सीधा प्रभाव तत्कालीन समाज में हुए परिवर्तनों में दिखाई देता है। मध्यकालीन समाज जड़, अगतिशील, भाग्यवादी, संघर्ष और तनाव रहित, अंधविश्वासों में जकड़ा हुआ तथा धर्म और चर्च के चंगुल में फँसा, सामंतवादी मूल्यों से संचालित था। पुनर्जागरण ने समाज की इस जड़ता और जकड़ता को तोड़ा उसकी कूपमण्डूकता की चादर को हटाया और नये प्रकाश से आलोकित किया। पुनर्जागरण ने आम आदमी के गौरव को उसकी अस्मिता को पहचान दी। व्यक्तिवादी भावनाओं के विकास ने स्वातंत्र्य जैसे मूल्य को प्रतिष्ठित किया। कुलीनता और भाग्यवादिता की जंजीरों से आम मनुष्य को मुक्त किया। मनुष्य के वर्तमान जीवन को महत्वपूर्ण सिद्ध किया। मध्यवर्ग को अपनी पहचान बनाने तथा प्रतिष्ठा स्थापित करने का अवसर मिला। मनुष्य के विवेक और तर्क को प्रतिष्ठा मिली। सामाजिक विषमताओं पर गौर किया जाने लगा। पुनर्जागरण के प्रभाव से यूरोप का समाज आधुनिक सामाजिक संरचना की ओर अपने कदम बढ़ाने लगा।

1.13 वैज्ञानिक आविष्कार एवं नयी खोजें

(1) **वैज्ञानिक आविष्कार :–** वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास पुनर्जागरण का कारण भी था और परिणाम भी। वैज्ञानिक आविष्कारों का होना पुनर्जागरण की महत्वपूर्ण विशेषता भी थी और उसका प्रभाव भी। वैज्ञानिक आविष्कारों का होना वास्तव में वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकास का परिणाम है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण का अर्थ है – तर्क, प्रयोग और परीक्षण से निष्कर्ष निकालना। बिना प्रयोगों के कुछ भी सम्भव नहीं है। इस वैज्ञानिक दृष्टिकोण ने समाज तथा जीवन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन किये। आलोचना तथा समीक्षा का युग का प्रारम्भ हुआ जिससे जीवन का सही तर्क पूर्ण निष्कर्ष निकालने में आसानी हुई। पुरानी मान्यतायें टूटीं, अन्धविश्वासों की पकड़ कमजोर हुई, भाग्यवादिता की जड़ता जीवन की क्रियाशीलता में बदलने लगी।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण के साथ–साथ वैज्ञानिक आविष्कारों ने पुनर्जागरण को प्रभावित किया तथा पुनर्जागरण की नई चेतना से कई नये आविष्कार हुए। इस दिशा में **फ्रांसिस बेकन,**

NOTES

कोपरनिकस, गैलीलियो, केपलर, हार्वे, न्यूटन, डेकार्ले, गिलबर्ट, हेलमान्ट आदि वैज्ञानिकों ने अपनी नई खोजों तथा सिद्धांतों से वैज्ञानिक विकास को एक नई दिशा दी। इंग्लैंड के फ्रांसिस बेकन ने अपने ग्रंथ **'नोवम आर्गेनम'** द्वारा प्रयोग और प्रेक्षण की विधि का प्रतिपादन किया। उसने अपने निबन्धों से वैज्ञानिक तरीकों का प्रचार किया। अपने एक निबन्ध में वह लिखता है – **"विश्वास को दृढ़ बनाने के तीन साधन हैं – पहला अनुभव, दूसरा तर्क, तीसरा प्रमाणित आधार। इनमें सबसे अधिक शक्तिशाली साधन प्रमाणित आधार है, क्योंकि तर्क और अनुभव पर आधारित विश्वास कभी–कभी लुढ़क सकता है।"** कोपरनिकस ने अभी तक मान्य इस सिद्धान्त को कि पृथ्वी सृष्टि के केन्द्र में है, चुनौती दी और कहा कि ब्रह्माण्ड के केन्द्र में पृथ्वी नहीं सूर्य है। उसने यह भी कहा कि पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमती है और 24 घन्टों में एक चक्कर पूरा करती है। धार्मिक पादरियों ने इस सिद्धान्त का विरोध किया क्योंकि यह धार्मिक विश्वास के प्रतिकूल था। इसी सिद्धान्त के समर्थन करने के कारण इटली के वैज्ञानिक **'ब्रूनो'** को जिन्दा जला दिया गया था। डेनमार्क के वैज्ञानिक **टाइक्रोब्राहे** ने इटली के ब्रूनो तथा कोपरनिकस के सिद्धान्तों की पुष्टि की तथा उसने एक आधुनिक वेधशाला का निर्माण किया। इस वेधशाला में ग्रहों तथा नक्षत्रों की स्थिति का प्रेक्षण किया। **इन्हीं प्रेक्षणों** के आधार पर **केपलर** ने ग्रहों की कक्षाओं की सही स्थिति का पता लगाया। उसने **गणित के आधार** पर कोपरनिकस के सिद्धांतों को प्रमाणित किया।

गैलीलियो – इटली का वैज्ञानिक था जिसने दूरबीन का आविष्कार करके **ग्रहों** सम्बन्धी नए सिद्धांतों को प्रमाणित किया। उसने आधुनिक भौतिकी की पद्धतियों का **प्रथम स्पष्ट** उदाहरण प्रस्तुत किया। भौतिक शास्त्र के क्षेत्र में गैलीलियो का योगदान **वायु–मापयंत्र** तथा **पेण्डुलम** के सिद्धान्त का आविष्कार करना था। इंग्लैण्ड के गणितज्ञ **न्यूटन** ने गुरुत्वाकर्षण के सिद्धांत का प्रतिपादन किया और डेकार्ते ने प्रथम बार बीजगणित का प्रयोग ज्यामिति में किया। **गिलबर्ट ने चुम्बक की खोज की, जानसेन** ने यौगिक सूक्ष्मदर्शी यन्त्र बनाया।

चिकित्सा के क्षेत्र में नीदरलैंड के **वेसेलियम** ने शल्य क्रिया का अध्ययन प्रस्तुत किया तथा मानव शरीर संरचना पर पुस्तक लिखी। इंग्लैंड के **विलियम हार्वे** ने एक प्रवाह के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। **हेलमान्ट ने कार्बन डाइ ऑक्साइड** की खोज की। विज्ञान के इन नए सिद्धांतों तथा आविष्कारों ने पुरानी गलत मान्यताओं को बदलने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

(2) **नई भौगोलिक खोजें** :– यूरोप में आधुनिक युग के प्रारंभ का एक महत्वपूर्ण लक्षण था नये शक्तिशाली राष्ट्रीय राजतंत्रों का विकास। नये नेशन स्टेटों के उत्थान के साथ ही सामुद्रिक गतिविधियों तथा भौगोलिक खोजों की दिशा में प्रयास प्रारंभ हुए। पुनर्जागरण के परिणामस्वरूप नये क्षेत्रों की खोजों की आवश्यकता महसूस हुई। इस दिशा में पुर्तगाल तथा स्पेन के साहसी नाविकों ने सबसे महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

- **अमेरिका की खोज** :– 1492 में **क्रिस्टोफर कोलम्बस** अटलांटिक महासागर से होकर एशिया पहुँचने के लिए स्पेन के समर्थन तथा सहयोग से यात्रा पर निकला। लगभग 10 सप्ताह की कठिन यात्रा के बाद अक्टूबर 1492 को वह नई भूमि (अमेरिका) पर पहुँचा। वहाँ के निवासियों को उसने **'रेड इंडियन'** नाम दिया। इस खोज से यूरोप बल्कि सम्पूर्ण विश्व एक नई दुनिया से परिचित हुआ। इसके अतिरिक्त कोलम्बस ने **सान सैल्वाडोर, सांता मारिया, क्यूबा के उत्तरी पूर्वी तट** की भी खोज की। अपने दूसरे अभियान में उसने **वेस्टइण्डीज** के अनेक द्वीपों की खोज की। **अमेरिगो वैस्पुची** के नाम पर नई दुनिया का नामकरण अमेरिका किया गया।
- **भारत की खोज** :– पुर्तगाल के शासक के प्रयासों के परिणामस्वरूप 1487 में **बार्थो लोम्यो** दियाज ने अफ्रीका के दक्षिणी तट की खोज की तथा उसका नाम आशा **अंतरीप (केप ऑफ गुड होप)** रखा। इसी समय एक अन्य नाविक ने कांगो के मुहाने की खोज

की। इसके बाद 1497 में **वास्को–डी–गामा** नामक नाविक ने आशा अंतरीप होते तथा अफ्रीका के उत्तरी किनारे के पास से होते हुए अपनी यात्रा प्रारंभ की तथा 1498 में वह **'भारत के कालीकट'** बन्दरगाह पर पहुँच गया।

NOTES

भौगोलिक खोजों का सबसे महत्वपूर्ण परिणाम हुआ व्यापार के विकास के रूप में हुआ। नये उपनिवेशों की स्थापना ने आर्थिक विकास के रास्ते खोजे। वैचारिक क्षेत्र में भी भौगोलिक खोजों के नये परिणाम सामने आये।

1.14 इटली में पुनर्जागरण (RENAISSANCE IN ITALY)

प्राचीन रोमन सभ्यता का मुख्य केन्द्र इटली था और पुनर्जागरण का मुख्य स्रोत प्राचीन रोमन सभ्यता एवं निर्माण कार्य थे इसलिए इटली में पुनर्जागरण सबसे पहले हुआ। प्राचीन रोम सम्पूर्ण ईसाई जगत की सांस्कृतिक विरासत थी। वहाँ दर्शन, साहित्य तथा वैभवशाली निर्माण कार्य की परंपरा हमेशा रही। पुनर्जागरण ने इन सबसे प्रेरणा ली। इसी समय कुस्तुनतुनिया के पतन ने यूनानियों को वहाँ से भागने पर विवश किया। वे लोग इटली में आकर बसने लगे यहाँ उनका सम्मान हुआ। चूँकि इस समय इटली के नगरों में बहुत सा धन इकट्ठा हो रहा था। धनी व्यापारी वर्ग ने विभिन्न कलाकारों, साहित्यकारों तथा दार्शनिकों और विचारकों को प्रश्रय दिया। इससे इटली में नये तथा परिवर्तनकारी विचारों का उदय हुआ जो पुनर्जागरण का मुख्य कारण बने। एक लेखक के अनुसार – **"इटली की आर्थिक समृद्धि ने कलाकारों और साहित्यकारों के लिए उचित वातावरण का निर्माण किया। समृद्ध व्यापारियों ने साहित्यिक तथा कलात्मक गतिविधियों की उन्नति हेतु खुले दिल से खर्च किया। उन्होंने कलाकृतियों को खरीदने, पांडुलिपियों की खोज और अनुवाद तथा कलाकारों को प्रश्रय एवं उत्साह प्रदान करने में अपनी समृद्धि का उपयोग किया। इस प्रकार भौतिक समृद्धि ने बौद्धिक विस्तार में योगदान दिया। ऐसे में पुनर्जागरण की शुरुआत इटली में हुई तथा इस युग के विश्व प्रसिद्ध साहित्यकार एवं कलाकार यहाँ हुए तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है।"**

साहित्यकार, लेखक एवं कलाकार

(a) **दांते (1265–1321)** – दांते मध्ययुग का अन्तिम और आधुनिक युग का पहला कवि था। उसकी मुख्य कृति **'डिवाइन कॉमेडी'** नये युग के प्रारंभ का मुख्य स्रोत थी। इस कृति में कवि ने नरक और स्वर्ग की काल्पनिक यात्रा का वर्णन किया है। इसके माध्यम से उसने देश–प्रेम, राष्ट्र भाषा तथा राष्ट्रीय साहित्य के प्रति लोगों की रुचि पैदा करने की कोशिश की।

(b) पेट्रार्क (1304–1374) – यह मानववाद का प्रबल समर्थक था। उसने कई देशों की यात्रायें करके प्राचीन पांडुलिपियाँ एकत्र करके उनकी प्रतिलिपियाँ तैयार कीं तथा उसने प्राचीन यूनानी साहित्य की पूर्णता तथा सौंदर्य को समझा और उसे संस्कृति के विकास का सफल और सशक्त माध्यम माना। उसने अपनी कविता का केन्द्र धर्म और ईश्वर की जगह मनुष्य को बनाया। प्रकृति और मनुष्य के सम्बन्धों की व्याख्या मानववाद के आधार पर की। उसका शिष्य बुकासिया भी पुनर्जागरण का सच्चा प्रतिनिधि था। वह आधुनिक इतालवी गद्य का जनक भी था।

कलाकार – लेखक तथा साहित्यकारों के अतिरिक्त इटली में चित्रकला तथा वास्तुकला का भी विकास हुआ। पुनर्जागरण युग में एक लेखक के अनुसार – **"मानसिक दृष्टिकोण की व्यापकता तथा असीमित रचनात्मक शक्ति का विकास इस युग की कला के स्थायी रूपों में व्यक्त हुआ है। नए युग के कलाकार यथार्थ प्रकृति और सौन्दर्य की तरफ आकर्षित हुए हैं। कलाकार की तूलिका जीवन और प्रकृति में तारतम्य स्थापित करने के लिए व्यग्र दिखाई देती है।"**

NOTES

(a) **लियोनार्दो–द–विन्सी (1452 से 1519)** :– मोनालिसा के प्रसिद्ध चित्र का चित्रकार लियोनार्दो–द–विन्सी ही था। उसने अनेक चित्र बनाये परंतु वर्तमान में सिर्फ 17 चित्र ही उपलब्ध हैं। लियोनार्दो बहुमुखी प्रतिभा का धनी था। वह संगीतकार, दार्शनिक, गणितज्ञ, वैज्ञानिक तथा चित्रकार था। उसके चित्रों में भाव समृद्धि और कल्पनाशीलता दिखाई देती है। **मोनालिसा** के अतिरिक्त **'वर्जिन ऑफ द राक्स', 'दि लास्ट सपर'** जैसे चित्रों से वह विश्व प्रसिद्ध कलाकार बन गया।

(b) **माइकेल एंजेलो (1475–1564)** :– माइकेल एंजेलो भी चित्रकार के साथ–साथ मूर्तिकार, स्थापत्यकार तथा कवि भी था। उसने रोम के गिरजाघर की छतों तथा चौखटों पर चित्र बनाये। उसकी एक कृति है **'लास्ट जजमेन्ट'**। उसने 145 चित्रों तथा 400 मूर्तियों की रचना की। उसकी दो मूर्तियाँ प्रसिद्ध हैं – **(i) पेंता, (ii) डेविड**। वह मनुष्य को ईश्वर की सबसे सुन्दर रचना मानता था।

इटली के चित्रकारों की विषयवस्तु धार्मिक होते हुए भी उनकी दृष्टि में मानवीयता ही महत्वपूर्ण है। इनके चित्र तत्कालीन समाज के परिवर्तनों को भी यथार्थ रूप में चित्रित करते हैं।

1.15 इंग्लैंड में पुनर्जागरण (RENAISSANCE IN ENGLAND)

पुनर्जागरण इटली से प्रारम्भ होकर उत्तरी यूरोप की तरफ फैला। उत्तरी यूरोप में – इंग्लैंड, फ्रांस, स्पेन, जर्मनी इत्यादि देशों में पुनर्जागरण का विस्तार बाद में हुआ। इंग्लैंड में पुनर्जागरण के लक्षण एडवर्ड चतुर्थ के समय में ही दिखाई देने लगा था परन्तु वास्तविक रूप से हेनरी सप्तम के समय में ही विस्तारित हुआ। ब्रिटेन के दो विश्वविद्यालयों–आक्सफोर्ड तथा केम्ब्रिज–ने पुनर्जागरण को फैलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इन विश्वविद्यालयों के कुछ छात्र इटली गये तथा वहाँ यूनानी लिपि एवं साहित्य का अध्ययन किया तथा पुनर्जागरण की प्रेरणा लेकर लौटे। इन विद्यार्थियों में विलियम सैंलिग प्रथम छात्र था जिसने यूनानी लिपि का अध्ययन किया। उसका शिष्य लिनेकर भी इटली गया था जहाँ उसने सभी विषयों का अध्ययन किया था।

जॉन कोलेट लन्दन के अमीर व्यापारी का पुत्र था। वह भी इटली गया वहाँ से अध्ययन करके लौटा तथा सेण्टपाल विद्यालय में अध्यापक बन गया और उसने पोप एवं पादरियों की कटु आलोचना की।

प्रमुख साहित्यकार

(1) **इरास्मस (1469–1526)** :– पुनर्जागरण आन्दोलन का महान व्यक्ति इरास्मस था। हॉलैंड में जन्मा इरास्मस इंग्लैंड के पुनर्जागरण का प्रमुख स्रोत था। वह चर्च का महान आलोचक था। वास्तव में वह चर्च को सुधारना चाहता था इसलिए उसकी कमियों की आलोचना करता था। वह मसीही मानवतावाद का प्रचारक था। उसने उस समय में अपनी लेखनी के माध्यम से जीविका अर्जित की थी। वह ब्रह्मज्ञान के विद्वान के रूप में ऑक्सफोर्ड में कार्यरत था। उसके विचारों ने जनता को आन्दोलित कर दिया था।

(2) **विलियम शेक्सपियर (1564–1616)** :– शेक्सपियर विश्व के महान साहित्यकारों के रूप में प्रतिष्ठित है। शेक्सपियर एक मानववादी साहित्यकार था। वह नाटककार एवं कवि था। उसकी प्रमुख कृतियाँ **'मर्चेन्ट ऑफ वेनिस', रोमियो जूलियट, जूलियस सीजर, 'हेमलैट', 'मैकबेथ', 'एज यू लाइक इट'**, बहुत प्रसिद्ध हैं। शेक्सपियर ने मानव के अन्तर्मन के चित्रण में महारत हासिल की थी। मानव की सारी अच्छाई–बुराइयों को उन्होंने चित्रित किया। मनुष्य के स्वभाव तथा उसकी भावनाओं की अभिव्यक्ति में उसने असाधारण तकनीक का प्रयोग किया था।

(3) **थामस मूर** :– इंग्लैंड में पुनर्जागरण को प्रसारित करने में सर्वाधिक योग देने वालों

में थामस मूर का नाम आता है। वह राजनीतिक विचारक था। उसने राजनीतिक आलोचना के माध्यम से जनता में नयी चेतना पैदा की। उसकी सर्वाधिक प्रचलित कृति **'यूरोपिया'** है। वह धर्म तथा विधिशास्त्र का ज्ञाता था।

इस तरह इंग्लैंड में पुनर्जागरण को बल मिला। उपर्युक्त विद्वानों के अतिरिक्त वहाँ के ट्यूडर शासकों ने भी इसमें योगदान किया।

1.16 धर्मसुधार आन्दोलन (REFORMATIN)

यूरोप में आधुनिक युग के प्रारंभ के साथ–साथ जो परिवर्तन प्रारंभ हुए उनमें पुनर्जागरण और धर्मसुधार आन्दोलनों का विशेष महत्व है। धर्म सुधार आन्दोलन सोलहवीं शती में प्रारंभ हुए। मार्टिन लूथर इसका प्रणेता माना जाता है। पुनर्जागरण के परिणामस्वरूप यूरोप के धार्मिक क्षेत्र में महत्वपूर्ण परिवर्तनों की माँग होने लगी। धार्मिक क्षेत्र में परिवर्तनों की माँग को ही धर्म सुधार आन्दोलन कहा जाता है।

राबर्ट इरगैंग के अनुसार – "धर्म सुधार आन्दोलन एक जटिल और सुदूरगामी आन्दोलन था। पुनर्जागरण की भाँति ही धर्म सुधार आंदोलन मध्य युग की सभ्यता के विरुद्ध एक साधारण प्रतिक्रिया मात्र थी, परन्तु इसने राष्ट्रों के जीवन को अत्यधिक प्रभावित किया, क्योंकि सभी मनुष्य कला एवं साहित्य की अपेक्षा धर्म में अधिक रुचि रखते थे। इसने मध्यकालीन कैथोलिक धर्म का परित्याग कर आदिम ईसाई धर्म अर्थात् ईसा मसीह, सन्तपाल और ऑगस्टाइन के उपदेशों की महत्ता पर बल दिया। प्रारम्भ में यह आन्दोलन एक धार्मिक आन्दोलन था। साथ ही इसमें सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक व बौद्धिक पहलू भी समाहित थे जिनका धर्म से अत्यन्त दूर का सम्बन्ध था।"

हेज के अनुसार :– "वस्तुतः 16वीं सदी के आरम्भ में बौद्धिक जागृति के फलस्वरूप बहुसंख्यक ईसाई कैथोलिक चर्च के कटु आलोचक थे और चर्च की संस्था में मूलभूत परिवर्तन चाहते थे। इसी सुधारवादी प्रयास के फलस्वरूप जो धार्मिक आन्दोलन हुआ और ईसाई धर्म के जो नवीन धार्मिक सम्प्रदाय अस्तित्व में आये, वह सामूहिक रूप से धर्म सुधार आन्दोलन कहलाते हैं।"

फिशर के अनुसार :– "प्रोटेस्टेन्ट धार्मिक आन्दोलन पोप की धार्मिक निरंकुशता या सत्ता, पुरोहितों के विशेष अधिकारों व भूमध्यसागरीय जातियों के वंशानुगत असहिष्णु धर्म के विरुद्ध एक विद्रोह था। एक ओर इसने पुरोहितों के अधिकारों और स्वत्वों के विरुद्ध लौकिक विद्रोह का रूप धारण किया व दूसरी ओर इसने धार्मिक पुनरुत्थान व ईसाई चर्च की पवित्रता तथा मौलिकता को पुनः स्थापित करने की चेष्टा की।"

(A) धर्म सुधार आन्दोलन से पूर्व की स्थिति

(1) **चर्च की उत्पत्ति व संगठन :–** ईसा मसीह के जन्म के बाद लगभग तीन–चार शताब्दियों तक ईसाइयों का उत्पीडन किया जाता रहा। परंतु उनकी संख्या निरंतर बढती गई और अन्ततः ईसाई धर्म रोमन साम्राज्य का राज्य धर्म बन गया। चर्च धीरे–धीरे संगठित और केन्द्रीकृत संस्था का रूप लेता गया और मध्यकाल तक वह सम्पूर्ण यूरोप की सर्वप्रभुता सम्पन्न संस्था बन गई। राजा को भी चर्च के पोप की आज्ञाओं को मानना पड़ता था। नवीं शताब्दी में चर्च दो भागों में बँट गया। पूर्वी चर्च और पश्चिमी चर्च। पूर्वी चर्च **परम्परावादी (आर्थोडाक्स)** कहलायी तथा इसे **ग्रीक चर्च** भी कहा जाता था। पश्चिमी शाखा रोमन कैथोलिक चर्च के नाम से विख्यात हुई। इसका प्रधान रोम का पोप होता था। **रोमन कैथोलिक चर्च** ने पश्चिमी यूरोप के सम्पूर्ण जीवन को अपने प्रभाव में लिया था। कोई भी व्यक्ति जन्म लेते ही चर्च का सदस्य बन जाता था। प्रत्येक व्यक्ति को चर्च के आदेशों, परम्पराओं तथा रीति–रिवाजों को मानना पड़ता था। आज्ञा उल्लंघन करने वाले को कठोर दण्ड दिया जाता था। यूरोप का मानव अपने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र तथा प्रतिपल चर्च की शरण में होता था। उसका सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक

NOTES

तथा व्यक्तिगत जीवन चर्च के अधीन होता था। चर्च की शक्ति तथा प्रभाव के बाहर कोई नहीं था, यहाँ तक कि राजा भी उसकी आज्ञाओं का उल्लंघन नहीं कर सकता था। चर्च की शक्ति का सबसे बड़ा उदाहरण ग्यारहवीं शती के रोमन सम्राट हेनरी का है जब उसने पोप के आदेश को मानने से इंकार किया तो उसे नंगे पैर आल्पस पर्वत पार करके, ठंड के दिनों में, पोप से माफी माँगने जाना पड़ा। ब्रिटेन में बाइक्लिफ तथा बोहेमिया में हस को चर्च में सुधार की बात करने पर अपनी जान से हाथ धोना पड़ा था। स्पष्ट था कि चर्च की स्थिति तथा धर्म के नियमों, सिद्धांतों में कोई परिवर्तन सम्भव नहीं था।

धर्म सुधार आन्दोलन से पूर्व की स्थिति के सम्बन्ध में **प्रो. लालबहादुर वर्मा** का कथन इस प्रकार है –"पुनर्जागरण से पहले यूरोप पर कैथोलिक चर्च का एकछत्र साम्राज्य था। यूरोप को ईसा का राज्य कहा जाता था। चर्च 'एक' ओर 'अविभाज्य' था, और उसका जीवन–मरण चर्च के बाहर संभव नहीं था। चर्च का संगठन बहुत मजबूत था। रोम से यूरोप के सुदूर गाँवों तक एक ऐसा तंत्र फैला हुआ था कि कोई व्यक्ति चर्च का विरोध नहीं कर सकता था। जैसे राजकीय कर अनिवार्य थे वैसे ही चर्च के कर भी। इस प्रकार अनिवार्यतः चर्च की शरण में रहता हुआ यूरोप का व्यक्ति अपने सामाजिक और धार्मिक जीवन में हर पल चर्च पर निर्भर रहता था। वह जानता था कि उसका उद्धार भी चर्च की कृपा से ही होगा। वह पाप करता तो चर्च में प्रायश्चित का विधान था। मरने से पहले चर्च उसे आश्वस्त करता था कि चर्च उसे अगली यात्रा में भी मदद करेगा। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि सारा समाज धर्म केंद्रित, धर्म प्रेरित और धर्मनियंत्रित था। सम्राटों को भी पोप के आगे घुटने टेकने पड़ते थे।"

(2) **कैथोलिक चर्च के सार्वभौमिक प्रभुत्व के कारण :–** कैथोलिक चर्च और उसके प्रतिनिधि रोम के पोप की सार्वभौम सत्ता होने के कई कारण थे–

➢ कैथोलिक चर्च का उद्‌गम ईश्वरीय माना जाता था।

➢ पोप ईश्वर का प्रतिनिधि है।

➢ चर्च का संगठन।

➢ चर्च की संस्कार विधि।

➢ चर्च ही मोक्ष प्रदान कर सकता है।

➢ चर्च की असीम आर्थिक शक्ति।

➢ कैथोलिक चर्च का उद्‌गम ईश्वरीय माना जाना :– ईसाई जगत में यह माना जाता था कि रोमन कैथोलिक चर्च एक ईश्वरीय संस्था है। जनता का यह विश्वास था कि चर्च की स्थापना ईसा ने की थी। चूँकि चर्च एक ईश्वरीय संस्था मानी जाती है अतः उसके आदेशों तथा नियमों के उल्लंघन का अर्थ होगा ईश्वर के आदेशों का उल्लंघन। इस मान्यता ने आम आदमी के मन को इतना आतंकित कर दिया था कि कोई चर्च का विरोध करने की सोच भी नहीं सकता था। इस विश्वास ने आम आदमी के तर्क और विवेक को कुंठित कर दिया तथा चर्च के अधिकारियों को मनमाने तरीके से जनता का शोषण करने की खुली छूट दे दी। चर्च के अधिकारी इस मान्यता की आड़ में भ्रष्टाचार तथा शोषण का खुला खेल खेलते रहते थे और जनता आँख बंद कर उसे ईश्वरीय आदेश मानकर स्वीकार करती रहती थी। धीरे–धीरे इस स्थिति में बदलाव हुआ और पुनर्जागरण ने लोगों के तर्क और विवेक को जगाया। इस कारण चर्च का विरोध प्रारम्भ हुआ।

➢ **पोप ईश्वर का प्रतिनिधि है :–** कैथोलिक चर्च को ईश्वरीय संस्था मानने के साथ ही चर्च के सर्वोच्च अधिकारी पोप को ईश्वर का प्रतिनिधि माना जाता था। ईश्वर के प्रतिनिधि के रूप में पोप सर्वोच्च शक्ति सम्पन्न व्यक्ति था। वह कानून तथा नियम बना सकता था। वह सभी धर्माधिकारियों की नियुक्ति करता था। बिशपों के क्षेत्रों से धन प्राप्त करता था।

ईसाई जनता से 'पीटर पेन्स' नामक कर लेता था। वह सर्वोच्च न्यायाधीश था। राज्य तथा जनता के प्रत्येक मामले में उसे हस्तक्षेप करने का अधिकार था। उसकी आज्ञाओं के उल्लंघन करने पर वह कोई भी दंड दे सकता था। उसके आदेशों को ईश्वरीय आदेश मानकर स्वीकार किया जाता था। उसके पास अथाह सम्पत्ति होती थी। सभी धार्मिक मामलों में वह सर्वोच्च शासक था। उसे जनता को मुक्त करने का अधिकार था। वह किसी व्यक्ति के मरने पर उसे अगले जन्म में भी सहायता कर सकता था।

- **चर्च का संगठन :–** कैथोलिक चर्च सम्पूर्ण पश्चिमी यूरोप के राज्यों में सुनियोजित ढंग से संगठित था। इस कारण सम्पूर्ण यूरोप में उसका व्यापक प्रभाव था। चर्च का प्रसार नगरों से लेकर ग्रामों तक था। उसने स्थानीय प्रबन्ध के लिए प्रान्तों, मण्डलों तथा जनपदों में अपने अधिकारी नियुक्त किये थे। प्रान्तों में आर्चबिशप तथा मण्डलों में बिशप प्रमुख धर्माधिकारी होते थे। ग्राम स्तर पर पादरी तथा पुरोहित कार्य करते थे। इस तरह चर्च ने पोप से लेकर पादरी तक एक सुनियोजित प्रशासन तंत्र विकसित कर रखा था जो प्रत्येक छोटी से छोटी इकाई तक ऊँची पहुँच रखते थे। ये अधिकारी प्रत्येक स्तर पर पोप के आदेशों का पालन करवाते थे। धन एकत्र करते थे तथा अन्य धार्मिक कार्य सम्पादित करते थे।

- **चर्च की संस्कार विधि :–** ईसाई जगत में चर्च के सार्वभौमिक प्रभुत्व का एक महत्वपूर्ण कारण था ईसाई धर्म शास्त्र के संस्कार सिद्धांत। प्रत्येक ईसाई जन्म लेते ही इन संस्कारों के अनुसार चर्च के प्रभाव में फँसता जाता था। जनता को यह विश्वास दिलाया जाता कि ये संस्कार आत्मा की मुक्ति के लिए आवश्यक थे अतः इनका विधिवत लागू होना आवश्यक था। ये संस्कार सात थे। इन सप्त संस्कारों के माध्यम से ईसाई धर्म की सम्पूर्ण शिक्षा दी जाती थी। ये संस्कार इस क्रम में सम्पादित किये जाते थे :–

  (1) जन्म–संस्कार

  (2) प्रमाणीकरण–संस्कार

  (3) प्रायश्चित–संस्कार

  (4) पवित्र यूकारिस्ट (प्रभु की व्यालू)

  (5) मृत्यु–संस्कार

  (6) मान्यता–प्रदान संस्कार

  (7) विवाह–संस्कार

(1) **जन्म –संस्कार** (Baptism) :– इस संस्कार के द्वारा नवजात बालक चर्च में दीक्षित हो जाता है अर्थात् वह चर्च का सदस्य हो जाता है। इसके अलावा इस संस्कार द्वारा बालक को पूर्व जन्म के समस्त पापों से मुक्ति दिलाई जाती है। यह कार्य पादरी द्वारा सम्पन्न किया जाता है।

(2) **प्रमाणीकरण संस्कार** (Confirmation) :– इस संस्कार द्वारा नवयुवक को चर्च की सदस्यता दी जाती है तथा वह ईसा का सच्चा सेवक बन जाता है जो उसकी आज्ञाओं का पालन करता है।

(3) **प्रायश्चित संस्कार** (Penance) :– यह एक महत्वपूर्ण संस्कार था, क्योंकि इसके द्वारा उन पापों से मुक्ति मिलती थी जो बपतिस्मा ग्रहण करने के बाद किये गये हों। इस जन्म के पापों से मुक्ति पाने के लिए प्रायश्चित संस्कार में विवेक का परीक्षण, ईश्वर के विरुद्ध पुनः कार्य न करने का दृढ़ संकल्प, चर्च की सेवा, अनुताप तथा पुण्य कार्य करने पड़ते थे। चर्च ने इस संस्कार पर अत्यधिक बल दिया क्योंकि यह जनता के आर्थिक शोषण में मदद करता था।

NOTES

(4) **यूकारिस्ट–प्रभु की व्यालु** (Eucharist & Lard's Supper) :– यह संस्कार तत्वान्तरण का सिद्धान्त कहलाता था। इसके द्वारा पादरी पूजा हेतु रखी गई रोटी तथा शराब को पवित्र करता था जो ईसा की भौतिक तथा आध्यात्मिक शक्ति के रूप में परिवर्तित हो जाती थी। फिर सभी ईसाई जनता उसका प्रसाद के रूप में ग्रहण करती थी। इस संस्कार द्वारा ईसाइयों में सामूहिक प्रार्थना (मैस) का प्रचलन हुआ। इसमें कई अनुष्ठान किये जाते थे।

(5) **मृत्यु संस्कार** (Extreme Function) :– इस संस्कार के द्वारा मृत्यु शैय्या पर लेटे व्यक्ति की आत्मा को शान्ति के लिए पादरी द्वारा प्रार्थना तथा अनुष्ठान किये जाते थे।

(6) **मान्यता प्रदान संस्कार** (Ordination) :– यह संस्कार केवल धर्माधिकारियों के लिए होता था। इससे पादरियों, बिशपों तथा आर्कबिशपों को अपना कार्य सम्पादित करने के लिए शक्ति प्राप्त होती थी।

(7) **विवाह संस्कार** (Matrimony) :– इसके द्वारा युवक–युवतियों का धर्मसंगत विवाह सम्पन्न किया जाता था।

- **चर्च ही मोक्ष दे सकता है :–** ईसाई चर्च के नियमों के तहत ये समस्त संस्कार पुरोहित ही सम्पन्न करवा सकता था। उनका मानना था कि चर्च की सहायता से ही हमें मोक्ष मिल सकता है। इस विश्वास के कारण समस्त यूरोपवासी चर्च की दया के पात्र बनकर रह गये।
- **चर्च की असीम आर्थिक शक्ति :–** कैथोलिक चर्च यूरोप की सबसे बड़ी आर्थिक शक्ति मानी जाती थी। उसके प्रभुत्व होने का यह एक महत्वपूर्ण कारण है। चर्च के पास आय के अनेक स्रोत होते थे। इसके पास कई जागीरें, अचल सम्पत्ति तथा बहुत बड़ी मात्रा में चल सम्पत्ति होती थी। चर्च कई करोंटाइथ, फर्स्ट फूट–से आय अर्जित करता था। धार्मिक कार्यों की फीस होती थी। इस तरह महत्वपूर्ण आर्थिक शक्ति होने से चर्च का प्रभाव समस्त ईसाई जनता पर था।

इस तरह सोलहवीं शती में चर्च के एकछत्र प्रभुत्व के खिलाफ यूरोप में जो आन्दोलन हुआ उसे धर्म सुधार आंदोलन कहा जाता है।

1.17 धर्मसुधार आंदोलन के कारण

सोलहवीं सदी तक यूरोप में कई परिवर्तन हो चुके थे। यूरोप के कई देशों में आधुनिकता की लहर चल रही थी। पुनर्जागरण आन्दोलन ने मनुष्य के अन्तर्मन–चेतना को झकझोर दिया था। मनुष्य अब परंपरा के नाम पर कुछ भी स्वीकार करने को तैयार नहीं था। वह अंधी–आस्था के स्थान पर प्रश्नाकुल मानसिकता में बदल रहा था। रूढ़ि के स्थान पर तर्क और इरेशनल (अविवेक) के स्थान पर विवेक विराजमान होने लगा था। इसी के साथ वैज्ञानिक अविष्कारों ने तथा अनेक भौगोलिक खोजों ने उसे कूपमण्डूकता से बाहर निकाला। यूरोप का जीवन अब ईश्वर और धर्म के स्थान पर मानव केन्द्रित हो रहा था। अब मनुष्य को एकछत्र प्रभुत्व न चर्च का बर्दाश्त था और न शासकों का। वह दोनों क्षेत्रों में स्वतन्त्रता का समर्थक हो रहा था। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की आवश्यकता ने उसे कैथोलिक चर्च के विरोध में आंदोलित होने के लिए विवश किया।

उपर्युक्त परिस्थितियों के सन्दर्भ में धर्म सुधार आंदोलन के कई कारण खोजे जा सकते हैं :–

(A) धार्मिक कारण (B) आर्थिक कारण (C) राजनीतिक कारण

धार्मिक आंदोलन के यह मुख्य कारण थे। इनके अन्तर्गत शेष सभी कारण समाहित हो जाते है।

(A) धार्मिक कारण

धर्म सुधार आन्दोलन के सबसे महत्वपूर्ण कारण धार्मिक रहे। आम आदमी धर्म की बुराइयों तथा चर्च के शोषण से असन्तुष्ट था। धार्मिक कारणों में –

- कैथोलिक चर्च का स्वरूप और उसके दोष
- पोप तथा धार्मिक अधिकारियों की विलासिता
- क्षमा पत्रों की बिक्री।

(1) **कैथोलिक चर्च का स्वरूप और उसके दोष :– कैथोलिक** का अर्थ होता है **'सबका'** या **'सबके लिए'** तथा **'चर्च'** का अर्थ होता है **'प्रार्थना के लिए एकत्र ईसाई समाज।'** सामान्यतः सर्वसाधारण का होने के कारण इसका नाम पड़ा था कैथोलिक चर्च। इस चर्च के प्रसार में ईसाई धर्म की सारणी, सेवा भाव और प्रारंभिक संतों का आचरण तथा व्यवहार का महत्वपूर्ण योगदान था। इन कारणों से चर्च के अनुयायी आम जनता को अपनी ओर आकर्षित करने में सफल हुए। चर्च पहले व्यक्ति के लौकिक जीवन को संयमित बनाने तथा नैतिक और आध्यात्मिक जीवन जीने के लिए प्रेरित करता था।

मध्यकालीन यूरोप का राजनैतिक जीवन बिखरा हुआ था परंतु चर्च का राज्य बहुत संगठित था। प्रत्येक व्यक्ति चर्च के अधीन था और चर्च की प्रत्येक बात को मानने के लिए विवश था। चर्च की स्थिति महत्वपूर्ण थी उसके समक्ष किसी व्यक्ति का कोई मूल्य नहीं था। सम्पूर्ण चर्च धीरे–धीरे भ्रष्ट और विलासी होता जा रहा था। चर्च के अधिकारी व्यक्तिगत जीवन में ब्रह्मचारी होते थे मगर अन्दर–ही–अन्दर अनेक प्रकार के अनाचार करते थे। अलेक्जेंडर चतुर्थ न केवल चरित्र भ्रष्ट था बल्कि निर्लज्ज भी था। तेओ भी अपनी शाही खर्चों के लिए अनेक प्रकार के आर्थिक भ्रष्टाचार करता था। इस तरह सम्पूर्ण चर्च में भ्रष्टाचार व्याप्त था। जनता इस भ्रष्टाचार को समझने लगी थी तथा उससे घृणा करने लगी थी।

(2) **पोप तथा अन्य अधिकारियों की विलासिता :–** मध्यकाल में पोप केवल धार्मिक व्यक्ति न होकर राजनीति में भी रुचि लेने लगा था तथा उसमें हस्तक्षेप करने लगा था। व्यक्तिगत जीवन में भी वह एक सम्पन्न गृहस्थ का जीवन बिताते थे। बाइबिल में कहा गया था कि **"ऊँट का सुई के छेद से निकलना सम्भव है पर किसी धनिक का स्वर्ग पहुँचना मुश्किल है।"** परन्तु बाइबिल के सबसे बड़े व्याख्याता विलासिता पूर्ण जीवन व्यतीत करते थे। चर्च का कोई भी पद बिक सकता था। सम्पूर्ण तंत्र विलासिता का शिकार था। अब चर्च का शिकंजा इतना मजबूत था कि अधिकारी अब खुले रूप में भ्रष्टाचार तथा अनाचार करने लगे थे परन्तु कोई विरोध नहीं कर पाता था।

(3) **क्षमापत्रों की बिक्री :–** धर्मसुधार आन्दोलन का तात्कालिक कारण यही था। चर्च के शोषण तथा भ्रष्टाचार का सबसे निकृष्ट रूप था क्षमा–पत्रों की बिक्री। ईसाई धर्म में पापों के प्रायश्चित के लिए चर्च क्षमापत्र जारी करता था। क्षमा पत्रों का विकृत रूप यह था कि – वे स्वर्ग का टिकट समझकर बेचे जाते थे। क्षमापत्र खरीद कर व्यक्ति हमेशा के लिए पाप मुक्त हो जाता था।

(B) आर्थिक कारण

कैथोलिक चर्च के पोप तथा अधिकारी ऐश्वर्य और विलासिता का जीवन जीते थे। चर्च का यह भ्रष्टाचार वास्तव में सीधे जनता के शोषण से सम्बन्धित था। प्रारंभ में चर्च समाज पर निर्भर होता था। चर्च का खर्च चलाने के लिए समाज का प्रत्येक व्यक्ति कुछ न कुछ दान देता था। यह अनिवार्य नहीं स्वैच्छिक होता था। धीरे–धीरे चर्च की शक्ति बढ़ती गई तो चर्च ने यह दान अनिवार्य कर के रूप में लागू कर दिया गया। अब प्रत्येक व्यक्ति को अपनी आय का दशमांश

कर के रूप में चर्च को देना पड़ता था। अब वास्तव में उल्टा होने लगा। चर्च जनता की, समाज की सेवा कम करने लगा तथा करों की मात्रा बढ़ने लगी। निश्चित कर के अतिरिक्त अब व्यक्तियों को भेंट और उपहार के रूप में चर्च को चढ़ावा देता ही रहता था। पोप को धनी लोगों द्वारा दिया गया धन आम जनता का बोझ बन जाता था। चर्च के अधिकारी इस सेवा के लिए जनता से कर लेते थे जो वे जनता को देते नहीं थे। जनता इसलिए भी असंतुष्ट थी कि उनके द्वारा दिया गया धन रोम चला जाता था।

प्रो. लालबहादुर वर्मा लिखते हैं – ''चर्च द्वारा हो रहे आर्थिक शोषण से राजा और धनिक दोनों ही क्षुब्ध थे। विभिन्न क्षेत्रों में बढ़ती हुई राष्ट्रीयता के कारण शासक वर्ग चर्च द्वारा वसूले गये धन को अपने हिस्से की चोरी समझता था। धनिक लोगों को यह एतराज था कि चर्च का धन उत्पादक नहीं होता। पूँजीवादी व्यवस्था की शुरूआत हो चुकी थी, और वह धन बेकार समझा जाने लगा था जो पूँजी बनकर उत्पादन में न लगे। इस प्रकार जनता, व्यापारी, शासक सभी चर्च की आर्थिक नीति से असंतुष्ट थे।''

(c) राजनीतिक कारण

धर्म सुधार आन्दोलन के कारणों में उपर्युक्त कारणों के अतिरिक्त राजनीतिक कारणों में पुनर्जागरण से प्रभावित राष्ट्रीय राजतन्त्रों का उदय एवं राष्ट्रीयता की भावना भी प्रमुख थी। धर्म सुधार आन्दोलन के धार्मिक तथा आर्थिक कारण के साथ–साथ राजनीतिक कारण भी थे। मध्यकाल में चर्च की स्थिति बहुत मजबूत थी और राज्यों की बहुत कमजोर। राज्यों को चर्च की आज्ञा का उल्लंघन सम्भव नहीं था क्योंकि शासक सामन्तों के ऊपर अधिक निर्भर रहता था। पुनर्जागरण ने सामन्तवाद के पतन की पृष्ठभूमि तैयार कर दी इसी के साथ यूरोप में नए नेशन स्टेटों का अभ्युदय हुआ। राष्ट्रीय राज्यों के उदय ने राजा की सामन्तों के ऊपर निर्भरता खत्म कर दी और उनकी शक्ति तथा महत्वाकांक्षा बढ़ा दी। अब शासक स्वयं शक्तिशाली होने लगे और वे अपने ऊपर किसी का नियन्त्रण स्वीकार नहीं कर सकते थे। उन्हें यह मंजूर नहीं था कि उनके राज्य में चर्च की स्वतंत्र प्रभुता हो, वह उनके राज्य में अलग से कर लगाये और राज्य का धन विदेश में चला जाये। इस तरह राष्ट्रीय राज्यों के उदय ने चर्च के विरोध की स्थिति पैदा कर दी।

इस संबंध में **राबर्ट इरगैंग** ने लिखा है – ''राष्ट्रीय राज्यों द्वारा चर्च के सर्वव्यापी अधिकारों का विरोध भी सुधार–आन्दोलन का एक मुख्य कारण था। कैथोलिक चर्च भौतिक तथा आध्यात्मिक दोनों प्रकार के अधिकारों का उपयोग करता था, परन्तु चर्च के विस्तृत अधिकार राष्ट्रीय राजतन्त्रों से अधिकारों की अभिवृद्धि व पूर्ति में बाधक थे। अतः शासक गण चर्च के अवांछनीय व अनावश्यक अधिकारों को समाप्त कर अपनी प्रभुसत्ता को सुदृढ़ व सर्वोच्च बनाना चाहते थे।''

इस समय यूरोप में राष्ट्रीयता की भावना भी विकसित हो रही थी। राष्ट्रीयता की भावना से सर्वाधिक प्रभावित वर्ग था, मध्य वर्ग जो बौद्धिक तथा व्यापारी वर्ग था। यह वर्ग अपना धन पोप के पास भेजने का विरोधी था। इस वर्ग ने राजा को अधिक से अधिक शक्तिशाली बनाने तथा सामन्तों के पतन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी। अतः इस वर्ग ने जब चर्च का विरोध करना प्रारंभ किया तो वह राष्ट्रीय विरोध बन गया।

यूरोप के समाज के प्रत्येक वर्ग में असंतोष व्याप्त था। इस असंतोष के चलते मानववादी सुधारकों तथा विचारकों ने चर्च की बुराइयों को जनता के सामने स्पष्ट किया तथा तात्कालिक धर्म का विरोध किया तथा धर्म सुधार की आवश्यकता पर बल दिया।

(c) जर्मनी में धर्म सुधार आंदोलन

मार्टिन लूथर :– जर्मनी में धर्म सुधार आंदोलन का प्रणेता मार्टिन लूथर था। उसका जन्म 1483 को सैक्सनी के एक गाँव के किसान परिवार में हुआ था। उसके पिता उसे वकील

NOTES

बनाना चाहते थे। उन्होंने उसे विश्वविद्यालय भेजा परन्तु वहाँ उसने धर्मशास्त्र का अध्ययन प्रारंभ किया। उसका मन प्रश्नाकुल होता रहता था। शंका, जिज्ञासा, तर्क और विवेक का प्रयोग करना उसने सीखा। उसने रोम की यात्रा की। वहाँ पहुँचकर उसका मोहभंग हुआ। उसने वहाँ के भ्रष्टाचार को देखा। वह यह समझने लगा कि मुक्ति सिर्फ ऊपरी क्रिया–काण्ड से नहीं मिल सकती। पोप का वैभवपूर्ण जीवन देखकर वह आश्चर्यचकित रह गया। पोप के प्रति उसकी श्रद्धा कम होने लगी।

इसी बीच एक घटना घटी जिससे मार्टिन लूथर पोप का कट्टर विरोधी हो गया। 1517 में पोप को संत पीटर के गिरजाघर के लिए रुपयों की सख्त आवश्यकता थी। उसका एक प्रतिनिधि रेटजेल विटेनवर्ग पहुँचा जो क्षमा पत्रों को बेचता था और कहता था कि – **"जैसे ही क्षमापत्रों के लिए दिए गये सिक्कों की खनक गूँजती है उस आदमी की आत्मा जिसके लिए धन दिया गया है, सीधे स्वर्ग में प्रवेश कर जाती है।"** इस स्थिति में प्रत्येक व्यक्ति परेशान और क्षुब्ध था। मार्टिन लूथर ने आम जनता के इस शोषण का विरोध किया और कहा कि यह धर्म के मूल सिद्धांतों का अपमान है। उसने इस तरह की कई बातें लिखकर एक–एक गिरजाघर के दरवाजे पर चिपका दी। उसकी इन चर्च विरोधी बातों से तहलका मच गया। लोग उन्हें पढ़ने तथा उनका समर्थन करने के लिए आने लगे। पोप ने उसकी इन बातों को साधारण बातें समझकर जाने दिया। मगर जब उसने एक कैथोलिक धर्मशास्त्री से बहस के समय कहा कि वह नहीं मानता कि पोप और चर्च की साधारण सभा गलतियाँ नहीं कर सकते। यह चर्च की सत्ता पर उठाया गया प्रश्न था। उसने तीन पुस्तिकाएँ प्रकाशित कराईं – **'जर्मन सामंत वर्ग को सम्बोधन', 'ईश्वर के चर्च की कैद', 'ईसाई मनुष्य की मुक्ति'।** इन पुस्तिकाओं में उसने चर्च की अपार संपत्ति का वर्णन किया तथा जर्मन शासकों को विदेशी प्रभुत्व से मुक्ति पाने को कहा, दूसरी किताब में उसने पोप और उसकी व्यवस्था पर प्रहार किया, तीसरी पुस्तक में, उसने अपने मुक्ति के सिद्धांतों का प्रतिपादन किया। ये सारी किताबें उसने चर्च की कमजोरियों को उजागर करने के लिए लिखीं। इनमें उसने कैथोलिक चर्च का विकल्प प्रस्तुत किया था। यही विकल्प बाद में प्रोटेस्टेंटवाद के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

जर्मनी में लूथर की लोकप्रियता बढ़ रही थी। पोप इससे बहुत क्षुब्ध हुआ। पोप ने उसे 1520 में धर्म बहिष्कृत कर दिया। लूथर ने व्रिटेन बर्ग में एक सार्वजनिक सभा में इस आदेश को जला दिया। इस तरह लूथर ने चर्च के विरुद्ध विद्रोह का झंडा ऊँचा किया। 1529 में वर्म्स में जर्मन राज्यों की सभा में सम्राट ने उसे बुलाया। उसे अपने कथन को वापस लेने को कहा गया परन्तु उसने इंकार कर दिया। वर्म्स में उसकी रचनाओं को गैरकानूनी घोषित कर दिया गया। उसे कानूनी सुरक्षा से वंचित कर दिया गया। इसी समय में उसने बाइबिल का जर्मन भाषा में अनुवाद किया जो अत्यंत लोकप्रिय हुआ।

लूथर ने जिन सुधारों की बात की उन्हें जब नहीं माना गया तो उसने प्रोटेस्ट (विरोध) किया। इस विरोध के उसकी साथी धीरे–धीरे प्रोटेस्टेंट कहा जाने लगा। शनैः–शनैः कैथोलिक चर्च के विरोधी प्रोटेस्टेंट कहा जाने लगा। उसके विचार और सिद्धांत सीधे और सरल थे। लूथर ने ईसा और बाइबिल की सत्ता स्वीकार की, परन्तु पोप और चर्च की दिव्यता और निरंकुशता से इन्कार कर उसका विरोध किया। चर्च के कर्मकांड के स्थान पर उसने आस्था को मुक्ति का साधन माना। चर्च जनता को चमत्कार प्रदर्शन करके मूर्ख बनाता था उसने चमत्कारी घटनाओं को मानने से इंकार कर दिया। उसने अपने लेखों तथा पुस्तकों के द्वारा चर्च के आडंबरों का भी विरोध किया। उसके विचार सम्पूर्ण जर्मनी में फैल गए तथा जनता में नयी चेतना मिली राष्ट्रीय स्फूर्ति को बल मिला। उसके प्रोटेस्टेंट अनुयायी उसके विचारों को सुनकर विद्रोही हो गए। जगह–जगह मूर्तियाँ तोडी जाने लगीं, मठों को लूटा गया। लूथर ने इस तरह के उग्रवाद का विरोध किया। इसी समय दक्षिण–पूर्वी और मध्य जर्मनी के किसानों ने विद्रोह किया। परन्तु लूथर ने शासकों को इस आन्दोलन को दबाने के लिए कहा और शासकों ने बुरी तरह से आंदोलन

को दबा दिया। इससे लूथर शासकों में बहुत लोकप्रिय हो गया परन्तु आम आदमी लूथरवाद से विमुख होने लगा।

NOTES

जर्मन प्रोटेस्टेंट शासकों ने एक संघ बना लिया। यह जर्मन सम्राट चार्ल्स पंचम के विरुद्ध पहला राष्ट्रीय कार्य था। प्रोटेस्टेंट और कैथोलिक शासकों में तनाव बढ़ता गया और इस तनाव ने एक गृह युद्ध का रूप धारण कर लिया 1546 में लूथर की मृत्यु हो गई। उसने राष्ट्रीयता की शक्ति को पहचाना। उसने मध्यवर्ग को बढ़ावा दिया।

आग्सवर्ग की संधि

जर्मनी में 1546 से 1555 तक प्रोटेस्टेंट राजाओं तथा सम्राट चार्ल्स पंचम के बीच गृह युद्ध चलता रहा। अन्त में सम्राट ने राज्य का परित्याग कर दिया। उसके भाई फर्डिनेंड ने प्रोटेस्टेंट लोगों से समझौते की नीति अपनाई। 1555 में आग्सवर्ग में शासकों की सभा में संधि पर हस्ताक्षर हुए। इस संधि के अनुसार –

(1) जर्मनी के हर शासक को अपने राज्य धर्म को स्वयं निश्चित करने का अधिकार दिया गया।

(2) 1552 के पूर्व तक कैथोलिक चर्च की जो सम्पत्ति प्रोटेस्टेंटों के अधिकार में चली गयी थी वह उन्हीं के पास रहेगी।

(3) लूथरवाद के अलावा अन्य किसी प्रोटेस्टेन्ट शाखा को मान्यता नहीं दी गई।

(4) कैथोलिक इलाकों में रहने वाले लूथरवादियों को धर्म परिवर्तन के लिए विवश नहीं किया जाएगा।

(5) यदि कोई कैथोलिक पादरी प्रोटेस्टेंट हो जाए तो उसे अपने पूर्व पद से सम्बन्धित अधिकारों को छोड़ना होगा।

इस सन्धि ने धार्मिक झगड़ों को सुलझाया तो परन्तु सही ढंग से नहीं। इसमें शासकों को धर्म चुनने की स्वतन्त्रता दी गई थी व्यक्ति को नहीं। केवल लूथरवाद को मान्यता देना भी गलत था। इस सन्धि से प्रोटेस्टेंट वर्ग को मान्यता मिल गई।

1.18 स्विट्जरलैंड में धर्म सुधार आन्दोलन

(1) **जिंग्वली** – धर्म सुधार आंदोलन चलाने में जर्मनी में लूथर तथा स्विट्जरलैंड में **जिंग्वली** (1484–1531) तथा **कल्विन** (1509–1564) का नाम उल्लेखनीय है। **स्विट्जरलैंड** पवित्र रोमन साम्राज्य के अंतर्गत आता था, परन्तु उसके कुछ क्षेत्र स्वतन्त्र गणतन्त्रों की तरह थे। जिंग्वली ने धर्मग्रन्थों का अध्ययन किया। वह भी लूथर की तरह क्षमापत्रों तथा चर्च का विरोधी था। उसके आंदोलन का केन्द्र **ज्यूरिख** था। जिंग्वली तथा लूथर में आपसी समझौता नहीं हो सका। उसने 1525 में रोम से अलग होकर एक **रिफारर्ड चर्च** की स्थापना की। वह चर्च में व्याप्त भ्रष्टाचार के साथ–साथ पोप की सर्वोच्चता के सिद्धांत का भी विरोधी था। ज्यूरिख तथा बर्न नगरों में उसका प्रभाव बढ़ा परन्तु पिछड़े इलाकों के लोग उसके अनुयायी नहीं हुए और जब जिंग्वली ने उन्हें अपनी ओर करना चाहा तो स्विट्जरलैंड में गृहयुद्ध छिड़ गया और जिंग्वली स्वयं लड़ता हुआ मारा गया।

(2) **काल्विन** – काल्विन का जन्म 1509 में फ्रांस में हुआ था। कैथोलिक चर्च के प्रति अपने कड़े रुख के कारण उसे फ्रांस से भागना पड़ा। वह वहाँ से स्विट्जरलैण्ड आ गया तथा अन्तिम समय तक यहीं रहा। वह एक ऐसा सम्प्रदाय स्थापित करना चाहता था जो किसी देश तक सीमित न रहे। उसने अपनी पुस्तक **'ईसाई धर्म के आधारभूत सिद्धांत'** में प्रोटेस्टेंट

धर्म के सिद्धान्तों को तर्कपूर्ण शैली में प्रस्तुत किया। उसका कार्य क्षेत्र जेनेवा था। वहाँ **काल्विनवाद** नामक नया सम्प्रदाय स्थापित हुआ, काल्विन उसका नेता था। जिनेवा एक धर्मप्रधान 'नगर राज्य' बन गया। काल्विन इस नगर का सर्वोच्च नियंता बन गया। धीरे–धीरे स्विट्जरलैंड के अन्य क्षेत्रों तथा फ्रांस में भी उसके अनुयायी हो गया नीदरलैंड्स में उसके अनुयायी बहुमत में हो गए तथा जर्मनी में भी काल्विनवाद का प्रसार हुआ।

1.19 इंग्लैंड में धर्म सुधार आन्दोलन

पन्द्रहवीं शती में ब्रिटेन में ट्यूडर वंश का शासन स्थापित हो गया था। सम्पूर्ण ब्रिटेन कैथोलिक धर्म को मानता था, परन्तु पुनर्जागरण के प्रभाव से राष्ट्रीयता की भावना ने उन्हें धीरे–धीरे कैथोलिक चर्च से परे हटाया। चर्च के भ्रष्टाचार एवं बुराइयाँ वहाँ भी व्याप्त थीं। इसके अलावा इंग्लैंड का बहुत सा धन विदेशी चर्च में चला जाता था। इस तरह कैथोलिक चर्च का प्रभाव क्षीण पड़ रहा था। ब्रिटेन में लूथरवाद का प्रभाव वहाँ के बुद्धिजीवियों में फैला ब्रिटेन के विश्वविद्यालयों में विशेषकर कैम्ब्रिज तथा आक्सफोर्ड विश्वविद्यालयों में लूथरवाद का प्रभाव पड़ने लगा था।

1.20 इंग्लैंड में धर्मसुधार आन्दोलन के कारण

इंग्लैंड में धर्मसुधार आन्दोलन का प्रारम्भ हेनरी अष्टम की व्यक्तिगत समस्या से प्रारम्भ हुआ, परन्तु इसमें कुछ और मूलभूत कारण निहित थे, जो इस प्रकार हैं :

मूलभूत कारण

- **चर्च के दोष** :– हेनरी अष्टम के शासनकाल में इंग्लैंड का चर्च भी पोप के अधीन था। यह चर्च भी अनेक दोषों का केन्द्र बन चुका। चर्च अतुल धन और संपत्ति का केन्द्र था जहाँ पोप ऐश्वर्यपूर्ण जीवन व्यतीत करते थे तथा पादरी वर्ग लोभ–लालच में फँसकर भ्रष्टाचार और शोषण की तरफ बढ़ रहे थे। चर्च में अनेकतावाद, चर्च से अनुपस्थिति, धर्म के नाम पर दान देकर पाप मुक्ति तथा अंधविश्वास इत्यादि दोष अपना विकराल रूप धारण कर चुके थे।

- **बिशपों तथा पादरियों द्वारा आर्थिक शोषण** :– इंग्लैंड में राजनीतिक क्षेत्र के कुछ उच्च अधिकारी चर्च के पदों पर भी नियुक्त होते थे। ये पदाधिकारी अपने धार्मिक कार्यो का उत्तरदायित्व बिशपों तथा पादरियों को सौंप देते थे, जो अपेक्षाकृत गरीब होते थे। ये बहुत अधिक होते थे तथा इन्हीं के द्वारा चर्च के अधिकतर कार्य किये जाते थे। ये पादरी तथा बिशप अपनी आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए नए–नए तरीके ढूँढ़ लेते थे, जैसे माफीनामा नामक घोषणा पत्र की बिक्री, दान या धार्मिक कांड द्वारा स्वर्ग पहुँचाने का उत्तरदायित्व। इसके अलावा बिशपों को न्यायाधीश के अधिकार भी मिले हुए थे जिनके माध्यम से वे आर्थिक लाभ कमाते थे। इस तरह धार्मिक करों तथा चर्च द्वारा अन्य वसूलियों के विरुद्ध जनता में असन्तोष बढ़ रहा था। इंग्लैंड का चर्च पहले अनेक सामाजिक कार्य सम्पादित करता था परंतु इस समय तक वही चर्च सिर्फ आर्थिक लाभ के कार्य ही करने लगा। इस स्थिति में इंग्लैंड की जनता में चर्च की आलोचना होने लगी।

- **राजा की सत्ता और चर्च की संप्रभुता का प्रतिद्वंद्वी होना** :– इंग्लैंड के राजा चर्च की संप्रभुता को बढते हुए राष्ट्रवाद का विरोधी मानते थे। चर्च नये राजतंत्र के मार्ग की सबसे बड़ी बाधा थे। हेनरी अष्टम से पूर्व के राजाओं ने भी पोप की सत्ता को सर्वोपरि मानने से इंकार किया था। एडवर्ड तृतीय और रिचर्ड द्वितीय ने अपने आदेशों द्वारा इंग्लैंड में पोप द्वारा नियुक्तियों को अवैध घोषित किया था। धार्मिक मामलों में पोप को अपील करना भी प्रतिबंधित कर दिया था। इंग्लैंड की संसद भी चर्च की सम्पत्ति तथा सम्प्रभुता

NOTES

के पक्ष में नहीं थी तथा उस पर नियन्त्रण करना चाहती थी। हेनरी अष्टम के समय तक इंग्लैंड में राष्ट्रीय राजतंत्र की स्थापना हो चुकी थी अतः अब उसके मार्ग में चर्च के विशेषाधिकारी ही एकमात्र बाधा थे यद्यपि वह चर्च के सिद्धांतों के विरोध में नहीं था परंतु वह चर्च के संगठन तथा राज्य के ऊपर उसके विशेषाधिकारों में परिवर्तन लाना चाहता था।

- **मध्यवर्ग द्वारा चर्च का विरोध :–** इंग्लैंड का मध्यम वर्ग, विशेष कर व्यापारी वर्ग चर्च की अथाह सम्पत्ति के एकत्रीकरण के विरोध में था क्योंकि यह चल–अचल सम्पत्ति अनुत्पादक कार्यों में लगी हुई थी। व्यापारी वर्ग के साथ–साथ हेनरी को भी चर्च की संपत्ति राष्ट्रीय राजतन्त्र के विकास में सबसे बड़ी बाधा प्रतीत होने लगी।

तात्कालिक कारण : हेनरी के तलाक का प्रश्न

इंग्लैंड में धर्म सुधार आन्दोलन का प्रमुख तात्कालिक कारण था राजनीतिक, बाद में उसने धार्मिक स्वरूप भी ग्रहण किया। इस सुधार आन्दोलन का नेता इंग्लैंड का राजा स्वयं था। यद्यपि हेनरी अष्टम धर्म सुधार के पक्ष में नहीं था किंतु अपनी पत्नी कैथरीन से तलाक लेने के प्रश्न पर पोप से उसका झगड़ा हुआ और उसने धर्म सुधार का कार्य संसद के द्वारा प्रारम्भ किया।

हेनरी अष्टम कट्टर कैथोलिक धर्म को मानने वाला था। उसने **'सप्त संस्कारों का समर्थन'** नामक पुस्तक लिखी तो पोप ने धर्मरक्षक की उपाधि से अलंकृत किया। परंतु 1525 ई. तक स्थिति बदल गई और हेनरी अष्टम पोप का विरोधी बन गया। जिस घटना ने हेनरी को पोप का विरोधी बनाया था वह घटना थी हेनरी का कैथरीन से तलाक लेने की स्वीकृति पोप द्वारा न देना।

हेनरी और कैथरीन के विवाह के बाद छः पुत्रियाँ हुईं उनमें से सिर्फ एक मैरी जीवित रही उनके कोई लड़का पैदा नहीं हुआ था। हेनरी जानता था कि यदि उसके पुत्र न हुआ तो उसका वंश नहीं चल सकेगा और राज्य में अशान्ति फैल जायेगी। अतः उसने कैथरीन को छोड़कर अपनी एक रखैल से विवाह करने का निश्चय किया। इस विवाह के लिए आवश्यक था कि पहले कैथरीन से तलाक लिया जाए। हेनरी ने अपने मंत्री वूल्जे से पोप के द्वारा तलाक की स्वीकृति लेने को कहा। वूल्जे हेनरी का मन्त्री होने के साथ–साथ चर्च का कार्डिनल भी था। सामान्य स्थिति में पोप हेनरी को तलाक की स्वीकृति दे देता परंतु इस समय स्थिति दूसरी थी। पोप इस समय स्पेन के राजा के प्रभाव में था और चूँकि स्पेन का राजा चार्ल्स कैथरीन का भाई था अतः उसे तलाक देकर वह स्पेन के राजा को नाराज नहीं करना चाहता था। इस स्वीकृति से फ्रांस का राजा भी नाराज हो जाता क्योंकि कैथरीन की पुत्री मेरी का विवाह फ्रांस के राजा के पुत्र के साथ तय हो चुका था। इस स्थिति में हेनरी के तलाक का मामला दो साल तक अनिर्णय की स्थिति में रहा। अब हेनरी का धैर्य समाप्त होता जा रहा था उसने वूल्जे के विरुद्ध कार्यवाही की तथा उसने अब पोप की अनुमति के बिना ही विवाह करने का निश्चय किया। इसी घटना के बाद हेनरी–पोप का संघर्ष प्रारंभ हुआ तथा हेनरी ने धर्म सुधारों का प्रयास तेज कर दिया।

हेनरी अष्टम द्वारा धर्म सुधार कार्य

हेनरी अष्टम ने धर्म सुधारों के लिए संसद का सहारा लिया। इंग्लैंड की जनता और संसद दोनों धर्म सुधारों के पक्ष में थे। संसद चर्च को असीमित अधिकार देने के पक्ष में नहीं थी। अतः हेनरी ने संसद का अधिवेशन बुलाया। इस सम्बन्ध में रेम्जे म्योर लिखता है–**"राजा इस प्रबल क्रान्ति को कराने वाला इन्जीनियर था किन्तु उसे औजारों की जरूरत थी। उसका मुख्य औजार पार्लियामेन्ट थी। वह परम्परा से चर्च पर आक्रमण करने के लिए तैयार थी और अपने राजा के प्रति भक्तिभाव रखती थी। उसने राजा की इच्छा पूरी की और राजा के शत्रुओं को प्राणदण्ड दिया। उसने पोप की सत्ता समाप्त की।"**

दीर्घ संसद (1529–1536 ई.) और उसके प्रारंभिक कार्य :– हेनरी अष्टम जानता था कि संसद में चर्च के विरुद्ध भावना जाग उठी है। अतः उसने संसद का दीर्घ अधिवेशन नवम्बर 1529 में बुलाया। पहले उसने चर्च के बहुत अधिक अलोकप्रिय दोषों की आलोचना की जिससे संसद सदस्य उसके अनुकूल हो जाएँ। इस दिशा में संसद ने पहला कार्य किया मुर्दाघर तथा वसीयत की फीस को समाप्त करके किया।

➢ **प्रेमुनायर अधिनियम** :– 1531 में संसद ने प्रेमुनायर अधिनियम पारित किया। इस अधिनियम के द्वारा पादरियों पर दोषारोपण करके कि उनकी नियुक्ति में राजा से अनुमति नहीं ली गई है, इन पर भारी जुर्माने वसूल किए गए। इस अधिनियम से राजा को पादरियों को दण्डित करने का अधिकार मिल गया।

➢ **अनेन्टीस कानून** :– 1532 में संसद ने अनेन्टीस कानून पारित किया। इस अधिनियम से पादरियों द्वारा पोप को दी जाने वाली सम्पत्ति (आमदनी) पर प्रतिबंध लगा दिया गया। अब धार्मिक तथा अन्य कर जो पादरी एकत्र करके पोप को भेजते थे, वे सीधे राजकोष में जमा होने लगे।

➢ **पुनर्विचार अधिनियम** :– 1533 में 'एक्ट ऑफ अपील' पास किया गया। इस अधिनियम द्वारा पोप के पास अपील भेजने की प्रथा समाप्त कर दी गई।

➢ **हेनरी का विवाह और चर्च से बहिष्कार** :– हेनरी अष्टम ने 1533 में संसद से एक अधिकार प्राप्त किया कि वह पोप की अनुज्ञा के बिना भी बिशपों की नियुक्ति कर सकता है। इस अधिकार का प्रयोग करके उसने टामस केनमर को केण्टरबरी का आर्चबिशप नियुक्त कर दिया। टामस केमसट ने हेनरी तथा कैथरीन के विवाह को तलाक में बदल दिया तथा हेनरी और उसकी प्रेमिका ऐनी बोलीन का विवाह सम्पन्न करा दिया। इस कार्य से अप्रसन्न होकर पोप ने हेनरी को चर्च से बहिष्कृत कर दिया और कैथरीन को राजा की असली पत्नी घोषित किया।

➢ **सर्वोच्चता अधिनियम** :– धर्म सुधार आंदोलन की दिशा में इंग्लैंड की संसद ने सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य किया 'सर्वोच्चता अधिनियम' पारित करके। अब इंग्लैंड का राजा राज्य तथा धर्म दोनों क्षेत्रों में सर्वोच्च बन गया। अब वह चर्च की संप्रभुता से मुक्त हो गया। 1535 में जब पोप में औपचारिक रूप से हेनरी को चर्च में बहिष्कृत किया तो हेनरी ने जवाब में आदेश दिया कि पोप का नाम सभी प्रार्थनाओं तथा पुस्तकों से हटा दिया जाये। जिन लोगों ने राजा की सर्वोच्चता मानने से इंकार किया उन्हें मृत्यु दण्ड दिया गया। इस तरह धर्म–सुधार संसद (दीर्घ संसद) द्वारा इंग्लैंड का पोप से नाता तोड़ दिया गया। इस संबंध में प्रो. पार्थसारथि गुप्ता लिखते हैं – "रोम के साथ संबंध विच्छेद होने से इंग्लैंड में पोप का प्रभाव समाप्त होने लगा। यह राष्ट्रवाद की दिशा में एक निश्चित कदम था। इसके साथ हेनरी का कार्य क्षेत्र और व्यापक हो गया। अब वह केवल राज्याध्यक्ष ही नहीं था, बल्कि इंग्लैंड का धार्मिक अध्यक्ष भी बन गया था। इसके साथ ही इंग्लैंड में अन्तरराष्ट्रीय चर्च के स्थान पर चर्च ऑफ इंग्लैंड की स्थापना की गई। इसके पश्चात् इंग्लैंड का राष्ट्रीय धर्म प्रत्येक शासक के व्यक्तिगत विचारों के साथ बदला जाने लगा और धार्मिक प्रश्न प्रत्येक ट्यूडर शासक के लिए राजकीय समस्या बन गया।"

➢ कुछ अन्य सुधार कार्य :–

- ब्रिटेन के सभी बिशपों के निर्वाचन की व्यवस्था की गई।
- कोई भी पादरी पोप के प्रति निष्ठा की शपथ नहीं ले सकता था। अब उन्हें राजा के प्रति निष्ठा की शपथ लेनी पड़ती थी।

- हेनरी और उसकी दूसरी पत्नी की संतानों को ब्रिटेन के सिंहासन का उत्तराधिकारी मान लिया गया।
- राजा का अपमान या विरोध करने वाले को मृत्यु दण्ड की व्यवस्था की गई।

NOTES

➢ **मठों के प्रति कार्यवाही :–** ब्रिटेन में मठों में भारी सम्पत्ति केन्द्रित थी। मठों के विरुद्ध जनता में लंबे समय से असंतोष व्याप्त था। अतः हेनरी ने मठों की जाँच के लिए एक कमीशन की नियुक्ति की। इस कमीशन की सिफारिशों पर मठों को समाप्त करने का निर्णय लिया गया। 1536 में संसदीय कानून के अन्तर्गत लगभग 610 मठों को नष्ट कर दिया गया तथा उनकी सम्पत्ति जप्त कर ली गई।

➢ **छः नियमों का अधिनियम :–** हेनरी ने चर्च से सम्बन्ध अवश्य विच्छेद कर लिया था परन्तु उसका विश्वास कैथोलिक धर्म के सिद्धांतों विरुद्ध नहीं था अतः उसने 1538 में छः नियमों का अधिनियम पारित किया। इसके छः नियम इस प्रकार थे –

- पादरियों को विवाह निषिद्ध था।
- पादरियों को ब्रह्मचर्य व्रत की शपथ लेना अनिवार्य था।
- पाप को स्वीकार करना।
- ट्रान्स सब्सटेन्सियेशन मानना।
- व्यक्तिगत प्रार्थना करना।
- कम्यूनियन मानना।

इस तरह हेनरी अष्टम के शासनकाल में धर्म सुधार हुए। इन धर्म सुधारों के बावजूद हेनरी का विश्वास कैथोलिक धर्म पर बना रहा। उसने प्रोटेस्टेंट सम्प्रदाय को कोई प्रोत्साहन नहीं दिया।

हेनरी अष्टम के बाद धर्म सुधारों की स्थिति

(1) एडवर्ड षष्ठ (1547–53) :– हेनरी अष्टम के बाद उसका पुत्र एडवर्ड षष्ठ इंग्लैंड का शासक बना। उसके शासन काल में उसके दो संरक्षकों – सोमरसेट और नार्थम्बरलैण्ड की नीतियाँ चलती रहीं। इसके शासन के अल्प समय में इंग्लैंड में लूथरवाद अर्थात प्रोटेस्टेंट धर्म को फैलने का अवसर मिला। इस समय हेनरी अष्टम के छः नियमों को निरस्त कर दिया गया तथा उनके स्थान पर 42 नियमों को लागू किया जो कि प्रोटेस्टेंट धर्म के सिद्धांतों से मेल खाते थे। नई प्रार्थना पुस्तिका अंग्रेजी भाषा में बनाई गई तथा पूर्व प्रचलित लैटिन भाषा की पुस्तक को हटा दिया गया। चर्च की शेष बची सम्पत्ति पर भी राज्य का कब्जा कर लिया गया। इस तरह एडवर्ड षष्ठ का अल्प शासन काल इंग्लैंड में प्रोटेस्टेंट धर्म की स्थापना का काल था।

(2) मैरी ट्यूडर : कैथोलिक धर्म की स्थापना :– एडवर्ड की मृत्यु के बाद कैथरीन की पुत्री मेरी (1553 से 1558) ने इंग्लैंड पर शासन किया। मैरी ने ब्रिटेन में हेनरी अष्टम के प्रारंभिक दिनों की धार्मिक स्थिति लाने का प्रयत्न किया। उसने कैथोलिक धर्म की पुनः स्थापना का अथक प्रयास किया परन्तु वह असफल रही। इसका परिणाम यह हुआ कि ब्रिटेन में प्रोटेस्टेंट धर्म के प्रति लोगों में रुचि बढ़ती गई। उसने संसद पर दबाव डालकर हेनरी अष्टम तथा एडवर्ड के समय पारित कानूनों को रद्द करवा दिया तथा आज्ञाकारी कैथोलिक पादरियों की पुनः नियुक्ति की। उसके शासनकाल में इंग्लैंड पुनः पोप के अधीन हो गया। उसके अलावा उसने प्रोटेस्टेंट लोगों पर बहुत अत्याचार किये इससे लोगों के अन्दर कैथोलिक चर्च के प्रति घृणा बढ़ने लगी।

(3) एलिजाबेथ : (1558–1603) :– एलिजाबेथ हेनरी अष्टम की दूसरी पत्नी एनी बोलीन की पुत्री थी जो मैरी की मृत्यु के बाद सिंहासन पर विराजमान हुई। एलिजाबेथ में

राजनीतिक शासक के सभी गुण मौजूद थे। उसमें धार्मिक रुचि नहीं थी और न किसी वर्ग विशेष के प्रति कट्टरपन। अतः उसने अपने समय के धार्मिक प्रश्नों को एक कुशल राजनीतिज्ञ की तरह देखा और उसका उसी दृष्टि से समाधान किया गया। वह यह जानती थी कि इंग्लैंड के विकास के लिए राज्य में शांति आवश्यक है। अतः उसने ऐसी धार्मिक नीति अपनाई जिससे किसी भी धर्म या सम्प्रदाय को मानने वाली जनता असन्तुष्ट न हो। यद्यपि इसकी मध्यम मार्गी नीति से कट्टर कैथोलिक तथा प्रोटेस्टेंट दोनों ही नाराज हुए परन्तु ब्रिटेन की जनता सन्तुष्ट रही। उसकी यह धार्मिक नीति **'आंग्लिकनवाद'** के नाम से जानी जाती है।

आंग्लिकनवाद के अनुसार धार्मिक सुधार या व्यवस्था

- रानी मैरी के शासन में इंग्लैंड के चर्च को पोप के अधीन कर दिया गया था। एलिजाबेथ ने चर्च को पुनः पोप की अधीनता से मुक्त करके राज्य के अधीन ले लिया।
- रानी ने उदार प्रोटेस्टेंट मेथ्यू पारकर को केन्टरबरी का आर्चबिशप बना दिया।
- रानी ने अपनी **'सर्वोच्च प्रमुख'** की उपाधि बदलकर **'सर्वोच्च शासक'** कर ली।
- ईश्वर की प्रार्थना, धर्म सिद्धांत आदि को अंग्रेजी भाषा में बोलने की आज्ञा दे दी गई।
- केनमर की दूसरी प्रार्थना पुस्तक तथा एकरूपता अधिनियम में संशोधन करके उनमें रोमन धर्म के विरुद्ध बातों को निकाल दिया गया।
- मैरी ट्यूडर के समय पारित कैथोलिक धर्म स्थापना के तमाम कानूनों को निरस्त कर दिया गया।
- रानी एलिजाबेथ ने 42 धर्म के नियमों को बदलकर उनकी जगह उन्तालीस नियम पारित कराये जो कि प्रोटेस्टेंट धर्म से अधिक साम्य रखते थे।
- अब ईश्वर में विश्वास को मुक्ति का एकमात्र मार्ग माना गया।
- 'मैस' की पूजा विधि को अस्वीकार कर दिया गया।

इस प्रकार रानी एलिजाबेथ के समय में नए आंग्लिकनवाद की स्थापना हुई। उसके समय में कैथोलिकों द्वारा विद्रोह का खतरा था। इस सम्बन्ध में **प्रो. पार्थसारथी गुप्ता** का कथन इस प्रकार है – "एलिजाबेथ के शासनकाल में धार्मिक समस्या राजनीतिक समस्या बनने लगी। कैथोलिक खतरा केवल इंग्लैंड के भीतर ही नहीं वरन् बाहर भी था। एलिजाबेथ के विरुद्ध विद्रोह या षड्यंत्र इंग्लैंड के कैथोलिक नागरिकों द्वारा ही नहीं किये जा रहे थे, बल्कि उन्हें विदेशी सहायता भी उपलब्ध थी। जेसुइट कैथोलिक पादरी इसी उद्देश्य से इंग्लैंड में प्रवेश कर रहे थे। ये धार्मिक व्यक्ति एलिजाबेथ के लिए राजनीतिक खतरा उत्पन्न कर रहे थे और इसीलिए उनका समाधान भी राजनीतिक रूप से किया गया। रविवार को चर्च में अनुपस्थित होने पर एक शिलिंग के बदले 5 पौंड तक जुर्माना किया जाने लगा। सन् 1585 के आदेशानुसार सभी विदेशी कैथोलिक पादरियों को इंग्लैंड छोड़ देने के लिए कहा गया, परंतु इन सब नियमों के होते हुए भी कैथोलिक खतरा समाप्त नहीं हुआ।"

बोध प्रश्न

1. धर्म सुधार आंदोलन का वर्णन कीजिये?

....

....

....

2. इंग्लैण्ड में धर्म सुधार आंदोलन का वर्णन कीजिये?

....

....

NOTES

....

1.21 प्रति धर्म सुधार आन्दोलन (COUNTER REFORMATION)

धर्म सुधार आन्दोलनों के परिणामस्वरूप कैथोलिक चर्च के सिद्धांतों तथा कार्य व्यवहारों में परिवर्तन या सुधार की आवश्यकता महसूस की गई। कैथोलिक चर्च को बनाए रखने के लिए कैथोलिक धर्म में सुधार के प्रयत्न हुए। इन्हीं सुधारों को प्रति धर्म सुधार आन्दोलन कहा गया।

यूरोप में धर्म सुधार आंदोलन कैथोलिक चर्च में व्याप्त दोषों तथा भ्रष्टाचार के खिलाफ प्रारंभ हुए थे इसके परिणामस्वरूप प्रोटेस्टेंट धर्म की स्थापना हुई थी। इस नए धर्म की स्थापना तथा चर्च के दोषों से प्रभावित होकर यूरोप की एक बड़ी आबादी कैथोलिक चर्च को छोड़ चुकी थी। इसके अलावा अब कैथोलिकों को यह चिन्ता होने लगी कि यदि ऐसा ही चलता रहा तो कैथोलिक चर्च धीरे–धीरे समाप्त हो जाएगा, उसका महत्व तथा प्रतिष्ठा तो दाँव पर लग चुकी थी। अतः कैथोलिक चिन्तकों तथा पक्षधरों ने यह महसूस किया कि अब कैथोलिक धर्म के मूल सिद्धांतों को कायम रखते हुए उसके दोषों को दूर किया जाए। कैथोलिक चर्च में सुधार क्यों प्रारंभ हुए इस संबंध में प्रो. वर्मा लिखते हैं –

"धर्म सुधार आंदोलन के कारणों के दो पक्ष थे। एक सकारात्मक, क्योंकि पुनर्जागरण काल में परिवर्तन की एक सजग आकांक्षा पैदा हुई थी; दूसरा नकारात्मक, क्योंकि कैथोलिक चर्च भ्रष्ट हो गया था। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि यदि कैथोलिक चर्च में समय के साथ सुधार हुआ होता तो लूथर और काल्वे जैसे सुधारकों को आसानी से सफलता नहीं मिलती। तेरहवीं शताब्दी से ही जब भी यथास्थिति को बदलने की कहीं से बात उठती तो उसे चुप कर दिया जाता था जैसे 'वाइक्लिफ' और 'हस' के साथ हुआ। परिवर्तन की इच्छा रखने वाले का चर्च विनाश कर देता था। पुनर्जागरण ने जो वातावरण पैदा किया उसमें कैथोलिक चर्च में सुधार होना ही चाहिये था लेकिन सुविधाजीवी और विलासी पोप हाथ पर हाथ धरे बैटे रहे। तथापि जब लूथर और काल्वे ने विद्रोह का झंडा खड़ा किया तो कैथोलिक चर्च के लिए जीवन–मरण, अभी या कभी नहीं, का प्रश्न पैदा हो गया। इस प्रकार एक तरह की मजबूरी में कैथोलिक चर्च में सुधार शुरू हुआ। चूँकि यह धर्म सुधार आंदोलन के समानांतर और उसके प्रतिवाद में ही शुरू हुआ था अतः इसे काउंटर रिफार्मेशन कहते हैं।"

प्रति धर्म सुधार आंदोलन का अर्थ और उद्देश्य

प्रति धर्म सुधार आंदोलन का अर्थ था कैथोलिक धर्म और चर्च के दोषों को निराकृत करना तथा कैथोलिक धर्म में पुनः नई शक्ति तथा ऊर्जा को संचारित करना। कैथोलिक धर्म सदियों से अपरिवर्तनवाद तथा यथास्थितिवाद की कीचड़ में फँसा हुआ था। समय और युग की स्थितियों के अनुकूल अपने सिद्धांतों तथा नियमों या आचरण में परिवर्तन न लाने से कैथोलिक चर्च जड़ता और भ्रष्टाचार, अनाचार तथा शोषण का पर्याय बन गया था। पुनर्जागरण की नयी रोशनी भी उसे जागृत नहीं कर सकी थी। अब यह आवश्यकता महसूस की गई कि यदि स्वयं को समय के अनुकूल नहीं बदला गया तो समय हमें हटा देगा। अपने अस्तित्व और पहचान को बनाये रखने के लिए उसमें जो परिवर्तन किये गए वही प्रति धर्मसुधार कहलाये।

इस सम्बन्ध में साऊथ गेट लिखता है –"कैथोलिक धर्म सुधार का मुख्य उद्देश्य मुख्यतः कैथोलिक चर्च में पवित्रता व ऊँचे आदर्शों को स्थापित करना था। नये धर्म सुधारवादी महन्तों का निर्वाचन होने के कारण सोलहवीं सदी के उत्तरार्द्ध तक कैथोलिक चर्च के दोष बहिष्कृत

हो चुके थे व कैथोलिक चर्च का स्वरूप हो चुका था। कैथोलिक चर्च के विविध प्रकार के धार्मिक सम्प्रदाय व वर्ग कैथोलिक धर्म–सुधार को फलीभूत व पल्लवित करने में बड़े महत्वपूर्ण सिद्ध हुए।''

प्रति धर्म सुधार आंदोलन के कार्य

(1) सुधारवादी पोपों का योगदान – जब लूथर ने धर्म की बुराई के विरुद्ध विद्रोह किया तो उस समय पोप लियो दशम था। इस समय तक यूरोप की जनता के सामने पोप तथा अन्य धार्मिक गुरुओं का आचरण संदिग्ध होने लगा था। लेकिन **पोप पाल तृतीय (1534 से 1549)** के समय से कुछ अन्य पोपों ने अपने आचरण तथा निष्ठा में मौलिक परिवर्तन किये, जो जनता के सामने उच्च आदर्श के रूप में उपस्थित हुए। इस तरह के आचरण करने के क्रम में **पाल पअए पायस पअए पायस और ग्रेगरी** ऐसे पोप हुए जो पूरे चर्च को प्रेरित करने में सफल हुए। इन पोपों के समय में कैथोलिक चर्च में व्याप्त अनेक बुराइयों को दूर करने का प्रयास किया गया। पोप पाल तृतीय ने ऊँचे पदों पर गुण सम्पन्न तथा अच्छे चरित्र वाले व्यक्तियों को नियुक्त किया। उसने चर्च की समस्याओं पर विचार करने के लिए चर्च की सभा बुलाने की स्वीकृति दी। इन पोपों के अनवरत प्रयासों से कैथोलिक धर्म में नई स्फूर्ति तथा नई प्रेरणा का संचार हुआ। उन्होंने चर्च में व्याप्त भ्रष्टाचार को कम करने का प्रयास किया।

(2) ट्रेन्ट की काउन्सिल (1545 से 1565) :– कैथोलिक धर्म में सुधार की दिशा में ट्रेन्ट की काउन्सिल का महत्वपूर्ण योगदान है। पोप पाल तृतीय के प्रयासों से कैथोलिक चर्च की सभा, जिसे ट्रेन्ट की काउन्सिल कहा जाता है, बुलाई गई। इस सभा के उद्देश्य थे :–

(i) कैथोलिक चर्च में पूर्ण रूप से सुधार करना,

(ii) कैथोलिक धर्म के सिद्धान्तों की पुनः व्याख्या करना,

(iii) विभिन्न यूरोपीय देशों के कैथोलिक सम्प्रदाय को सुदृढ़ करना,

(iv) चर्च में अनुशासन तथा नैतिकता की स्थापना की जाना,

इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए जर्मनी के ट्रेन्ट नगर में इस धर्म सभा ने अपना कार्य प्रारंभ किया। इस सभा में प्रोटेस्टेंट लोगों को भी आमंत्रित किया गया था परन्तु उन्होंने आमंत्रण स्वीकार नहीं किया। ट्रेन्ट की काउन्सिल ने दो प्रकार के कार्य किये। एक तो, धर्म की पुनः व्याख्या से सम्बन्धित, दूसरा अनुशासन से सम्बन्धित।

(1) प्रथम प्रकार के कार्य में निम्नलिखित निर्णय लिये गये :–

- कैथोलिक धर्म के सप्त संस्कार अनिवार्य घोषित किये गये।
- कैथोलिक धर्म की प्रामाणिक पुस्तक बाइबिल को माना गया तथा उसके लैटिन अनुवाद को प्रामाणिक माना गया।
- बाइबिल की व्याख्या का अधिकार चर्च को दिया गया।
- प्रोटेस्टेंट सिद्धांत–मुक्ति के लिए ईश्वर के प्रति आस्था ही पर्याप्त साधन है – को गलत बताया गया।
- रोम की आध्यात्मिक सत्ता को सर्वोच्च माना गया।
- सन्तों की स्तुति में, मूर्ति–पूजा तथा दान–पुण्य के कार्यों में विश्वास प्रगट किया गया।

(2) इस परिषद का दूसरा महत्वपूर्ण कार्य था अनुशासन संबंधी सुधार – इस दिशा में परिषद ने निम्नलिखित निर्णय लिए :–

- चर्च के पदों की बिक्री पर रोक लगा दी गई।

NOTES

- चर्च में नियुक्तियाँ योग्यता के आधार पर होने लगीं।
- बिशपों तथा पादरियों को अपने क्षेत्र में रहने के लिए कहा गया तथा उन्हें सांसारिक मोह–माया छोड़ने को भी कहा गया।
- पुरोहितों की शिक्षा की व्यवस्था की गई।
- एक कर्मचारी को एक पद दिये जाने का निर्णय लिया गया।
- लैटिन भाषा को कैथोलिक धर्म की अधिकृत भाषा घोषित किया गया तथा मातृभाषा में उपदेश देने की बात भी स्वीकार की गई।
- क्षमा–पत्रों की बिक्री को प्रतिबन्धित कर दिया गया।

इस तरह ट्रेन्ट की सभा में दो तरह के कार्य सम्पन्न हुए, **सिद्धांतगत** तथा **सुधार संबंधी।** सिद्धांतगत कार्यों में कैथोलिक धर्म के मूल सिद्धांतों को यथावत रखा गया परन्तु चर्च में नैतिकता और अनुशासन का स्तर सुधारने के प्रयत्न किये गये।

(3) लायोला तथा जीसस संघ द्वारा प्रति धर्म सुधार के प्रयास :– जेसुइट संघ की स्थापना के मुख्य उद्देश्य थे : कैथोलिक धर्म की सेवा करना, अपरिग्रह तथा ब्रह्मचर्य धर्म का पालन करना, पोप के प्रति स्वामिभक्ति को अपनाना तथा प्रोटेस्टेंट धर्म के दमन करने में सहयोग करना। सबसे पहले इस संघ के सिर्फ सात सदस्य थे। धीरे–धीरे संख्या बढ़ती गई और वह 1500 तक पहुँच गई। इस संस्था का संस्थापक चूँकि पहले सैनिक था इसलिए इसका स्वरूप तथा संगठन सैनिक आधार पर किया गया। इसका प्रधान 'जनरल' होता था। संघ के सदस्यों को जनरल की आज्ञा का पालन सैनिक जनरल की आज्ञाओं की तरह ही करना पड़ता था। उसके सदस्यों को कठोर अनुशासन का जीवन व्यतीत करना पड़ता था। उन्हें ब्रह्मचर्य तथा पोप के प्रति अटल भक्ति की शपथ लेनी पड़ती थी। इस संघ के सदस्य एकांत वासी नहीं थे बल्कि जनता में घुलमिल कर कार्य करते थे। इसके संगठन तथा कार्यों के सम्बन्ध में प्रो. वर्मा लिखते हैं –

"इस संस्था का पूरा संगठन सैनिक आधार पर था। हर सदस्य कठोर अनुशासन में बँधा हुआ था। उसे दीनता, पवित्रता, आज्ञापालन और पोप के प्रति समर्पण की शपथ लेनी पड़ती थी। अपने से ऊपर के अधिकारी की आज्ञा मानना अनिवार्य था। संगठन में अंतर्निहित आक्रामकता थी क्योंकि लायोला जानता था कि चर्च के जीवन–मरण का प्रश्न है। वह अपने अनुयायियों को केवल पवित्र जीवन के लिए नहीं, चर्च की रक्षा और प्रसार के लिए तैयार करता था, सब कुछ 'ईश्वर की महत्तम महिमा' के लिए।"

गुरू से ही जेसुइट लोगों ने शिक्षा को आधार बनाकर शिक्षक के रूप में जो सद्भावना प्राप्त की वह आज तक कायम है। वे युवकों के सीधे सम्पर्क में आते थे और आसानी से उन्हें प्रभावित कर लेते थे। प्रचार कार्य में भी उनका मुकाबला करना मुश्किल था। शास्त्रों की उनकी तर्कपूर्ण व्याख्या से पादरी लोग भी प्रभावित होते थे। अर्थ यह कि वे जहाँ जाते थे अपना प्रभाव छोड़ते थे।

इगलेशियस लायोला के कैथोलिक धर्म की पुनः स्थापना में योगदान के लिए लार्ड एक्टन के शब्द महत्वपूर्ण हैं – **"अन्ततः कैथोलिकों को एक ऐसा नेता प्राप्त हुआ, जो मौलिक प्रतिभासम्पन्न था और जो समस्त वास्तविकताओं से अवगत था। पोपशाही ने कैथोलिक चर्च को पतन के गर्व में ढकेल दिया था, परन्तु इगनेशियस लायोला ने पोपशाही के जरिये ही कैथोलिक चर्च के पुनरुद्धार का प्रयास किया। जेसुइटों ने शिक्षण, सक्रिय व सदाचारी पुरोहितों के संगठन द्वारा ही प्रोटेस्टेंटों के विरोध का प्रतिकार किया।"**

इस संघ के सदस्यों ने कई प्रोटेस्टेंट देशों, जैसे— फ्रान्स स्पेन, पुर्तगाल, इटली, पोलैण्ड, नीदरलैण्ड, दक्षिणी जर्मनी इत्यादि, को पुनः कैथोलिक धर्म में दीक्षित कर दिया। यह उनका बहुत बड़ा योगदान था।

(4) धार्मिक न्यायालय :– कैथोलिक चर्च ने प्रोटेस्टेंट धर्म का प्रसार रोकने के लिए तथा धर्मद्रोहियों की जाँच करके उन्हें दण्डित करने के लिए धार्मिक न्यायालयों (इक्वीजीशन) की स्थापना की गई। कैथोलिक सुधारों के समय में इटली में एक सर्वोच्च न्यायालय स्थापित किया गया जो अन्य कैथोलिक देशों में स्थापित धार्मिक न्यायालयों की अपीलें सुनता था। प्रोटेस्टेंट धर्म के अनुयायियों को इसके द्वारा कठोर सजायें दी गई।

प्रो. वर्मा के शब्दों में – "कुल मिलाकर, कैथोलिक चर्च का सुधार हजारों साल पुरानी व्यवस्था को बचाने में सफल हो गया अन्यथा सुधार की आँधी में सब कुछ बदल जाता। वक्त रहते कुछ उत्साही पोप चेत गए और जिन लोगों के हितों पर सुधार ने प्रहार किया उन्होंने लायोला की मदद से अपने को मजबूत किया। ट्रेन्ट की सभा में पुनर्मूल्यांकन द्वारा जो सफाई हुई उसने विरोध के स्पष्ट मुद्दे समाप्त कर दिये। सबसे बड़ी बात तो यह है कि अंदर से जो खोखलापन आ गया था वह नए आत्मविश्वास के कारण दूर हो गया और चर्च सुधारवादी दबाव से पूरी तरह मुकाबला करने के लिए सन्नद्ध हो गया। यूरोप में अनुयायियों की दृष्टि से जो क्षति हुई थी वह एशिया और अमेरिका में बनाए गए नए अनुयायियों से पूरी हो गई।"

धार्मिक आन्दोलनों के प्रभाव और परिणाम

धर्म सुधार तथा प्रति धर्म सुधार आन्दोलनों के कई महत्वपूर्ण प्रभाव और परिणाम यूरोप के इतिहास में देखने को मिले। कुछ महत्वपूर्ण परिणाम अथवा प्रभाव इस प्रकार हैं जो स्पष्टतया दिखाई दिये :–

- ईसाई जगत अब तीन प्रमुख वर्गों में विभाजित हो गया कैथोलिक, रूढ़िवादी (ग्रीकआर्थोडाक्स), तथा प्रोटेस्टेंट सम्प्रदाय, जबकि पहले सिर्फ दो वर्गों में विभाजित था।
- प्रोटेस्टेंट धर्म के स्थापित होने से रोमन कैथोलिक तथा प्रोटेस्टेंटों के बीच धार्मिक संघर्ष बढ़ गये जिसका अन्तिम रूप तीस वर्षीय युद्ध में देखने को मिला।
- इन आन्दोलनों के परिणामस्वरूप यूरोप में सुदृढ़ राष्ट्रीय राज्यों की स्थापना में सहयोग मिला। धार्मिक एकता के नाम पर शासकों ने राष्ट्रीय एकता को मजबूत किया।
- निरंकुश राजतंत्र को विकसित होने का अवसर मिला।
- कैथोलिक चर्च में नैतिकता तथा पवित्रता पर बल दिया गया, शोषण तथा भ्रष्टाचार कम हुआ।
- व्यक्तिवाद तथा विचारों की स्वतन्त्रता को बल मिला।
- शिक्षा का बहुत अधिक विस्तार हुआ।
- राष्ट्रीयता की भावना का विकास हुआ।
- पूँजीवाद का विकास भी इन्हीं के परिणामस्वरूप हुआ।

1.22 सारांश

यूरोप में पुनर्जागरण का समय 1300 से 1600 ई. तक माना जाता है। पुनर्जाकरण का अर्थ मध्ययुग के साथ पूर्णरूप से सम्बन्ध विच्छेद करना नहीं था। यह एक सांसारिक आंदोलन था जिसके अंतर्गत वे सभी महत्वपूर्ण परिवर्तन आते हैं जो मध्यकालीन युग के अंत में तथा आधुनिक काल के प्रारंभ में दृष्टिगोचर होते हैं।

NOTES

1.23 अभ्यासार्थ प्रश्न

दीर्घोत्तरीय प्रश्न

(1) यूरोप में आधुनिक युग का प्रारंभ कैसे हुआ तथा उसकी विशेषताएँ क्या थीं।

(2) पुनर्जागरण क्या है? यूरोप में पुनर्जागरण के कारणों का विश्लेषण कीजिए।

(3) पुनर्जागरण की विशेषतायें बताइये तथा पुनर्जागरण से सम्बन्धित व्यक्तियों का परिचय दीजिये।

(4) धर्म सुधार आन्दोलन से क्या अभिप्राय है?

लघु उत्तरीय प्रश्न

(1) धर्म सुधार आन्दोलन के कारणों का विश्लेषण कीजिए।

(2) विभिन्न देशों में धर्म–सुधार आन्दोलनों के विकास पर प्रकाश डालिए।

(3) प्रति धर्म सुधार आंदोलनों का अर्थ बताइये।

(4) इंग्लैंड में हुए धर्म सुधार आंदोलनों के कारणों को स्पष्ट कीजिए।

(5) यूरोप में धर्मसुधार आंदोलनों का वर्णन कीजिये।

(6) प्रतिधर्म सुधार आंदोलनों में क्या–क्या सुधार हुए।

(7) पुनर्जागरण की विशेषताओं का विस्तृत वर्णन कीजिये।

विकल्प

1. यूरोप में पुनर्जागरण का समय कब तक माना जाता है?

(अ) 1300 से 1600 ई. (ब) 1700 से 1900 ई.

(स) 1100 से 1300 ई. (द) 900 से 1100 ई.

उत्तर 1. (अ)

अपनी प्रगति की जाँच करें
Test your Progress

1.24 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

विश्व इतिहास (18वीं, 19वीं सदी – डॉ. संजीव जैन, कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल)

●●●

अध्याय-2 यूरोप में वैज्ञानिक और कृषि क्रांति
(SCIENTIFIC & AGRICULTURE REVOLUTION IN EUROPE)

इकाई की रूपरेखा (इकाई–1)

2.0 उद्देश्य

2.1 परिचय

2.2 वैज्ञानिक क्रांति

2.3 कृषि क्रांति

2.4 सारांश

2.5 अभ्यास प्रश्न

2.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद इस योग्य हो सकेंगे कि–

1. वैज्ञानिक क्रांति एवं इसका समाज में योगदान को समझ पायेंगे।
2. कृषि प्रयोग एवं क्रांति को समझ सकेंगे।
3. यूरोप के नये युग के विकास के चरणों को समझ सकेंगे।
4. तत्कालीन समाज की सामाजिक आर्थिक स्थिति, परिवर्तन को जान सकेंगे।

2.1 परिचय

यूरोप के परंपरागत जीवन में आधुनिक युग का आरंभ नए वैज्ञानिक विचारों के साथ हुआ था। यह वह युग था जब यूरोप के जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में क्रांति हो रही थी। वैचारिक दृष्टिकोण में आए मूलभूत परिवर्तनों के कारण वैज्ञानिक एवं कृषि क्रांति संभव हुई। पुनर्जागरण और धर्म सुधार आंदोलनों के कारण यहाँ बौद्धिक विकास और ज्ञान विज्ञान के विकास के रास्ते खुल गए थे। अब नए अनुसंधान होने लगे, प्रत्येक बात को तर्क और प्रमाण से परखा जाने लगा, कार्यों के पीछे मूलभूत कारणों की खोज होने लगी और उनके लिए नए सिद्धांत प्रतिपादित होने लगे। यूरोप में आधुनिक युग के प्रारंभ के साथ ही प्राचीन और मध्यकालीन सामंती व्यवस्था समाप्त होने लगी। इस परिवर्तन के साथ आर्थिक क्षेत्र में जो सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ वह था कृषि के क्षेत्र में।

2.2 वैज्ञानिक क्रांति (SCIENTIFIC REVOLUTION)

पुनर्जागरण के दौरान जो सबसे महत्वपूर्ण वैज्ञानिक आविष्कार हुए उनमें था छापे खाने का आविष्कार। इस आविष्कार ने पुस्तको को अधिक संख्या में और आसानी से तथा सस्ते दामों में उपलब्ध कराया। पुस्तकों के माध्यम से नए वैज्ञानिक विचारों और आविष्कारों से जनता शीघ्र परिचित होने लगी। 1440 में जर्मनी में योहन गुटेनबर्ग नाम के व्यक्ति ने सबसे पहले चलनशील मुद्रणालयों का प्रयोग किया था।

NOTES

(1) वैज्ञानिक आविष्कार

वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास पुनर्जागरण का कारण भी था और परिणाम भी। वैज्ञानिक आविष्कारों का होना पुनर्जागरण की महत्वपूर्ण विशेषता भी थी और उसका प्रभाव भी। वैज्ञानिक आविष्कारों का होना वास्तव में वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकास का परिणाम है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण का अर्थ है – तर्क, प्रयोग और परीक्षण से निष्कर्ष निकालना। बिना प्रयोगों के कुछ भी सम्भव नहीं है। इस वैज्ञानिक दृष्टिकोण ने समाज तथा जीवन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन किये। आलोचना तथा समीक्षा के युग का प्रारम्भ हुआ जिससे जीवन का सही तर्कपूर्ण निष्कर्ष निकालने में आसानी हुई। पुरानी मान्यतायें टूटीं, अन्धविश्वासों की पकड़ कमजोर हुई, भाग्यवादिता की जड़ता जीवन की क्रियाशीलता में बदलने लगी।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण के साथ–साथ वैज्ञानिक आविष्कारों ने पुनर्जागरण को प्रभावित किया तथा पुनर्जागरण की नई चेतना से कई नये आविष्कार हुए। इस दिशा में **फ्रांसिस बेकन, कोपरनिकस, गैलीलियो, केपलर, हार्वे, न्यूटन, डेकार्ले, गिलबर्ट हेलमान्ट** आदि वैज्ञानिकों ने अपनी नई खोजों तथा सिद्धांतों से वैज्ञानिक विकास को एक नई दिशा दी। इंग्लैंड के फ्रांसिस बेकन ने अपने ग्रंथ 'नोवम आर्गेनम' द्वारा प्रयोग और प्रेक्षण की विधि का प्रतिपादन किया। उसने अपने निबन्धों से वैज्ञानिक तरीकों का प्रचार किया। अपने एक निबन्ध में वह लिखता है – "विश्वास को दृढ़ बनाने के तीन साधन हैं – **पहला अनुभव, दूसरा तर्क, तीसरा प्रमाणित आधार। इनमें सबसे अधिक शक्तिशाली साधन प्रमाणित आधार है, क्योंकि तर्क और अनुभव पर आधारित विश्वास कभी कभी लुढ़क सकता है।**"

कोपरनिकस – कोपरनिकस ने ज्योतिष के क्षेत्र में सबसे महत्वपूर्ण सिद्धांत प्रतिपादित किया था। उसने अभी तक मान्य इस सिद्धान्त को कि पृथ्वी सृष्टि के केन्द्र में है, चुनौती दी और कहा कि ब्रह्माण्ड के केन्द्र में पृथ्वी नहीं सूर्य है। उसने यह भी कहा कि पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमती है और 24 घन्टों में एक चक्कर पूरा करती है। वास्तव में यह सिद्धांत प्राचीन ज्योतिषी पाइथागोरस के सिद्धांत पर आधारित था। उसने अपनी पुस्तक 'आकाशीय पिण्डों की परिक्रमा के विषय' पर प्रकाशित की थी। उसने अपने पृथ्वी और सूर्य संबंधी नए विचारों को इसी पुस्तक में प्रतिपादित किया था। धार्मिक पादरियों ने उसके इस सिद्धान्त का विरोध किया क्योंकि यह धार्मिक विश्वास के प्रतिकूल था। इसी सिद्धान्त के समर्थन करने के कारण इटली के वैज्ञानिक **'ब्रूनो'** को जिन्दा जला दिया गया था।

डेनमार्क के वैज्ञानिक टाइक्रोब्राहे – ने इटली के ब्रूनो तथा कोपरनिकस के सिद्धान्तों की पुष्टि की तथा उसने एक आधुनिक वेधशाला का निर्माण किया। इस वेधशाला में ग्रहों तथा नक्षत्रों की स्थिति का प्रेक्षण किया। इन्हीं प्रेक्षणों के आधार पर **केपलर** ने ग्रहों की कक्षाओं की सही स्थिति का पता लगाया। उसने गणित के आधार पर कोपरनिकस के सिद्धांतों को प्रमाणित किया। उसने ग्रहों से संबंधित एक और नियम प्रतिपादित किया था कि जब भी कोई ग्रह सूर्य के नजदीक पहुँचता है वैसे ही उसकी गति त्वरित हो जाती है। उसने यह भी कहा था कि सूर्य से एक चुम्बकीय बल निकलता है जो ग्रहों को उसके चारों ओर घुमाता रहता है।

फ्रांसिस बेकन – **फ्रांसिस बेकन** एक भौतिकशास्त्री था। उसने अपने नए विचारों को **'न्यू इन्सट्रामेंट'** नामक पुस्तक के माध्यम से प्रकाशित किए। उसने प्राचीन विचारों का खण्डन किया और वैज्ञानिक पद्धति अपनाने का तर्क दिया। उसने यह भी कहा कि मनुष्य को अपने पूर्वाग्रहों से मुक्ति पानी चाहिए। उसने प्रकृति के अध्ययन के लिए **आगमन पद्धति** का आविष्कार किया।

गैलीलियो – इटली का वैज्ञानिक था जिसने **दूरबीन का आविष्कार** करके ग्रहों सम्बन्धी नए सिद्धांतों को प्रमाणित किया। उसने आधुनिक भौतिकी की पद्धतियों का प्रथम स्पष्ट उदाहरण प्रस्तुत किया। भौतिक शास्त्र के क्षेत्र में गैलीलियो का योगदान **वायु–मापयंत्र** तथा **पेण्डुलम**

के सिद्धान्त का आविष्कार करना था। उसने अपनी दूरबीन से यह देख लिया था कि सूर्य अपनी धुरी पर घूमता है और इसी आधार पर उसने कोपरनिकस के सिद्धांत को प्रमाणित किया। उसने पहली बार गिरते पिण्डों का नियम प्रतिपादित किया था। इंग्लैण्ड के गणितज्ञ **न्यूटन** ने गुरुत्वाकर्षण के सिद्धांत का प्रतिपादन किया और डेकार्ते ने प्रथम बार बीजगणित का प्रयोग ज्यामिति में किया। **गिलबर्ट ने चुम्बक की खोज की, जानसेन ने यौगिक सूक्ष्मदर्शी यन्त्र** बनाया।

चिकित्सा के क्षेत्र में नीदरलैंड के **वेसेलियम** ने शल्य क्रिया का अध्ययन प्रस्तुत किया तथा मानव शरीर संरचना पर पुस्तक लिखी। इंग्लैंड के विलियम हार्वे ने एक प्रवाह के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया।

हेलमान्ट ने कार्बन डाइ ऑक्साइड की खोज की। विज्ञान के इन नए सिद्धांतों तथा आविष्कारों ने पुरानी गलत मान्यताओं को बदलने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

वस्त्र उद्योग में वैज्ञानिक अविष्कारों का प्रयोग

- 1733 ई. में **जॉन के** ने **"लाइंग शटल"** का आविष्कार किया जिससे कपड़े बुनने के कार्य में तेजी आयी।
- 1764 ई. में **जैम्स हरग्रीव्य** ने **"स्पिनिंग जेनी** का आविष्कार किया जिससे सूत के आठ धागे काते जा सकते थे।"
- 1769 ई. में **रिचर्ड आर्क्राइट** ने जल शक्ति से चलने वाला **"वाटर फेस"** नामक सूत कातने का यंत्र बनाया। फिशर ने लिखा कि **"आर्क्राइट ने महान् सूती वस्त्र उद्योग की नींव डाली और कारखाना व्यवस्था को जन्म दिया।"**
- 1785 में **एडमण्ड कार्टराइट** ने **शक्ति चालित करघे** का आविष्कार किया इस मशीन से बढ़िया किस्म का कपड़ा इतना सस्ता हो गया कि जितना इससे पहले कभी नहीं हुआ था।
- एक अमेरिकी शिक्षक **ऐली व्हिटने** ने 1783 ई. में **कपास ओटाने की मशीन** का आविष्कार किया, जिसे **"कॉटन जिन"** कहा गया। इस आविष्कार ने कपास उद्योग में क्रांति ला दी।

नई प्रकार की शक्ति : वाष्प इंजन

- सर्वप्रथम 1712 ई. में **टामस न्यूकोमैन** ने खानों से पानी बाहर निकालने में वाष्प इंजन बनाया। 1775 ई. में इंजन बनाने का कारखाना, जेम्सवाट ने एक उद्योगपति की साझेदारी में स्थापित किया।

लौह उद्योग में नई तकनीक का प्रयोग

- 1750 ई. के आसपास यह ज्ञात हुआ कि कच्चे लोहे को पिघलाने के लिए पत्थर के कोयले से बना कोक प्रयोग किया जा सकता है।
- 1784 ई. में **हेनर कोर्ट** ने एक ऐसी विधि का आविष्कार किया जिसके द्वारा अधिक शुद्ध और अच्छा लोहा बनाना सम्भव होगा।
- 1886 के लगभग **हेनी बैस्सेमर** ने जल्दी एवं सस्ता इस्पात बनाने की विधि खोज निकाली।

नवीन तकनीकी के प्रवेश से सड़क एवं नहर निर्माण

- स्कॉटलैण्डवासी **मकाडम** ने सड़क निर्माण का नया तरीका खोज निकाला। उसने सड़क के निचले भाग को भारी पत्थरों की परत, उसके बाद छोटे–छोटे पत्थरों की परत और फिर उसके बाद तारकोल की परत जमायी। ये सड़कें अधिक टिकाऊ एवं उपयोगी सिद्ध हुईं।

- ब्रिजवाटर के ड्यूक ने **जेम्स ब्रिंडले** नामक इंजीनियर से 1761 में **ब्रिजवाटर नहर** तैयार कराई। इसके बाद कई नहरें बनीं।

परिवहन के क्षेत्र में

NOTES

- अमेरिकी **रोबर्ट फुल्टन** ने 1807 ई. में प्रथम वाष्प चालित नौका का आविष्कार किया। प्रथम समुद्र पार जाने वाली स्टीम बोट **"सिरिअस"** ने 1838 ई. अटलांटिक महासागर को अठारह दिन में पार किया।
- 1814 में जार्ज स्टीफेन्सन ने भाप इंजन **"राकेट"** का आविष्कार किया फलस्वरूप मेनचेस्टर और लिवरपुल के बीच 1830 में प्रथम रेलगाड़ी चली।

संचार के क्षेत्र में

- एक अंग्रेज, **रोलैण्ड हिल** ने एक व्यवस्था स्थापित की जिसके द्वारा पेंस के टिकट से कोई भी पत्र ग्रेट ब्रिटेन में किसी भी जगह भेजा जा सकता था।
- 1844 में **सैमुअल मौर्स** ने एक व्यावहारिक **तार यंत्र** का आविष्कार किया। दो महाद्वीपों को जोड़ने के लिए सर्वप्रथम अन्तरराष्ट्रीय तार यंत्र उत्तरी अमेरिका और यूरोप के मध्य लगाया गया **"अटलांटिक केबल"** था।
- 1876 में **ग्राहम्य बैल** ने टेलीफोन का आविष्कार किया। वैज्ञानिक आविष्कारों एवं तकनीकी परिवर्तनों ने औद्योगिक क्रांति को सम्भव बना दिया।

इन नए आविष्कारों और विचारों ने दुनिया में कुछ नए प्रदेशों और क्षेत्रों को खोजा, जो कि इस प्रकार हैं । इन खोजों में कुतुबनुमा नामक वैज्ञानिक आविष्कार ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई –

(2) नई भौगोलिक खोजें

यूरोप में आधुनिक युग के प्रारंभ का एक महत्वपूर्ण लक्षण था नये शक्तिशाली राष्ट्रीय राजतंत्रों का विकास। नये नेशन स्टेटों के उत्थान के साथ ही सामुद्रिक गतिविधियों तथा भौगोलिक खोजों की दिशा में प्रयास प्रारंभ हुए। पुनर्जागरण के परिणामस्वरूप नये क्षेत्रों की खोजों की आवश्यकता महसूस हुई। इस दिशा में पुर्तगाल तथा स्पेन के साहसी नाविकों ने सबसे महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

- **अमेरिका की खोज** :– 1492 में **क्रिस्टोफर कोलम्बस** अटलांटिक महासागर से होकर एशिया पहुँचने के लिए स्पेन के समर्थन तथा सहयोग से यात्रा पर निकला। लगभग 10 सप्ताह की कठिन यात्रा के बाद अक्टूबर 1492 को वह नई भूमि (अमेरिका) पर पहुँचा। वहाँ के निवासियों को उसने **'रेड इंडियन'** नाम दिया। इस खोज से यूरोप बल्कि सम्पूर्ण विश्व एक नई दुनिया से परिचित हुआ। इसके अतिरिक्त कोलम्बस ने **सान साल्वाडोर, सांता मारिया, क्यूबा के उत्तरी पूर्वी तट** की भी खोज की। अपने दूसरे अभियान में उसने वेस्ट इण्डीज के अनेक द्वीपों की खोज की। **अमेरिगो वैस्पुची** के नाम पर नई दुनिया का नामकरण अमेरिका किया गया।
- **भारत की खोज** :– पुर्तगाल के शासक के प्रयासों के परिणामस्वरूप 1487 में बार्थो लोम्यो दियाज ने अफ्रीका के दक्षिणी तट की खोज की तथा उसका नाम **आशा अंतरीप (केप ऑफ गुड होप)** रखा। इसी समय एक अन्य नाविक ने कांगो के मुहाने की खोज की। इसके बाद 1497 में **वास्को–डी–गामा** नामक नाविक ने आशा अंतरीप तथा अफ्रीका के उत्तरी किनारे के पास से होते हुए अपनी यात्रा प्रारंभ की तथा 1498 में वह **'भारत के कालीकट'** बन्दरगाह पर पहुँच गया।

भौगोलिक खोजों का सबसे महत्वपूर्ण परिणाम हुआ व्यापार के विकास के रूप में। नये उपनिवेशों की स्थापना ने आर्थिक विकास के रास्ते खोजे। वैचारिक क्षेत्र में भी भौगोलिक खोजों के नये परिणाम सामने आये।

इस तरह सम्पूर्ण यूरोप में वैज्ञानिक क्रांति आ गई थी। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में वैज्ञानिक आविष्कारों ने जगह बनानी प्रारंभ कर दी थी। इससे जीवन आसान और सस्ता हुआ।

बोध प्रश्न

1. वैज्ञानिक अविष्कार से आप क्या समझते हैं?

....

....

....

2. गैलीलियो के आविष्कार का वर्णन कीजिये?

....

....

....

2.3 कृषि क्रांति (AGRICULTURE REVOLUTION)

नगरों के विकास और व्यापार के विकास ने भी कृषि को वैज्ञानिक तरीकों से करने के लिए प्रेरित किया। इसके पहले कृषि सिर्फ आत्मनिर्वाह अर्थव्यवस्था कार्य करती थी, परन्तु उसे अब वाणिज्यिक कृषि के रूप में उत्पादन करना था। अब उत्पादन व्यापार के लिए होने लगा। नगरीय विकास ने एक बड़े वर्ग को कृषि उत्पादों पर निर्भर बना दिया। अब नगरों और गाँवों के बीच श्रम का विभाजन हो गया।

इस समय सबसे बड़ी आवश्यकता थी कि कृषि उत्पाद को कैसे बढ़ाया जाए? इसी प्रश्न का उत्तर है कि वास्तव में कृषि क्रांति के लक्षण क्या हैं ? कृषि क्रांति के इतिहासकारों ने निम्न लक्षण बताए हैं –

(1) अब कृषि बड़े खेतों पर की जाए अर्थात् फारमिंग कृषि का प्रारम्भ हुआ।

(2) कृषि का अन्य क्षेत्रों तक विस्तार और व्यापक स्तर पर पशुपालन।

(3) ग्रामीण समुदाय का आत्मनिर्भर कृषकों से कृषिगत श्रमिकों के समुदाय में परिवर्तन।

(4) कृषि में प्रति श्रमिक उत्पादकता में वृद्धि।

(5) कृषि क्षेत्र में जिन नई तकनीकों का उपयोग किया गया वे थीं – मशीनों का व्यापक प्रयोग, नई फसलों का प्रयोग, फसलें बदल कर लगाना, बंजर जमीन का कृषि के लिए उपयोग, उर्वरकों का उपयोग, पशुधन का उपयोग, साझा जमीनों की घेराबंदी इत्यादि।

कृषि क्रांति के कारण

मध्यकाल से आधुनिक काल में आते–आते कृषि के क्षेत्र में जो क्रांतिकारी परिवर्तन हुए उनके कई कारण थे, उनमें से कुछ इस प्रकार हैं –

(1) नगरीयकरण – आधुनिक युग की प्रमुख विशेषता है कि नगरीयकरण अधिक हुआ। व्यापार के विकास से और अन्तरराष्ट्रीय व्यापार और नई खोजों से बड़े–बड़े शहरों का विकास

होने लगा। नगरों की अधिकांश आबादी उद्योग और व्यापार में अपना समय व्यतीत करती थी। इस तरह नगर ग्रामीण उत्पादों पर निर्भर होने लगे और गाँवों को नगरों के लिए भी खाद्यान्न उत्पन्न करना आवश्यक हो गया। इससे कृषि उत्पादन की मात्रा बढ़ाने के लिए कृषकों को नई वैज्ञानिक तकनीकों का प्रयोग करने के लिए सोचना पड़ा।

(2) मुनाफा कमाना – यूरोप में हो रहे आर्थिक परिवर्तनों के कारण विशेषकर औद्योगिक क्रांति तथा व्यापार के विकास के कारण किसानों का लक्ष्य अब मुनाफा कमाना हो गया क्योंकि जीवन स्तर जिस दिशा में विकसित हो रहा था उसके लिए मुद्रा का होना आवश्यक था। लोग खेती में पूँजी लगाने लगे ताकि कृषि उत्पादों में अधिक से अधिक वृद्धि हो और उससे अधिक से अधिक लाभ कमाया जा सके। इस स्थिति में भी पुराने तरीकों को बदल कर नए वैज्ञानिक तरीकों का इस्तेमाल आवश्यक हो गया था क्योंकि पुराने तरीके और औजार सिर्फ आत्मनिर्भरता के लिए ही उत्पादन कर सकने के योग्य थे, उनसे व्यापक उत्पादन और अधिक लाभ की आशा नहीं की जा सकती थी। नए प्रयोगों और परीक्षणों के लिए अतिरिक्त धन की आवश्यकता थी जो कि धनी लोगों के पास ही था। इस तरह कृषि में पूँजी निवेश ने कृषि क्रांति का रास्ता आसान कर दिया।

(3) वैज्ञानिक आविष्कारों का होना – कृषि क्रांति के लिए सबसे अधिक उत्तरदायी तत्व था, इस युग के वैज्ञानिक आविष्कार। यदि कृषि के लिए आवश्यक नए औजार, नई तकनीक, उर्वरकों के प्रयोग, की जानकारी न होती तो कृषि क्रांति संभव ही नहीं थी। इस युग में हुए व्यापक तकनीकी प्रयोगों ने इसे संभव बनाया। इन आविष्कारों में प्रमुख इस प्रकार थे –

- सर्वप्रथम वर्कशायर के एक अंग्रेज जमींदार **जेथ्रो टल** 1674–1740 के बीज बोने के लिए **"ड्रिल"** नामक एक यन्त्र बनाया, जिससे उचित परिमाण में निश्चित कतारों में बीज बोए जा सकते थे।
- इसके पश्चात् **टाउनशैण्ड** 1674–1738 ने किसानों को फसल को बदल–बदल कर उपजाने के लाभ समझाए।
- 1770 ई. के आस–पास **राबर्ट वेकवैल** ने पशुपालन को एक लाभदायक व्यवसाय बना दिया। वैज्ञानिक प्रजनन पद्धति के नवीन प्रयोग से उसने पहले से तिगुनी वजन की भेड़ें तैयार करने में सफलता प्राप्त की। चार्ल्स कोलिंग ने नई नस्ल की भेड़ तैयार करने में सफलता प्राप्त की।
- **आर्थर यंग** ने बड़े–बड़े फार्म बनाने तथा बड़े फार्मों से मिलने वाले लाभों का विस्तृत विवरण दिया। उसका कहना था कि बड़े खेतों में कृषि करना अधिक लाभदायक है क्योंकि उत्पादन अधिक बढ़ जाएगा और उनमें वैज्ञानिक तरीकों का प्रयोग सुगमता से किया जा सकता है। अपने नए विचारों को लोगों तक पहुँचाने के लिए उसने एक पत्रिका **"एनल्स ऑफ एग्रीकल्चर**' नाम से प्रकाशित की। उसके विचारों का व्यापक प्रभाव हुआ और सरकार ने इसके लिए कानून बनाए। ब्रिटेन की सरकार ने 956 बाड़कबंदी अधिनियम बनाए।
- 1840 में **जस्टन वॉन लीबिग** जर्मन रसायन शास्त्री ने यह प्रतिपादित किया कि पौधों की आधारभूत खुराक पोटाश, नाइट्रोजन और फॉस्फोरस है।
- 1834 में **साइरस एच. मैककोरमिक** ने फसल काटने वाली मशीन का आविष्कार किया।
- नई तकनीक और मशीनों के प्रयोग में नए हलों का प्रयोग हुआ, कटाई के लिए थ्रेशर और कल्टीवेटर मशीनें बनाई गई।
- रसायनों के प्रयोग का ज्ञान देने वालों में इंग्लैण्ड के लावेस, जर्मनी के वान लेबेग और फ्रांस के वूसीगाल्ट प्रमुख थे। इन्होंने बताया कि यदि रसायनिक उर्वरकों का प्रयोग किया

जाएगा तो भूमि की उत्पादकता भी बढ़ेगी और बेकार भूमि कृषि योग्य बनाई जा सकती है।

➢ किसानों को फसली चक्र का ज्ञान दिया गया जिससे भूमि को परती छोड़ने की आवश्यकता समाप्त हो गई और भूमि की ऊर्वरता भी कायम रही।

इन तमाम कारणों और परिस्थितियों ने कृषि क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन किए। इन्हीं परिवर्तनों को कृषि क्रांति कहा गया।

NOTES

बोध प्रश्न

1. कृषि क्रांति को परिभाषित कीजिये?

....

....

....

2. लोळ उद्योग में नई तकनीक का वर्णन कीजिए?

....

....

....

2.5 सारांश

वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास पुनर्जागरण का कारण था और परिणाम भी। वैज्ञानिक अविष्कारों का होना पुनर्जागरण की महत्वपूर्ण विशेषता भी थी। और उसका प्रभाव भी वैज्ञानिक अविष्कार का वर्णन वास्तव में वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकास का परिणाम है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण का अर्थ– तर्क, प्रयोग और परीक्षण से निष्कर्ष निकालना।

2.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

दीर्घोत्तरीय प्रश्न

(1) वैज्ञानिक क्रांति क्या है? स्पष्ट कीजिए।

(2) कृषि क्रांति के कारण, स्वरूप और विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

(3) वैज्ञानिक क्रांति के दौरान हुए अविष्कारों का वर्णन कीजिए।

अपनी प्रगति की जाँच करें
Test your Progress

विकल्प

1. प्रथम वाष्प चलित नौका का अविष्कार हुआ–

(अ) 1819 (ब) 1829 (स) 1807 (द) 1801

उत्तर 1. (स)

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

विश्व इतिहास (18वीं, 19वीं सदी – डॉ. संजीव जैन, कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल)

●●●

NOTES

अध्याय-3 औद्योगिक क्रांति और नए सामाजिक वर्गों का उदय

(INDUSTRIAL REVOLUTION & EMERGENCE OF NEW SOCIAL CLASSES)

इकाई की रूपरेखा (इकाई–2)

3.0 उद्देश्य
3.1 परिचय
3.2 औद्योगिक क्रांति
3.3 औद्योगिक क्रांति के इंग्लैण्ड में प्रारंभ होने के कारण
3.4 औद्योगिक क्रांति से हुए परिवर्तन
3.5 नये सामाजिक वर्गों का उदय
3.6 सारांश
3.7 अभ्यास प्रश्न
3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद इस योग्य हो सकेंगे कि–

1. औद्योगिक क्रांति के उदय की पृष्ठभूमि जान सकेंगे।
2. मध्यम वर्ग एवं नये सामाजिक वर्गों के उदय एवं उनके विकास में औद्योगिक क्रांति का योगदान जान सकेंगे।
3. तात्कालीन धार्मिक, सामाजिक राजनैतिक स्थिति का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
4. औद्योगिक क्रांति से हुए परिवर्तन का अवलोकन एवं मूल्यांकर कर सकेंगे।

3.1 परिचय

1750–1850 ई. की अवधि में इंग्लैण्ड में लगातार कुछ ऐसे परिवर्तन हुए जिनकी वजह से वहाँ उत्पादन की फैक्ट्री पद्धति चालू हो गई। देश में विभिन्न प्रकार की मशीनें बनने लगीं उनको चलाने के लिए भाप का प्रयोग किया जाने लगा तथा परिवहन के साधनों का विकास होने से देश के आन्तरिक तथा बाह्य व्यापार में काफी वृद्धि हुई। इस प्रकार सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था ने नई करवट ली जिससे उसका स्वरूप ही बदल गया। इतिहासकारों ने इस परिवर्तन को ही **"औद्योगिक क्रांति"** की संज्ञा दी है।

3.2 औद्योगिक क्रांति (INDUSTRIAL REVOLUTION)

औद्योगिक क्रांति का अर्थ

"औद्योगिक क्रांति का अभिप्राय उन परिवर्तनों से है जिन्होंने यह संभव कर

दिया कि मनुष्य उत्पादन के प्राचीन उपायों को त्यागकर बड़े पैमाने पर विशाल कारखानों में वस्तुओं का उत्पादन कर सकेगा।''

NOTES

औद्योगिक क्रांति एक–दूसरे से सम्बद्ध तीन क्षेत्रों आर्थिक संगठन, तकनीकी और व्यापार ढाँचा में उत्पन्न प्रक्रिया का परिणाम है। आर्थिक संगठन से तात्पर्य है– अधिक पूँजी की उपलब्धता और कच्चे माल की प्राप्ति तथा उत्पादन की खपत के लिए आन्तरिक और विदेशी बाजारों का विकास। तकनीक का अर्थ है– निरन्तर ऐसे प्रयोग किए जाएँ जिससे मानव श्रम का प्रयोग कम से कम हो। उत्पादन की दर में वृद्धि के निरन्तर उपाय सोचना तकनीकी क्षेत्र का कार्य है। व्यापारिक ढाँचे का मतलब है– भूमि, श्रम और पूँजी की कुशलता से उपयोग।

जिस औद्योगिक क्रांति की शुरुआत 1760 ई. के आसपास हुई, वह निम्न चार क्रांतियों से सम्बद्ध मानी जाती है–

(a) जनांकिकीय क्रांति –

ब्रिटेन में 1740 ई. के दशक में जनसंख्या 3.5 प्रतिशत बढ़ी, 1750 के दशक में 7 प्रतिशत, 1780 के दशक में 10 प्रतिशत और 1810 के दशक में 16 प्रतिशत बढ़ी। जनसंख्या के बढ़ने से वस्तुओं की माँग व कीमतें बढ़ीं जिससे ब्रिटिश उत्पादकों को उत्पादन बढ़ाने व अन्य प्रकार के सुधार करने की प्रेरणा मिली।

(b) कृषिगत क्रांति :–

कृषिगत क्रांति के चार प्रमुख लक्षण माने गये हैं–

(1) मध्ययुगीन खुले व बिखरे खेतों के स्थान पर बड़े पैमाने पर इकट्ठे खेतों पर कृषि का आरम्भ किया गया।

(2) अन्य क्षेत्रों में कृषि का विस्तार एवं पशुपालन।

(3) ग्रामीण समुदाय का आत्मनिर्भर कृषकों से कृषिगत समुदाय में परिवर्तन।

(4) कृषि में प्रति श्रमिक उत्पादिता में वृद्धि।

इस क्रांति ने उद्योगों को कई तरीकों से अधिक सुदृढ़ बनाया–

(1) बढ़ती हुई जनसंख्या विशेषतया औद्योगिक केन्द्रों की जनसंख्या के लिए खाद्य पदार्थों की व्यवस्था की।

(2) ब्रिटिश उद्योगों के माल को खरीदने के लिए लोगों की क्रय शक्ति बढ़ाई।

(3) औद्योगीकरण के लिए पूँजी उपलब्धता कराने में मदद की, क्योंकि भू–स्वामियों ने अपनी आमदनी का उपयोग उद्योगों को बढ़ाने में किया।

(4) कृषि से श्रमिक निकलकर उद्योगों में आए जिससे उद्योगों को आवश्यक श्रम शक्ति प्राप्त हो सकी।

(c) व्यावसायिक क्रांति :–

विदेशी व्यापार में विकास ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई–

(1) सर्वप्रथम इसने ब्रिटिश उद्योगों के माल की माँग उत्पन्न की।

(2) कपास तथा अन्य कच्चा माल आयात करके कई उद्योगों का विकास कर सका।

(3) विदेशी व्यापार के मुनाफे से कृषि, खनन व औद्योगिक विकास के लिए आवश्यक पूँजी उपलब्ध हो गई।

(4) बीमा, बैंकिंग आदि जिन सुविधाओं ने विदेशी व्यापार को बढ़ाया, उन्होंने घरेलू बाजार को भी उन्नत किया।

(5) बड़े नगरों एवं औद्योगिक केन्द्रों का विकास हुआ।

NOTES

(d) परिवहन क्रांति :–

परिवहन के विकास से देश में पूँजी निर्माण को बढ़ावा मिला।

3.3 औद्योगिक क्रांति के इंग्लैण्ड में प्रारंभ होने के कारण

(1) आवश्यकता की वस्तुयें अधिक उत्पादन होने से तथा जनसंख्या में कमी होने से इंग्लैण्ड में मशीनों से उत्पादन को प्रोत्साहन मिला। मशीनों से उत्पादन होने से वस्तुयें सस्ती भी पड़ती थीं तथा उनकी माँग भी बढ़ सकती थी।

(2) इंग्लैण्ड में लोहे और कोयले की खदानों के पास–पास होने से पक्का लोहा बनाने और लोहे से मशीनें बनाने में काफी सुविधा होती थी। इस कारण इंग्लैण्ड में अन्य यूरोपीयन देशों की अपेक्षा मशीनों का निर्माण पहले शुरू हुआ। मशीनों से कल–कारखाने चलने लगे।

(3) समुद्री मार्ग पर ब्रिटेन का एकाधिकार होने से उत्पादित वस्तुओं को निर्यात करने में सुविधा रही। इससे उत्पादित वस्तुओं की अधिक मात्रा को बाजार उपलब्ध हो गया।

(4) उपनिवेशों से इंग्लैण्ड को कच्चा माल एवं नवीन बाजार उपलब्ध हुए।

(5) लम्बे समय से इंग्लैण्ड के पास बड़ी संख्या में अर्द्धकुशल कारीगर रहे। जब औद्योगिक क्रांति आरंभ हुई तो लोग नई मशीनों पर काम करने के लिए उपलब्ध हो गए। ये स्वतंत्र लोग थे और जैसे–जैसे उनकी माँग होती ये एक स्थान से दूसरे स्थान पर आ–जा सकते थे।

(6) युद्धों के दिनों में इंग्लैण्ड को न केवल अपने सैनिकों की अपितु अपने साथी देशों के सैनिकों की आवश्यकताओं को भी पूरा करना। इसके लिए उत्पादन तरीकों में सुधार करना आवश्यक हो गया। युद्धों के बाद बेकारी बढ़ी इसको दूर करने का एक तरीका था उद्योग–धंधों का विकास।

(7) ब्रिटेन में राजनीतिक सुरक्षा इतनी अच्छी थी कि लोग बड़े उद्योगों में आवश्यक पूँजी लगाने में बिल्कुल भी संकोच नहीं करते थे। इंग्लैण्ड के प्रधानमंत्री बालपोल की कुशल नीति से राजनैतिक एवं वित्तीय स्थायित्व बढ़ा। सरकार की संरक्षणवादी नीति से भी औद्योगिक उत्पादन को प्रोत्साहन मिला।

(8) इंग्लैण्ड में उद्योग तथा व्यापार के लिए निरंतर बढ़ते हुए श्रम की माँग में श्रमिकों का अभाव था।

(9) ब्रिटेन में बहुत पहले बैंकों की स्थापना हो चुकी थी। सुविकसित बैंकिंग प्रणाली के विकसित होने से उद्योगपतियों को इस प्रकार पूँजी की सरल प्राप्ति ने इंग्लैण्ड को औद्योगिक क्रांति का संस्थापक बना दिया।

(10) पूँजी अधिक मात्रा में उपलब्ध होना। औद्योगिक विकास में बड़े–बड़े कारखाने लगाने के लिए पूँजी की आवश्यकता को वहाँ के व्यापारी पूरी करते थे। ये व्यापारी पूँजी को औद्योगिक क्षेत्र में लगाने को तैयार थे।

(11) इंग्लैण्ड के निवासियों का जीवन स्तर उच्च था। जीवन स्तर के विकास का लाभ उद्योगों को ही मिलता है। क्रय शक्ति की अधिकता ने वस्तुओं की माँग बढ़ायी।

NOTES

बोध प्रश्न

1. औद्योगिक क्रांति से क्या तात्पर्य है।

....

....

....

2. इंग्लैण्ड में औद्योगिक क्रांति के प्रारंभ के कारण लिखिये?

....

....

....

3.4 औद्योगिक क्रांति से हुए परिवर्तन

संक्षेप में, औद्योगिक क्रांति के अन्तर्गत कई प्रकार के परिवर्तन हुए जो इस प्रकार हैं:–

(1) उत्पादन सम्बन्धी अनेक कार्य जो पहले हाथ से किए जाते थे, जब वाष्प चलित यंत्रों से किए जाने लगे।

(2) यंत्रों या मशीनों को चलाने के लिए जल शक्ति के स्थान पर वाष्प शक्ति तथा कालान्तर में विद्युत तथा प्राकृतिक तेल का उपयोग होने लगा।

(3) इस्पात की माँग पूर्ति के लिए इस्पात बनाने के कारखाने खोले गए।

(4) कृषि कार्य में मशीनों का प्रयोग किया जाने लगा और छोटे–छोटे खेतों के स्थान पर बहुत बड़े फार्मों में खेती की जाने लगी।

(5) पूँजी का उपयोग बढ़ा।

(6) वाष्प चलित रेल इंजन तथा यंत्र चलित जहाजों के कारण यातायात में आमूल परिवर्तन हो गया।

सोलहवीं और सत्रहवीं सदी के दौरान प्रयोगात्मक विज्ञान के नए तरीकों का आम जीवन में प्रसार शुरू हो चुका था। उनके उपयोग ने नयी तकनीक विकसित करने में सहयोग दिया और उसने उत्पादन के साधनों में काफी परिवर्तन कर दिया, जिसे हम औद्योगिक क्रांति कहते हैं। प्रौद्योगिकी विकास में न्यूटन के गति, बल, शक्ति और ऊर्जा आदि के सिद्धान्तों ने अत्यधिक योगदान दिया।

कृषि क्षेत्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन

कृषि जन्य वस्तुओं की माँग बढ़ने से कृषि क्षेत्र में वैज्ञानिक तरीकों से काम करने और कृषि उपयोगी मशीनों को बनाने की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी।

सर्वप्रथम वर्कशायर के एक अंग्रेज जमींदार **जेथ्रो टल** 1674–1740 के बीज बोने के लिए **"ड्रिल"** नामक एक यन्त्र बनाया, जिससे उचित परिमाण में निश्चित कतारों में बीज बोए जा सकते थे।

इसके पश्चात् **टाउनशैण्ड** 1674–1738 ने किसानों को फसल को बदल–बदल कर उपजाने के लाभ समझाए।

NOTES

1770 ई. के आस–पास **राबर्ट वेकवैल** ने पशुपालन को एक लाभदायक व्यवसाय बना दिया। वैज्ञानिक प्रजनन पद्धति के नवीन प्रयोग से उसने पहले से तिगुनी वजन की भेड़ें तैयार करने में सफलता प्राप्त की।

आर्थर यंग ने बड़े–बड़े फार्म बनाने तथा बड़े फार्मों से मिलने वाले लाभों का विस्तृत विवरण दिया।

1840 में **जस्टन वॉन लीबिग** जर्मन रसायन शास्त्री ने यह प्रतिपादित किया कि पौधों की आधारभूत खुराक पोटाश, नाइट्रोजन और फॉस्फोरस है।

1834 में **साइरस एच. मैककोरमिक** ने फसल काटने वाली मशीन का आविष्कार किया।

इस समय में जनसंख्या का वह भाग जिसका अन्न उपजाने से कोई लाभ उद्योग को ही मिलता है। क्रय शक्ति की अधिक शक्ति ने वस्तुओं की माँग बढ़ायी।

कारण :–

(1) इंग्लैण्ड के निवासियों का जीवन स्तर उच्च था।

(2) इंग्लैण्ड में लोहे तथा कोयले की खाने पास–पास होने से पक्के लोहे का निर्माण अधिक सुविधा से होने लगा।

(3) उपनिवेशों से इंग्लैण्ड को कच्चा माल एवं नवीन बाजार उपलब्ध हुए

(4) समुद्री व्यापार पर लगभग एकाधिकार था।

(5) इंग्लैण्ड का निर्यात व्यापार फ्रांस के निर्यात व्यापार की तरह तथा जिनमें विलास वस्तुयें अधिक थीं। विलास वस्तुओं का निर्माण मशीनों द्वारा संभव नहीं था।

(6) इंग्लैण्ड में कृषि दासता तथा श्रेणी व्यवस्था फ्रांस व अन्य देशों की अपेक्षा पहले ही समाप्त हो चुकी थी। इंग्लैण्ड के अपेक्षाकृत मुक्त वातावरण में व्यक्तिगत स्वतंत्रता की भावना को बल मिला। शासक पर निर्भरता कम होती जा रही थी।

(7) लम्बे अरसे से इंग्लैण्ड के पास बड़ी संख्या में अर्द्धकुशल कारीगर रहे। जब औद्योगिक क्रांति आरंभ हुई तो लोग नई मशीनों पर काम करने के लिए उपलब्ध हो गए। ये स्वतंत्र लोग थे और जैसे–जैसे माँग होती ये एक स्थान से दूसरे स्थान पर आ–जा सकते थे।

(8) युद्धों के दिनों में इंग्लैण्ड को न केवल अपने सैनिकों की अपितु अपने साथी देशों के सैनिकों की आवश्यकताओं को भी पूरा करना था। इसके लिए उत्पादन तरीकों में सुधार करना आवश्यक हो गया। युद्धों के बाद बेकारी बढ़ी इसको दूर करने का एक तरीका था उद्योग–धंधों का विकास।

(9) ब्रिटेन में राजनीतिक सुरक्षा इतनी अच्छी थी कि लोग बड़े उद्योगों में आवश्यक पूँजी लगाने में बिल्कुल भी संकोच नहीं करते थे। इंग्लैण्ड के प्रधानमंत्री वालपोल की कुशल नीति से राजनैतिक एवं वित्तीय स्थायित्व बढ़ा।

(10) इंग्लैण्ड में उद्योग तथा व्यापार के लिए निरन्तर बढ़ते हुए श्रम की माँग के मुकाबले में श्रमिकों का अभाव था। जहाँ फ्रांस के पास चार करोड़ पौण्ड विदेशी व्यापार के लिए 269 लाख जनसंख्या थी वहाँ इंग्लैण्ड में 3.29 करोड़ पौण्ड के लिए सिर्फ 99 लाख जनसंख्या थी। श्रमिकों के अभाव में मशीनों का आविष्कार करने के लिए प्रेरित किया।

(11) वाणिज्यवाद के परिणामस्वरूप प्रचुर मात्रा में धन इंग्लैण्ड में जमा हो गया था। जहाँ एक ओर इंग्लैण्ड के व्यापारियों ने भारत तथा अन्य उपनिवेशों से असामान्य लाभ कमाकर धन एकत्रित किया वहाँ 17 शताब्दी में प्यूटिरन तथा 18वीं शताब्दी में मेथोडिस्ट आन्दोलनों

ने सादा जीवन कम से कम व्यय और अधिक बचत से व्यवसायों में विनियोग को प्रोत्साहन दिया। इंग्लैण्ड का नव धनाढ्य वर्ग कुलीन वर्ग नहीं था, अपितु सौदागरों एवं व्यापारियों का था जो अपनी पूँजी को उद्योगों एवं वैज्ञानिक अनुसंधानों में लगाने के लिए तत्पर था।

(12) अठारहवीं शताब्दी की "काली मृत्यु" महामारी ने लाखों किसानों को प्रभावित किया। उसका प्रभाव तेजी से बढ़ रहा था। कृषि उपज के बढ़ने से इस भाग को भोजन देना आसान हो गया। इसके अलावा चकबन्दी के कारण जो किसान बेदखल हुए थे उनमें से उद्योगों में काम करने के लिए श्रमिक प्राप्त हुए।

यूरोप के अन्य देशों में औद्योगीकरण का विस्तार

नए-नए उद्योग उत्तरी फ्रांस, दक्षिणी बेल्जियम और जर्मनी की सार घाटी जैसे निश्चित क्षेत्रों में केन्द्रित हो गए थे, जब कि इन्हीं देशों के अन्य भागों में पुरानी अर्थव्यवस्थाएँ ज्यों-की-त्यों बनी रहीं। परिणामतः उद्योगशील देशों में आधुनिक और परंपरागत अर्थव्यवस्थाएँ साथ-साथ विद्यमान रहीं।

यूरोपीय देशों में औद्योगीकरण की गति में अंतर– औद्योगिक क्रांति बेल्जियम और फ्रांस के बाहर पश्चिम से पूर्व और दक्षिण की ओर फैली। 1850 तक बेल्जियम एक उद्योग-प्रधान समाज बन चुका था। यह ऐसा पहला देश था जिसने ब्रिटिश औद्योगिक निपुणता और प्रबंध-कौशल का उपयोग बड़े पैमाने पर किया था। शुरू-शुरू में बेल्जियम ही यूरोप के वाष्प-चालित कारखानों के लिए कोयले की जरूरत पूरी करता था।

बेल्जियम के बाद फ्रांस ने औद्योगीकरण की राह पर कदम बढ़ाया और 1870 से शुरू होने वाले दशक तक आते-आते उसके उद्योग नए रूप में ढल चुके थे। फ्रांस में वाष्प-इंजन का प्रयोग 1830 में ही शुरू हो गया था और कोई दस वर्ष बाद देश में ही उसका निर्माण भी होने लगा था। 1848 तक सूती और रेशमी वस्त्र उद्योगों के मशीनीकरण के साथ-साथ औद्योगिक नगरों में लोगों का जमाव दिखाई देने लगा था। ऊनी वस्त्र-उद्योग का मशीनीकरण 1850 के बाद हुआ परन्तु फ्रांस में कच्चे माल की कमी और माल-निर्माताओं की हिचकिचाहट की वजह से उद्योगीकरण की प्रक्रिया अपेक्षाकृत धीमी थी। परणिाम यह हुआ कि सरकार को इस दिशा में सक्रिय भूमिका निभानी पड़ी। उसने संचार-साधनों का विकास किया, बैंक स्थापित किए और गैर-सरकारी कंपनियों को सहायता प्रदान की। इसमें से अधिकांश कार्य 1857-70 के बीच द्वितीय साम्राज्य के अंतर्गत किया गया। 1870 तक आते-आते फ्रांसीसी उद्योग 1851 की तुलना में पाँच गुनी अश्वशक्ति का उपयोग करने लगा और उसकी कोयले की खपत तिगुनी हो गई। इसी तरह 1830 और 1860 के बीच फ्रांसीसी विदेशी व्यापार का तिगुना विस्तार हो गया।

जर्मनी का औद्योगीकरण फ्रांस की अपेक्षा धीमी गति से हुआ। इसका आंशिक कारण यह था कि 1870 तक उसमें राजनीतिक एकता का अभाव रहा। कुछ कारण यह भी था कि उसकी संचार-व्यवस्था बहुत कम विकसित थी। फिर, उसके खनिज भंडार देश की सीमाओं पर थे, और वहाँ कोई ऐसा बड़ा पूँजीपति वर्ग नहीं था जो उद्योगों में अपना धन लगा सकता, जैसा कि ब्रिटेन में मौजूद था। इनमें से अधिकांश समस्याओं का हल 1870 तक निकाल लिया गया। राजनीतिक एकता प्राप्त कर ली गई, उद्योगों में निवेश के लिए पूँजी संचित कर ली गई और परिवहन-व्यवस्था का कायाकल्प कर दिया गया। 1830 के बाद नई-परिवहन-व्यवस्था में सुधार किया गया, 1862 तक सड़कों की लंबाई 18,000 मील तक पहुँच गई और 1850-70 के बीच एक विशाल रेलमार्ग के निर्माण का कार्यक्रम हाथ में लिया गया। इसके साथ ही वस्त्र और भारी उद्योगों का मशीनीकरण भी चलता रहा। 1850-80 के बीच जर्मनी ने अपना कोयला-उत्पादन दस गुना बढ़ा लिया। अतः 1900 तक जर्मनी के लिए औद्योगिक क्षेत्र में प्रौढ़ता प्राप्त करने की की तैयारी पूरी हो चुकी थी।

अन्य देशों–स्वीडन, इटली, स्विट्जरलैंड और ऑस्ट्रिया–में छोटे–छोटे औद्योगिक क्षेत्र तो थे परंतु 1830–70 के दौरान वहाँ जो परिवर्तन हुए वे बेल्जिमयम, फ्रांस और जर्मनी की तुलना में बहुत कम थे। इन देशों में से स्वीडन में 1850 के आस–पास, इटली में 1860 से, और ऑस्ट्रिया तथा उत्तरी स्पेन में 1870 से औद्योगिक क्रांति का सूत्रपात हुआ। इटली की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि यह थी कि वहाँ 1830–60 के बीच ऊनी और सूती उद्योगों का मशीनीकरण हो गया।

रूस में औद्योगिक क्रांति का सूत्रपात यूरोप के अन्य अधिकांश देशों के मुकाबले देर से हुआ। 1850 तक रूस के अधिकांश निवासी मुद्रा का प्रयोग नहीं करते थे बल्कि अपनी सेवाएँ देकर वस्तुओं के रूप में भुगतान प्राप्त करते थे। गाँव की मंडियों में व्यापार के लिए वस्तु–विनियम की पद्धति अपनाई जाती थी। कृषि–दासों की मुक्ति के बाद रूस में मुद्रा–अर्थव्यवस्था का विकास हुआ क्योंकि अब मजदूरी के लिए नकद भुगतान जरूरी हो गया था। 1860 से शुरू होने वाले दशक तक रूसी उद्योग में कृषि–अर्थव्यवस्था के विस्तार के अतिरिक्त किसी प्रकार की प्रगति नहीं हुई थी, परंतु संचार–व्यवस्था का विकास हो रहा था। 1861 तक 1,000 मील लंबा रेलमार्ग बन चुका था और 1880 तक उसकी लंबाई 14000 मील तक पहुँच गई थी। इसके अलावा रेल–तंत्र के निर्माण कार्यक्रम से जो माँग पैदा हुई थी, उसे पूरा करने के उद्देश्य से भी 1860 के बाद वहाँ उद्योग का विकास होने लगा। फलतः 1860–70 के बीच कोयला उत्पादन सोलह गुना हो गया और इस्पात का उत्पादन दस गुना हो गया। 1860 में स्टेट बैंक की नींव रखी गई। उसी वर्ष से इसने उद्योग के लिए पूँजी उपलब्ध कराई और अपने औद्योगिक प्रतिष्ठान भी चलाने शुरू किए। पोलैंड में, जो कि रूस का एक भाग था, 1870 से शुरू होने वाले दशक में उद्योगों का विकास हुआ।

विभिन्न क्षेत्रों के औद्योगिक विकास की प्रकृति में अंतर– जहाँ भी औद्योगीकरण जितनी देर से हुआ, वहाँ भारी औद्योगिक क्षेत्र को उतना ही ज्यादा महत्व दिया गया। अतः बेल्जियम फ्रांस जैसे देशों में, जहाँ औद्योगीकरण जल्दी हो गया था, मशीनीकरण के पहले दौर में वस्त्र तथा हल्के उद्योगों की प्रधानता रही। जर्मनी में रेल–तंत्र का विकास और इसके परिणामस्वरूप लौह तथा इस्पात उद्योगों का विस्तार औद्योगीकरण के आरंभिक दौर की प्रमुख विशेषता थी, रूस में भी ऐसा ही हुआ था। जर्मनी तथा रूस दोनों देशों में विशाल मध्य वर्ग और निवेश–पूँजी के अभाव में सरकार को गौण उद्योग स्थापित करने में विशेष भूमिका निभानी पड़ी, जैसी कि फ्रांस और बेल्जियम की सरकारों को नहीं निभानी पड़ी थी।

(a) वस्त्र उद्योग में यन्त्रों का प्रयोग

1733 ई. में जॉन के ने **"फ्लाइंग शटल"** का आविष्कार किया जिससे कपड़े बुनने के कार्य में तेजी आयी।

1764 ई. में **जैम्स हरग्रीव्य** ने **"स्पिनिंग जेनी** का आविष्कार किया जिससे सूत के आठ धागे काते जा सकते थे।"

1769 ई. में **रिचर्ड आर्कराइट** ने जल शक्ति से चलने वाला **"वाटर फेस"** नामक सूत कातने का यंत्र बनाया। फिशर ने लिखा कि **"आर्कराइट ने महान् सूती वस्त्र उद्योग की नींव डाली और कारखाना व्यवस्था को जन्म दिया।"**

1785 में **एडमण्ड कार्टराइट** ने **शक्ति चालित करघे** का आविष्कार किया। इस मशीन से बढ़िया किस्म का कपड़ा इतना सस्ता हो गया कि जितना इससे पहले कभी नहीं हुआ था।

एक अमेरिकी शिक्षक **ऐली व्हिटने** ने 1783 ई. में **कपास ओटाने की मशीन** का आविष्कार किया, जिसे **"कॉटन जिन"** कहा गया। इस आविष्कार ने कपास उद्योग में क्रांति ला दी।

(b) नई प्रकार की शक्ति वाष्प इंजन

सर्वप्रथम 1712 ई. में **टामस न्यूकोमैन** ने खानों से पानी बाहर निकालने में वाष्प इंजन बनाया। 1775 ई. में इंजन बनाने का कारखाना, जेम्सवाट ने एक उद्योग पति की साझेदारी में स्थापित किया।

(c) लौह उद्योग में नई तकनीक का प्रयोग :–

1750 ई. के आसपास यह ज्ञात हुआ कि कच्चे लोहे को पिघलाने के लिए पत्थर के कोयले से बना कोक प्रयोग किया जा सकता है।

1784 ई. में **हेनर कोर्ट** ने एक ऐसी विधि का आविष्कार किया जिसके द्वारा अधिक शुद्ध और अच्छा लोहा बनाना सम्भव होगा।

1886 के लगभग **हेनी बैस्सेमर** ने जल्दी एवं सस्ता इस्पात बनाने की विधि खोज निकाली।

(d) नवीन तकनीकी के प्रवेश से सड़क एवं नहर निर्माण :–

स्कॉटलैण्डवासी **मकाडम** ने सड़क निर्माण का नया तरीका खोज निकाला। उसने सड़क के निचले भाग को भारी पत्थरों की परत, उसके बाद छोटे–छोटे पत्थरों की परत और फिर उसके बाद तारकोल की परत जमायी। ये सड़कें अधिक टिकाऊ एवं उपयोगी सिद्ध हुईं।

ब्रिजवाटर ने ड्यूक ने **जेम्स ब्रिंडले** नामक इंजीनियर से 1761 में **ब्रिजवाटर नहर** तैयार कराई। इसके बाद कई नहरें बनीं।

(e) परिवहन के क्षेत्र में :–

अमेरिकी **रोबर्ट फुल्टन** ने 1807 ई. में प्रथम वाष्प चालित नौका का आविष्कार किया। प्रथम समुद्र पार जाने वाली स्टीम बोट **"सिरिअस"** ने 1838 ई. अटलांटिक महासागर को अठारह दिन में पार किया।

1814 में जार्ज स्टीफेन्सन ने भाप इंजन **"राकेट"** का आविष्कार किया फलस्वरूप मेनचेस्टर और लिवरपुल के बीच 1830 में प्रथम रेलगाड़ी चली।

(f) संचार के क्षेत्र में

एक अंग्रेज, **रोलैण्ड हिल** ने एक व्यवस्था स्थापित की जिसके द्वारा पेंस के टिकट से कोई भी पत्र ग्रेट ब्रिटेन में किसी भी जगह भेजा जा सकता था।

1844 में **सैमुअल मौर्स** ने एक व्यावहारिक **तार यंत्र** का आविष्कार किया। दो महाद्वीपों को जोड़ने के लिए सर्वप्रथम अन्तरराष्ट्रीय तार यन्त्र उत्तरी अमेरिका और यूरोप के मध्य लगाया गया **"अटलांटिक केबल"** था।

1876 में **ग्राह्यम बैल** ने टेलीफोन का आविष्कार किया। वैज्ञानिक आविष्कारों एवं तकनीकी परिवर्तनों ने औद्योगिक क्रांति को सम्भव बना दिया।

जैसा कि पहले ब्रिटेन में हुआ था, अब समूचे यूरोप में वस्त्र–उद्योग के क्षेत्र में घरेलू उत्पादन की जगह कारखानों के माध्यम से उत्पादन का दौर शुरू हो गया, खनन और धातु–कार्य के नए तरीके अपनाए गए और परिवहन तथा संचार के क्षेत्र में क्रांति हुई। सामान्य रूप से कहा जाए तो 1830 के औद्योगिक परिवर्तन केवल एक शुरूआत थी और यह सिलसिला पश्चिम से पूर्व तथा दक्षिण की ओर आगे बढ़ा, यहाँ तक कि 1880 तक आते–आते एक औद्योगिक अर्थव्यवस्था और समाज की आधारशिला रखी जा चुकी थी।

NOTES

औद्योगिक क्रांति का प्रभाव
(Impact of Industrial Revolution)

सम्पूर्ण आधुनिक इतिहास में किसी घटना के द्वारा मानव जीवन में इससे अधिक महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं लाए गए।

प्रो. नोवेल्स के अनुसार **"क्रांति का परिणाम था– नई जनता, नए वर्ग, नई नीतियाँ नयी समस्याएँ और नए साम्राज्य।"** औद्योगिक क्रांति के कारण मानव समाज की विचारधारा एवं दृष्टि में भी आमूल परिवर्तन हो गया।

(1) **आर्थिक प्रभाव :–** औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि निम्नलिखित है :–

कच्चा लोहा 1788–1851 में 68 हजार टन से बढ़कर 25 लाख टन अर्थात् 37 गुना वृद्धि हुई। कच्चे ऊन का आयात 1801–1849 में 70 लाख पौण्ड से बढ़कर 740 लाख पौण्ड हो गया।

औद्योगिक केन्द्रों के आसपास नवीन नगरों का विकास हुआ। इंग्लैण्ड में मेनचेस्टर, लिवर पूल, लीड्स आदि बड़े नगरों के रूप में उभरे। पहले गाँव ही अर्थव्यवस्था के आधार थे। औद्योगिक क्रांति के कारण अब शहर अर्थव्यवस्था के आधार बन गए।

अन्य देशों की निर्मित वस्तुओं पर भारी कर लगाकर राष्ट्रीय उत्पादनों को महत्व दिया जाने लगा। बाजारों की आवश्यकता ने सरकारों को उपनिवेश प्राप्ति की ओर प्रेरित किया। वृहत स्तर पर उत्पादन, असमान वितरण और एकाधिकारी प्रवृत्तियों से उत्पादकों और उपभोक्ताओं का प्रत्यक्ष सम्बन्ध समाप्त हो गया और उत्पादन तथा उपभोग में असन्तुलन होने से व्यापार चक्रों की पुनरावृत्ति होने लगी।

पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में आर्थिक संकट एक अनिवार्य अंग के रूप में सामने आया। इंग्लैण्ड में 1825, 37, 47, 66, 73, 88, 90 1900, 1907, 21, 30 की आर्थिक मंदियाँ औद्योगिक क्रांति के संकटों की आवृत्ति के उदाहरण।

औद्योगिक क्रांति ने–औद्योगिक पूँजीवाद को जन्म दिया। इसने आर्थिक–सामाजिक ढाँचे में महत्वपूर्ण परिवर्तन किए।

(2) सामाजिक प्रभाव :–

औद्योगिक क्रांति ने मध्य वर्ग की शक्ति को अभिव्यक्त किया। इस क्रांति के फलस्वरूप संयुक्त परिवार प्रणाली को काफी आघात पहुँचा। फैक्ट्री प्रणाली से मालिक व मजदूरों के परस्पर संघर्ष, श्रमिकों के शोषण, श्रमिकों की व्यक्तिगत स्वतंत्रता के ह्रास, उनमें स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याएँ उत्पन्न हो गईं।

मजदूरों की संख्या में भारी वृद्धि हुई। जिन नए वर्गों का जन्म हुआ वे अपने अधिकारों की माँग करने लगे श्रमिक वर्ग के साथ–साथ स्त्रियों की ओर से भी नयी माँगें आने लगीं।

(3) राजनैतिक प्रभाव :–

उन्नीसवीं सदी में केवल इंग्लैण्ड में ही चालीस से अधिक फैक्ट्री अधिनियम बने जिनके अधीन काम के घण्टे, न्यूनतम मजदूरी एवं अन्य बातों की व्यवस्था हुई।

1767 ई. में सरकार को नगरीय मजदूरों को मताधिकार देना पड़ा और फिर 1884 ई. में ग्रामीण मजदूरों को भी यह अधिकार मिला। इस प्रकार औद्योगिक क्रांति से पनपे वर्गों के प्रभाव के फलस्वरूप राजनीतिक सत्ता, भूपतियों के हाथ से मुक्त हुई और इंग्लैण्ड में जनतंत्र का विकास हुआ।

औद्योगिक क्रांति ने उपनिवेश स्थापित करने अथवा अविकसित देशों पर राजनीतिक नियंत्रण स्थापित करने की प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया।

(4) विचारधारा पर प्रभाव

औद्योगिक क्रांति के कारण इंग्लैण्ड में इसके आर्थिक क्षेत्र में राज्य के हस्तक्षेप की अवांछनीयता का सिद्धान्त भी शामिल हो गया था। इस प्रकार के सिद्धान्त का जन्म फ्रांस में तुर्गो जैसे विचारकों के प्रभाव में हुआ था।

NOTES

बोध प्रश्न

1. व्यासायिक क्रांति का वर्णन कीजिए?

....

....

....

2. औद्योगिक क्रांति में हुए परिवर्तन का वर्णन कीजिए?

....

....

....

3.5 नए सामाजिक वर्गों का उदय (EMERGENCE OF NEW SOCIAL CLASSES)

यूरोप में सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी में जो आर्थिक, वैज्ञानिक, तकनीकी और वैचारिक परिवर्तन हुए इनके कारण वहाँ के सामाजिक जीवन में भी व्यापक परिवर्तन दिखाई देने लगे। नगरों के विकास ने सामाजिक जीवन को सबसे अधिक प्रभावित किया। इससे नए सामाजिक वर्गों का उदय हुआ। नगरीय जीवन शैली ने समाज की संरचना और ढांचे दोनों में परिवर्तन किए। इन नए सामाजिक परिवर्तनों का परिणाम यह हुआ कि समाज में कई नए वर्गों का उदय हुआ। नए वर्गों के उदय के साथ–साथ पुराने वर्गों की स्थिति में भी परिवर्तन हुआ। इस स्थिति में प्रभावित होने वाले वर्ग थे – कृषक और परंपरागत अभिजात वर्ग।

(A) **कृषक वर्ग–** उन्नीसवीं शताब्दी में स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार उत्पादन प्रणाली की जगह बाजार कृषि व्यवस्था का चलन हो गया। कुछ स्थानों पर तो 1830 से पहले ही पुरानी प्रणाली को चुनौती दी जा चुकी थी। अतः किसान और जमींदार दोनों ही दूर के बाजारों में होने वाली बिक्री पर आश्रित होते गए। बाजार–कृषि व्यवस्था के विकास के फलस्वरूप कृषि–पद्धतियों में परिवर्तन हुए ताकि उत्पादन को बढ़ाया जा सके। परंतु इस कृषि–क्रांति के बावजूद कृषक वर्गों को समाज में अपने परम्परागत महत्व से वंचित होना पड़ा। कुल राष्ट्रीय उत्पादन की प्रतिशत मात्रा की दृष्टि से इनका उत्पादन निरंतर घटता गया, और कुल श्रम–शक्ति के प्रयोग में भी कृषि का हिस्सा कम होता गया। इसके अलावा, शहरी आबादी के मुकाबले ग्रामवासियों की संख्या में भी गिरावट आ गई।

(1) **अभिजात वर्ग–** कृषि के आपेक्षिक महत्व का ह्रास होने पर अभिजात वर्ग को गहरा धक्का लगा, विशेषतः पश्चिमी यूरोप में। समाज के शिरोमणि के रूप में उनके स्थान को व्यापार और उद्योग के महारथियों ने लगातार चुनौती दी। अतः अभिजात वर्ग के अनेक व्यक्तियों को अपनी पुरानी जीवन–पद्धति बनाए रखना कठिन प्रतीत हुआ, क्योंकि वे पूँजीवादी कृषि के अभ्यस्त नहीं थे। इनमें से कुछ लोगों ने तो बाजार की नई माँगों के अनुरूप व्यवहार करना शुरू कर दिया, दूसरों ने अपनी भूमि बेच दी या पट्टे पर दे दी। प्रशासन में 1851 और 1884 के बीच अभिजात वर्ग की कुल जागीरों में से एक तिहाई बिक गई।

अपने आपको बदलती हुई परिस्थितियों के अनुरूप ढालने का प्रयत्न भी किया। अनेक देशों में वे राजनीति में भाग लेते रहे, सेना में उनका प्रभुत्व रहा, चर्च पर उनका नियंत्रण रहा, प्रशासकों और राजनयज्ञों के पदों पर उनका अधिकार रहा।

परंतु 1870 आते–आते सभी देशों में अभिजात वर्ग की स्थिति में सारभूत परिवर्तन आ गया था। कुछ भी हो अभिजात वर्ग के व्यक्तियों ने अपने व्यवहार में लचीलापन दिखाया, उसका ह्रास हो रहा था, परंतु वे सर्वथा लुप्त नहीं हुए।

(2) **खेतिहर वर्ग–** किसान समुदाय में भी बड़े–बड़े परिवर्तन आए। जब जनसंख्या बढ़ गई तो प्रति व्यक्ति उपलब्ध भूमि कर रह गई। यूरोपीय रूस में 1900 आते–आते ग्रामीण जनसंख्या दुगुनी हो गई, परंतु कृषि–भूमि का कोई उल्लेखनीय विस्तार नहीं हुआ। भूमि पर दबाव बढ़ जाने से इस समस्या को सुलझाने के लिए नगरों की ओर या समुद्रपार उत्प्रवास को प्रोत्साहन मिला।

लोगों ने सफलतापूर्वक बाजार के लिए उत्पादन शुरू कर दिया और अपने आस–पास के उन किसानों की भूमि भी खरीद ली जो बदलती हुई परिस्थितियों में सफल नहीं हो पाए थे। भूतपूर्व जागीरदारी में जो किसान जमींदारों के प्रति अपने परम्परागत दायित्वों से मुक्त हो गए थे उन्होंने साझे की भूमि को बाँट लिया, भूमि की तितर–बितर पट्टियों को जोड़ लिया और बाजार के लिए कृषि–ऋण संस्थाओं से लाभ उठाया जो 1850 के बाद पश्चिमी यूरोप में विकसित की गई थीं।

पश्चिमी और मध्य यूरोप के अनेक हिस्सों में ग्रामीण जनसंख्या की जीवन स्तर शायद धीरे–धीरे ऊँचा हो रहा था, परंतु पूर्वी यूरोप में यह बात उतने स्पष्ट रूप से लागू नहीं होती थी। इसके विपरीत जर्मनी के गाँव साधारणतः दीन–हीन थे। जनसंख्या का विस्तार इतनी द्रुत गति से हुआ कि उद्योगीकरण और कृषि का विकास भी पर्याप्त रोजगार जुटाने में असमर्थ थे। इटली के एकीकरण से दक्षिण के गरीब किसानों को कोई लाभ नहीं हुआ जो अतीत से निरंतर दरिद्रता का जीवन बिताते चले आ रहे थे कृषिदासों की स्वतंत्रता के बाद रूस में भी ऐसी ही स्थिति थी क्योंकि वहाँ जो किसान अपनी भूमि को पाने की जो भूख पैदा हुई, उससे उनकी देनदारी और भी बढ़ गई।

(3) **खेतिहर मजदूर–** भूमि पर बढ़ते हुए दबाव, भूमि के स्वामित्व में परिवर्तन तथा कृषि के ह्रास से उन ग्रामीण मजदूरों की दशा में कोई परिवर्तन नहीं हुआ जिनके पास अपनी जमीन नहीं थी। 1848 से पहले संपूर्ण यूरोप में मजदूर कानूनन विरोध प्रकट करने में समर्थ नहीं थे। शहरों तथा विदेशों में जाकर बसना ऐसे लोगों के लिए कष्टों से छुटकारा पाने का एकमात्र साधन था। परंतु भूमिहीन वर्ग वहीं टिका रहा, हालाँकि जमींदारों के प्रति आदर की भावना और अत्यधिक निर्धनता के कारण यह वर्ग किसी तरह का विरोध प्रकट करने में असमर्थ था।

जागीरदारी प्रथा के उन्मूलन के बाद भूमिहीनों की समस्या और भी बढ़ गई क्योंकि इस परिवर्तन के फलस्वरूप जिनकी भूमि छिन गई थी उन्होंने भूमिहीनों की संख्या को बढ़ा दिया। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में कृषि–मूल्यों में जो मंदी आई, उसने इन समस्याओं को और भी जटिल बना दिया। परिणामतः विरोध प्रकट होने लगे, लोग ज्यादा शराब पीने लगे, उन्होंने धर्म की अवहेलना शुरू कर दी और वे अनेक अपराध करने लगे। ऐसा करने से ग्रामीण निर्धन वर्ग की समस्या का किसी भी प्रकार समाधान नहीं हो पाया।

(B) **शहरी समाज–** जनसंख्या की वृद्धि होने पर लोग काम की तलाश में गाँवों को छोड़कर शहरी की तरफ भागे और वैसे भी शहरों की जनसंख्या बढ़ती रही जिसका परिणाम बढ़ते हुए शहरीकरण के रूप में सामने आया, परंतु शहरों के विस्तार से बढ़ते हुए मजदूर वर्ग के लिए नई समस्याएँ पैदा हो गईं।

(1) **मध्य वर्ग–** उन्नीसवीं शताब्दी पिछली शताब्दियों से इसलिए भिन्न थी कि इसमें मध्य वर्ग का आकार बड़ा हो गया था और उसके रहन–सहन का स्तर बहुत ऊँचा हो गया। समाज का एक विशाल नवोदित वर्ग : जिसकी संपदा औद्योगीकरण पर आधारित थी : समृद्धि के शिखर की ओर बढ़ रहा था। ये लोग खाद्य पदार्थों, वस्त्रों और ऐशो–आराम के लिए अधिक व्यय कर सकते थे। ऐसा कह सकते हैं कि पश्चिमी और मध्ययूरोप के एक विशाल मध्य वर्ग के रहन–सहन का स्तर इतना ऊँचा हो गया था जितना मध्य युग के बाद कभी किसी ने नहीं देखा था। इस वर्ग में व्यापारी, पैशेवर लोग और लिपिकार शामिल थे हालाँकि इनमें प्रत्येक श्रेणी के लोगों की आय में बड़ा अंतर था। इनका उद्‌भव नई नौकरशाही की जरूरतें पूरी करने, बढ़ती हुई जनसंख्या को पैशेवर सेवाएँ उपलब्ध कराने और व्यापारिक तथा औद्योगिक क्रांति में भाग लेने के लिए हुआ था। संपदा अर्जित करने वालों की संख्या बढ़ती गई और राष्ट्रीय आय में मध्य वर्गों का हिस्सा बढ़ता गया।

कुछ विशेष व्यवसायों में लगे रहने के अलावा मध्य वर्गों को कुछ अन्य तरीकों से भी पहचाना जाता था। वे अक्सर संपत्ति के स्वामी या पूँजीपति होते थे। वे प्रायः अपने ही वर्ग के भीतर विवाह–संबंध स्थापित करते थे। वे परिवर्तन के सिद्धान्तों को स्वीकार करते थे और सामाजिक गतिशीलता की धारणा से प्रभावित थे जिसके अनुसार लोगों को अपनी–अपनी योग्यता के अनुसार आगे बढ़ना चाहिए। इस प्रक्रिया को तेज करने के लिए वर्गों के लोग कठिन परिश्रम करते थे, धन की बचत करते थे, कारोबार के मामलों में सूझ–बूझ से काम लेते थे और ज्यादातर सम्मानपूर्ण नैतिक व्यवहार का परिचय देते थे ताकि वे छोटे लोगों के सामने यह आदर्श प्रस्तुत कर सकें कि सफलता और समृद्धि कैसे प्राप्त की जाती है?

मध्य वर्ग ने अपने सामाजिक और आर्थिक उद्देश्यों की सिद्धि के लिए उन्नीसवीं शताब्दी के उदारवाद को भी विकसित किया। इसी ध्येय से उन्होंने समाचार–पत्रों तथा धर्म की स्वतंत्रता का समर्थन किया, मुक्त व्यापार की पैरवी की ओर गिल्डों को समाप्त करने के लिए आवाज उठाई। उन्होंने साधारणतः दास–प्रथा को समाप्त करने का अनुमोदन किया और राज्य–नियंत्रित शिक्षा की माँग की। इसके अलावा उन्होंने कानून और व्यवस्था के संबंध में राज्य की नीतियों का समर्थन किया क्योंकि अव्यवस्था से वाणिज्य, उद्योग और व्यापार को खतरा था। मध्य वर्ग के सदस्य इस तरह का राज्य चाहते थे जो उनके अपने आर्थिक उद्देश्यों को प्रोत्साहन और सहायता दे सके। अतः उन्होंने प्रशासन में भाग लेने के लिए प्रयत्न किया और ऐसी संसदीय प्रणाली की माँग की जो उन्हें निर्णय–प्रक्रिया में अपनी राय प्रकट करने का अवसर प्रदान कर सके। परिणाम यह हुआ कि फ्रांस में 1789 से लेकर रूस में 1905 तक अनेक प्रदेशों में संसदें स्थापित की गई हालाँकि ये सब हमेशा मध्य वर्गों की नीतियों की पूर्ण समर्थक नहीं थीं जैसी कि वे चाहते थे।

1849 तक मध्य वर्गों ने अपने राजनीतिक उद्देश्यों की सिद्धि के लिए जो तरीके इस्तेमाल किए उनमें समाचार–पत्रों का उपयोग, सभाओं का आयोजन और राजनीतिक सुधार के लिए दबाव डालना शामिल थे। कई जगह मध्य वर्गों ने अपनी माँगें पूरी करने के लिए क्रांतियों के रूप में सीधी कार्यवाही का सहारा लिया। इनमें से अधिकांश ऐसा शासन या राज्य स्थापित नहीं कर पाए जो पूर्णतया मध्य वर्ग के आदर्शों के अनुरूप हो। परंतु जहाँ क्रांतियाँ विफल हो गईं– जैसे कि 1848–49 के दौरान जर्मनी और इटली में– वहाँ भी उन्हें कुछ–न–कुछ लाभ अवश्य हुआ और बाद के वर्षों में तो उन्हें पहले से अधिक लाभ प्राप्त हुए।

निम्न मध्य वर्ग के सफेदपोश वेतनभोगी व्यक्तियों की संख्या में 1870 के बाद अत्यधिक वृद्धि हुई किंतु इस वृद्धि का प्रारंभ 1870 से पहले ही हो गया था। पहले से अधिक व्यक्ति अब अध्यापन व्यवसाय, होटल व्यापार, बैंकों और छोटे स्तर की नौकरशाही में कार्य करने लगे थे। ये व्यक्ति अधिकतर व्यापारी या कारीगर समुदायों के थे। इनमें से कुछ कारखानों में काम करने वाले वर्गों के भी थे। इन पदों पर बहुत कम व्यक्ति गाँवों में रहने वाले परिवारों के थे।

NOTES

(2) **शहरी निम्न गर्व–** फ्रांस, जर्मनी और बेल्जियम के औद्योगिक उपनगरों में, विशेषतः इस अवधि के आरंभिक बीस वर्षों में शहरी निम्न वर्गों को एक नई तरह की मुसीबत का सामना करना पड़ा। उनकी सबसे सहज–स्पष्ट समस्या यह थी कि वे जिस विलक्षण परिस्थितियों से घिर गए थे, अपने को उनके अनुकूल कैसे बनाया जाए। शहरी कारखाना मजदूरों और शहरी अकुशल मजदूरों ने ऐसी जरूरत सबसे ज्यादा महसूस की। शहरों में आकर बसने वाले लोगों के कारण इस वर्ग का आकार निरंतर बड़ा होता जा रहा था। कारीगरों का पृथक् अस्तित्व बना रहा, उनमें से अनेक काफी लंबे समय से शहरों में रह रहे थे, परंतु नई औद्योगिक और व्यापारिक क्रांतियों ने उनके लिए विशेष समस्याएँ पैदा कर दी थीं।

(3) **कारीगर–** 1870 तक शहरों में कारीगरों की संख्या काफी थी। ये लोग महाद्वीप के बड़े–बड़े नगरों और उपनगरों में व्यापक रूप से बँटे हुए थे। इस श्रेणी में कुशल शिल्पी, भवन निर्माण करने वाले मजदूर, गहने और फर्नीचर बनाने वाले, छपाई का काम करने वाले, खाद्य–सामग्री तैयार करने वाले, दर्जी और वस्त्र बनाने वाले कारीगर सम्मिलित थे। स्वयं औद्योगिक विकास ने कारीगरों के छोटे–छोटे उद्यमों जैसे कि मशीनें बनाने के उद्योग के विकास को प्रोत्साहन दिया। उधर नए नगरों और उपनगरों में ज्यादा बढ़इयों, राज–मजदूरों, नानबाइयों और दर्जियों की आवश्यकता हुई।

1870 तक कारीगरों को कारखाना मजदूरों से अलग पहचानना सरल था। ये आमतौर पर नगर के भिन्न–भिन्न भागों में काम करते थे, परंपरागत कला–कौशल का सहारा लेते थे और अपना काम स्वयं चलाते थे या छोटी–छोटी इकाइयों में काम करते थे। निवास के स्तर पर दोनों वर्गों में कोई संपर्क नहीं था और फिर, लंदन, पैरिस तथा अन्य पुराने नगरों में– जो प्रधानतः कारीगरी के केन्द्र थे– बहुत थोड़े कारखाना मजदूर देखने को मिलते थे। इसके अलावा, बहुत–से कारीगर खारखाना–मजदूरों को संदेह और अरुचि की दृष्टि से देखते थे और कारखाना प्रणाली से घृणा करते थे क्योंकि वहाँ के मजदूरों को कुशल शिल्पी बनाने की जरूरत नहीं थी और वे एक साथ बड़ी संख्या में वस्तुएँ बना डालते थे।

नए उद्योगों के विस्तार और मशीन–निर्मित उत्पादनों के लिए व्यापक बाजार के उद्भव से कारीगर–अर्थव्यवस्था की नींव के लिए ही खतरा पैदा हो गया था। कारीगर पुराने कला–कौशल का प्रयोग करते थे जिसके लिए अब भी लंबे प्रशिक्षण की आवश्यकता होती थी जबकि कारखाने के काम में निपुणता प्राप्त करने में उतनी देर नहीं लगती थी। नई मशीनों ने कारीगर के काम की रफ्तार को चुनौती दी। साथ ही कारखाना मजदूरों की संख्या बहुत बढ़ गई, यहाँ तक कि यह संख्या चिरकाल से स्थापित कारीगरों की संख्या से भी आगे बढ़ने लगी थी। परिणामस्वरूप कारीगरों ने अपनी असुरक्षा की भावना कई तरीकों से व्यक्त की, उन्होंने मशीनें नष्ट–भ्रष्ट कर दीं, दंगे किए, हड़तालें कीं।

(4) **शहरी कारखाना मजदूर वर्ग–** एक समूह के रूप में कारखाना मजदूरों को कारीगरों से अलग इसलिए पहचाना जाता था कि इनकी वृद्धि बड़ी तेजी से हुई, ये परम्परागत कला–कौशल में दक्ष नहीं थे और ग्रामीण पृष्ठभूमि से संबंध रखते थे। इस काल के प्रारंभिक वर्षों में औद्योगिक मजदूर वर्ग बहुत छोटा था और भिन्न–भिन्न देशों में असमान रूप से बँटा था। नए औद्योगिक नगरों में जैसे कि जर्मनी के ऐसेन नगर की (जनसंख्या में) कारखाना मजदूरों का बहुमत हो गया। परंतु लंदन या पेरिस जैसे अधिक पारंपरिक केन्द्रों में 1870 से पहले कारखानों की संख्या अपेक्षाकृत बहुत कम थी। मास्को और सेंट पीटर्सबर्ग ने 1902 तक जनसंख्या का केवल दसवाँ भाग कारखाना मजदूर थे। अतः यह बात ध्यान देने की है कि औद्योगिक क्रांति के इस दौर में 1870 तक शहरी समाज में नए कारखाना मजदूरों की प्रधानता बिलकुल नहीं थी।

NOTES

कारखाना मजदूरों का मुख्य स्रोत विस्थापित ग्रामीण मजदूर या ऐसे छोटे–छोटे किसान थे जो बाजारों की अर्थव्यवस्था में प्रतिस्पर्धा का सामना करने में असमर्थ थे। काम न मिलने, गरीबी और घरेलू व्यवस्था के टूट जाने के कारण ये लोग गाँव छोड़कर शहरों के नए वातावरण में काम की तलाश करने के लिए विवश हो गए। शहरी मजदूरों की हालत कई तरह से इतनी अच्छी थी जितनी गाँवों में नहीं रही थी। उन्हें अच्छी मजदूरी, अच्छा भोजन और अच्छे वस्त्र प्राप्त होते थे। परंतु कई तरह से उनकी हालत खराब भी थी, विशेषतः इस दृष्टि से कि उन्होंने परिचित देहाती जीवन की जगह मशीनी और मुसीबत–भरा जीवन अपना लिया था। शहरों की भीड़–भाड़, गिरती हुई सेहत और काम की खराब परिस्थितियाँ उनके नसीब में थी, मशीनी दुर्घटनाएँ आम बात थीं, बार–बार आने वाली औद्योगिक मंदी उन्हें बेरोजगारी और गरीबी के गर्त में धकेल देती थी।

उन्नीसवीं शताब्दी में यूरोपीय राज्य अपने मजदूरों की सहायता देने के लिए धीरे–धीरे अग्रसर हुए। 1871 के बाद जर्मन सरकार ने मजदूरी के लिए बारह घंटे का दिन निर्धारित किया, हालाँकि बच्चों के शोषण को रोकने के कदम पहले ही उठाए जा चुके थे। 1839 में प्रशा में नौ वर्ष से कम आयु के किसी बच्चे से कारखाने या खान में मजदूरी नहीं कराई जा सकती थी। किंतु बेल्जियम या फ्रांस में इनके अनुरूप कोई कानून नहीं बनाया गया था। वास्तविकता यह है कि प्रशा के विभिन्न राज्य 1870 तक बाल मजदूरी से संबंधित औद्योगिक कानून बनाते रहे जबकि फ्रांस में 1880 तक कोई कारखाना-निरीक्षक तक नहीं थे।

उधर मजदूर भी सामूहिक कार्यवाही के लिए संगठित होने पर उतनी ही धीमी गति से चल रहे थे। इसका मुख्य कारण यह था कि राज्य इसके विरुद्ध था। नेपोलियन संहिता के अंतर्गत संघ–निर्माण और हड़तालों पर पाबंदी लगा दी गई थी, और 1830 से शुरू होने वाले दशक में ऐसी गतिविधियों के प्रतिकार के लिए विस्तृत कानून पारित किए गए। कारीगरों में कुछ हलचल अवश्य दिखाई दी, परंतु आधुनिक युग में मजदूर संघ प्रथा का जो अर्थ लगाया जाता है, उस अर्थ में यह फ्रांस में द्वितीय साम्राज्य तक कानूनी तौर पर निषिद्ध रही। तृतीय साम्राज्य के उद्भव के साथ मजदूर संघों की संख्या बहुत बढ़ गई। जर्मनी में भी मजदूरों को संगठित होने में काफी देर लगी।

इसके बावजूद 1830–70 का काल कारखाना मजदूरों की ओर बार–बार तरह–तरह के विरोध प्रदर्शन के लिए प्रसिद्ध है। उन्होंने हड़तालें कीं और जहाँ मजदूर संघों की राज्य की ओर से अनुमति मिली हुई थी, वहाँ वे इन संघों में शामिल भी हुए। इस काल में अनेक मजदूर चोरी करते थे, बार–बार नौकरी बदल देते थे, शराब पीते थे, धर्म की निंदा करते थे, या तरह–तरह के छोटे–मोटे अपराध करते थे। 1848 से पहले ये राजनीतिक विरोध प्रकट करने के लिए प्रसिद्ध थे। इसके बाद जब यूरोप में सुख–समृद्धि का बोलबाला हो गया तब ये रहन–सहन और काम की हालतों पर असंतोष प्रकट करने के लिए मजदूर संघों के सदस्य बने।

सामाजिक परिवर्तन के अन्य पहलू

धर्म– इस काल में सामाजिक शक्ति के रूप में धर्म का महत्व कम होता गया। चर्च को अभिजात वर्ग का पूर्ण समर्थन प्राप्त था और सामान्य रूप से किसानों पर भी चर्च का प्रभाव था। किन्तु आंशिक रूप से विज्ञान और धर्म के समकालीन संघर्ष और 1859 में विकास के सिद्धान्त के लोकप्रिय हो जाने के कारण मध्य वर्ग पर चर्च का प्रभाव कम हो गया। तो भी मध्य वर्ग के अनेक व्यक्ति चर्च के अधिवेशनों में शामिल होते रहे। उनकी आर्थिक दशा पहले से अच्छी हो गई किन्तु धर्मनेताओं का पाप और मृत्यु के बाद जीवन के सिद्धान्तों पर बल देना उनके हितों के विरुद्ध था। मध्य वर्ग के लोग नहीं चाहते थे कि राज्य ईसाई धर्म के किसी एक संप्रदाय को राज्य का धर्म घोषित करे।

NOTES

3.6 सारांश

औद्योगिक क्रांति का अभिप्राय उन परिवर्तनों से है जिन्होंने यह संभव कर दिया कि मनुष्य उत्पादन के प्राचीन उपायों को त्यागकर बड़े पैमाने पर विशाल कारखानों में वस्तुओं का उत्पादन कर सकेगा।

3.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

दीर्घोत्तरीय प्रश्न

(1) औद्योगिक क्रांति से क्या आशय है?

(2) औद्योगिक क्रांति सर्वप्रथम इंग्लैण्ड में ही क्यों हुई? कारण बताइये।

लघु उत्तरीय प्रश्न

(3) औद्योगिक क्रांति से विभिन्न क्षेत्रों में हुए परिवर्तनों का वर्णन कीजिये।

(5) औद्योगिक क्रांति के प्रभावों का मूल्यांकन कीजिये।

विकल्प

1. टेलीफोन का अविष्कार किसने किया–

   (अ) मार्कवेल (ब) ग्राहम वैल (स) रोबर्ट (द) हेनर कोर्ट

2. टेलीफोन का अविष्कार कब किया–

   (अ) 1886 (ब) 1870 (स) 1860 (द) 1889

उत्तर 1. (ब), 2. (अ)

अपनी प्रगति की जाँच करें
Test your Progress

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

विश्व इतिहास (18वीं, 19वीं सदी – डॉ. संजीव जैन, कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल)

●●●

अध्याय-4 अमेरिका का स्वतंत्रता युद्ध

(THE AMERICAN WAR OF INDEPENDENCE) {1776}

इकाई की रूपरेखा (इकाई-2)

4.0 उद्देश्य
4.1 परिचय
4.2 अमेरिका के स्वतंत्रता युद्ध की पृष्ठभूमि
4.3 उपनिवेशों की भौगोलिक स्थिति
4.4 उपनिवेशों की संस्कृति
4.5 अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम के कारण
4.6 स्वतंत्रता संग्राम की घटनाएँ
4.7 प्रथम महाद्वीपीय अंग्रेज
4.8 द्वितीय महाद्वीपीय अंग्रेज
4.9 स्वतंत्रता की घोषणा
4.10 युद्ध की प्रमुख घटनाएँ
4.11 पेरिस की संधि
4.12 अमेरिका की स्वतंत्रता संग्राम का प्रभाव
4.13 सारांश
4.14 अभ्यास प्रश्न
4.15 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4.0 उद्देश्य

इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे कि–

1. अमेरिका के स्वतंत्रता युद्ध की पृष्ठभूमि ज्ञात कर सकेंगे।
2. उपनिवेशों की आन्तरिक स्थिति ज्ञात कर सकेंगे।
3. तत्कालीन परस्थिति एवं सामाजिक व्यवस्था की जानकारी ज्ञात कर सकेंगे।
4. अमेरिका स्वतंत्रता संग्राम के कारण एवं घटनाओं की जानकारी पा सकेंगे।

4.1 परिचय

विश्व इतिहास में अमेरिका के स्वतंत्रता संग्राम का विशेष स्थान है। इस स्वतंत्रता युद्ध के द्वारा प्रथम बार यूरोपियन उपनिवेशवाद तथा वाणिज्यवाद को चुनौती दी गई। न केवल चुनौती दी गई बल्कि उन्हें परास्त भी किया गया। इस स्वतंत्रता संग्राम द्वारा एक स्वतन्त्र राष्ट्र का जन्म हुआ। 1492 में कोलंबस द्वारा अमेरिका की खोज की गई। इसके बाद अन्य लोगों ने सम्पूर्ण अमेरिका का पता लगाया तथा उसे **'नई दुनिया'** का नाम दिया।

4.2 अमेरिका के स्वतंत्रता युद्ध की पृष्ठभूमि (BACKGROUND OF THE AMERICAN WAR OF INDEPENDENCE)

NOTES

इसके बाद यूरोप के कई देशों ने अपने–अपने उपनिवेश वहाँ बसा दिये। इंग्लैंड और फ्रांस के उपनिवेश उत्तरी अमेरिका में स्थित थे और स्पेन का अधिकार ब्राजील को छोड़कर सम्पूर्ण दक्षिणी अमेरिका पर था। फ्रांस और इंग्लैंड के आपसी हित दोनों के उपनिवेशों अर्थात् भारत तथा अमेरिका में भी टकराते थे। पेरिस की संधि द्वारा अमेरिका के तेरह उपनिवेशों पर इंग्लैंड का अधिकार स्वीकृत हो गया। ये तेरह उपनिवेश इस प्रकार थे–

(1)	न्यू हेम्पशायर	(2)	रोड आइलैंड
(3)	न्यूयार्क	(4)	न्यूजर्सी
(5)	मेसाचूसेट्स	(6)	कनेक्टिकट
(7)	डेलावेयर	(8)	मेरीलैंड
(9)	वर्जीनिया	(10)	उत्तरी केरोलिना
(11)	दक्षिणी केरोलिना	(12)	पेनसिलवेनिया
(13)	जार्जिया।		

क्षेत्रफल की दृष्टि से संयुक्त राज्य अमेरिका विश्व के बड़े राज्यों में है। जिस समय इसकी स्थापना हुई थी, उस समय इसका क्षेत्रफल 3,15,065 वर्गमील था और इसमें 13 राज्य थे। आज इसमें 50 राज्य हैं और इसका क्षेत्रफल 36,15,522 वर्गमील है। इस प्रभुत्वशाली देश के स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास इंग्लैण्ड के आधिपत्य से मुक्ति का संघर्षपूर्ण इतिहास है, परन्तु यह अविस्मरणीय संघर्ष इतिहास के अन्य जुझारू संघर्षों से भिन्न था। यह संघर्ष न तो घोर गरीबी के कारण उत्पन्न असन्तोष का परिणाम था और न सामन्ती व्यवस्था के बर्बर अत्याचारों के विरुद्ध एकजुट होने का परिणाम। वस्तुतः यह शानदार संघर्ष, अमेरिकी उपनिवेशों द्वारा इंग्लैण्ड की इच्छा के विरुद्ध स्वतंत्रता कायम करने के लिए था। इंग्लैण्ड द्वारा अपनाई गई कठोर औपनिवेशिक नीति के विरुद्ध था। इस दृष्टि से विश्व इतिहास में अमेरिका की क्रांति एक विशिष्ट घटना है।

बनारसी प्रसाद सक्सेना के अनुसार – "अमेरिका में उपनिवेश स्थापना तथा उसके विस्तार के पीछे असंतोष, स्वधर्म और स्वतंत्रता की प्रेरणाएँ थीं तथा यही तत्व उसकी उन्नति को निरंतर ओज प्रदान करते रहे। जब अंततोगत्वा इंग्लैंड से संबंध–विच्छेद की नौबत आई, तब इन्हीं मौलिक तत्वों का प्राबल्य रहा। असंतोष के समाधान के प्रयास ने ही क्रांति का रूप धारण किया और जब क्रांति की समाप्ति हो गई, तभी देशवासियों ने दम लिया, परंतु यह विचार कि यह क्रांति एकदम ही उबल पड़ी, न तो तर्कसंगत ही है और न इतिहास की मान्यताओं से ही मेल खाता है। इसके मूल कारणों की खोज उस देश के बहुमुखी विकास में ही करनी होगी।"

अमेरिका की खोज एक आकस्मिक घटना थी। क्रिस्टोफर कोलम्बस द्वारा इसकी खोज एक युगान्तकारी घटना के रूप में परिणत हुई। अमेरिका का नामकरण अमेरिगो वेस्पुची नामक इटालियन नाविक के नाम पर हुआ, जिसने 1501 ई. में ब्राजील तक की यात्रा की थी। यद्यपि स्पेन, दक्षिण अमेरिका के ऊपर क्षेत्र में रहने वाली दो सभ्य जातियों– एजतेक तथा इंका, जो क्रमशः मैक्सिको तथा पेरू में निवास करती थीं, का नाश कर लूटने में अग्रणी रहा, किन्तु इंग्लैण्ड, हॉलैण्ड, स्वीडन और पुर्तगाल की भी इस नये प्रदेश में रुचि कम नहीं रही। अमेरिकी सोने–चाँदी की प्राप्ति को लेकर स्पेन और इंग्लैण्ड के मध्य हुए सोलहवीं शताब्दी के भीषण जलयुद्ध में स्पेन की पराजय हुई, जिससे स्पेन उत्तरी अमेरिका के तट के आधिपत्य के लिए अंग्रेजों के मुकाबले खड़ा न रह सका। रानी एलिजाबेथ प्रथम के खुले समर्थन से इंग्लैण्ड ने अमेरिका में बस्तियाँ

बसाना शुरू कर दिया। 1606 ई. में इंग्लैण्ड के राजा जेम्स प्रथम ने वहाँ की दो कम्पनियों, क्रमशः लन्दन एवं प्लीमथ को कुछ निश्चित क्षेत्रों में उपनिवेश बसाने एवं व्यापार करने की अनुमति दे दी। 1607 ई. में कप्तान क्रिस्टोफर न्यू फोर्ट के नेतृत्व में 120 अंग्रेजों ने वर्जीनिया क्षेत्र की जेम्स नदी के किनारे 'जेम्स टाउन' नामक बस्ती की स्थापन की। यह संयुक्त राज्य अमेरिका में पहली अंग्रेज बस्ती थी, जो लन्दन कम्पनी के द्वारा स्थापित की गयी थी। यद्यपि इस पहली बस्ती के लोगों को काफी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा तथा कुछ ही दिनों में उनमें से तीन–चौथाई लोग मर भी गये, परन्तु तम्बाकू की व्यापारिक सम्भावनाओं ने शेष लोगों को जमे रहने की प्रेरणा दी। यह स्मरण रहे कि जेम्स टाउन से सबसे पहले तम्बाकू से लदा हुआ जहाज 1614 ई. में इंग्लैण्ड पहुँचा। जेम्स टाउन की स्थापना के बाद अंग्रेजों ने धीरे–धीरे अन्य बस्तियाँ कायम कीं।

4.3 उपनिवेशों की भौगोलिक स्थिति

अमेरिकी उपनिवेशों को भौगोलिक दृष्टि से तीन भागों में बाँटा जा सकता है– उत्तरी, मध्य और दक्षिणी।

(1) **उत्तरी उपनिवेशों में जैसे–** मेसाचूसेट्स, न्यू हैम्पशायर, रोड टापू आदि थे। ये उपनिवेश पहाड़ी और बर्फीले प्रदेश होने के कारण खेती के लिए उपयुक्त नहीं थे। यहाँ से इंग्लैण्ड को मुख्यतः लकड़ी, मछली और वन सम्पत्ति प्राप्त होती थी। स्वतंत्रता के पूर्व स्वयं इंग्लैण्ड के अधिकांश जहाज यहीं निर्मित होते थे।

(2) मध्य उपनिवेशों में न्यूयार्क, न्यूजर्सी और मेरीलैण्ड आदि थे। यहाँ के उद्योग जिनमें शराब और चीनी उद्योग प्रमुख थे, प्रगतिशील अवस्था में थे।

(3) दक्षिणी उपनिवेशों में उत्तरी केरोलिना, दक्षिणी केरोलिना, वर्जीनिया आदि थे। यहाँ की जलवायु गर्म होने के कारण ये प्रदेश खेती के लिए उपयुक्त थे। यहाँ प्रमुखतः अनाज, गन्ना, तम्बाकू तथा कपास का उत्पादन होता था।

यूरोपीय लोगों के अमेरिका में बसने के कारण

अमेरिका उपनिवेशों में इंग्लैण्ड या यूरोप के सामान्य नागरिकों के लिए 5,000 कि.मी. चौड़े प्रशांत महासागर को पार करना काफी कठिन कार्य था। लकड़ी के जहाजों में 2–3 महीने की इस यात्रा में अपर्याप्त भोजन, बीमारी और तूफान से बचकर कुछ ही लोग अमेरिका पहुँचते थे और वहाँ पहुँचकर भी वहाँ के मूल निवासी रेड–इण्डियनों तथा प्रकृति के कोप का उन्हें सामना करना पड़ता था, जिसमें दोनों पक्षों के व्यक्ति मारे जाते थे। इन संघर्षों के अतिरिक्त वहाँ की भूमि भी घने जंगलों और लम्बी घास से पटी हुई थी। इस भूमि को खेती योग्य बनाना आसान कार्य नहीं था। हजारों आदमियों के इतनी लम्बी दूरी पर जाकर बसने के उदाहरण इतिहास में कम ही मिलते हैं। प्रश्न उठता है कि फिर यूरोपीय यहाँ आकर क्यों बसे? इस प्रश्न का संक्षिप्त उत्तर निम्न प्रकार समझा जा सकता है–

(1) यूरोप में निरन्तर होने वाले जन–संहारक युद्धों से मुक्ति की आशा ने प्रव्रजन के लिए प्रेरित किया।

(2) निर्धन लोगों को दास बनाकर युद्धों में झोंकने के लिए अमीरों एवं सत्ताधारियों के हाथों बेच दिया जाता था। इससे बचने के लिए उन्होंने अमेरिकी उपनिवेशों में बसना उपयुक्त समझा।

(3) अधिकांश यूरोपीय उत्प्रवासियों ने अपना घर इसलिए छोड़ा था कि उन्हें वहाँ अधिक आर्थिक लाभ के अवसर मिलेंगे। इस प्रेरणा को बहुधा धार्मिक स्वतंत्रता की लालसा अथवा राजनीतिक उत्पीडन से बचकर भागने के दृढ़ संकल्प ने और भी बल दिया।

NOTES

(4) धार्मिक तथा साम्प्रदायिक अत्याचार एवं उत्पीड़न से मुक्त होकर स्वतंत्र रूप से वे ईश्वर की आराधना कर सकेंगे, जहाँ न तो चर्च का दबाव होगा और न ही सरकारी कर्मचारियों का भय। सोलहवीं एवं सत्रहवीं शताब्दियों की धार्मिक उथल–पुथल ने भी बहुत से लोगों को अपना देश छोड़ने के लिए विवश किया।

मेसाचुसेट्स के समीप प्लीमथ उपनिवेश की स्थापना करने वाले प्यूरिटन अंग्रेज ही थे, जो अपनी धार्मिक स्वतंत्रता के लिए जेम्स प्रथम के समय में इंग्लैण्ड से अमेरिका आकर बसे थे। क्वेकर सम्प्रदाय के अनुयायी विलियम पेन तथा उसके साथी क्वेकरों ने धार्मिक दृष्टि से ही पेनसिलवेनिया की स्थापना की। उपनिवेशों के विभिन्न धर्मावलम्बियों में धार्मिक मतभेद होते हुए भी बस्तियाँ स्थापित हुईं, उनकी पृष्ठभूमि में धार्मिक असंतोष का कुछ न कुछ अंश अवश्य था।

(5) स्वदेश छोड़कर अमेरिका में बसने का एक अन्य कारण राजनीतिक था। चार्ल्स प्रथम के शासन काल में स्टुअर्ट वंश समर्थक गृह युद्ध में पराजित होकर अमेरिका चले गये। जर्मन राजाओं की निरंकुशता ने बहुत से जर्मनों को उपनिवेशों में बसने को प्रेरित किया।

4.4 उपनिवेशों की संस्कृति

अमेरिका के उपनिवेशों में एक मिश्रित संस्कृति का जन्म हुआ, इसके कारण थे–

(1) यहाँ आकर बसने वाले लोग यूरोप के विभिन्न प्रदेशों से आये थे, जो विभिन्न सम्प्रदायों, यथा– एंग्लिकन, प्यूरिटन, क्वेकर, लूथरवाद, प्रेसबीटेरियन आदि को मानने वाले थे।

(2) इनके भिन्न–भिन्न शासन संगठन एवं कानून थे।

(3) जीवन–यापन के साधन अलग–अलग थे।

अतः यहाँ एक ऐसी संस्कृति का जन्म हुआ, जिसमें अनेक तत्त्वों का मूल विद्यमान था। विभिन्न धर्मों, विश्वासों और भिन्न प्रकार के कार्यों को करने पर भी यहाँ के लोगों के सामने एक जैसी समस्याएँ थीं, जिनके लिए उन्हें मिलकर संघर्ष करना था। इस तरह अस्तित्व की भावना ने शनैः–शनैः उनके बीच की खाई को समाप्त कर दिया, जिससे इस धरती पर एक ऐसी संस्कृति उदित हुई, जो यूरोप से मिलती–जुलती होने पर भी अपने में विशिष्ट थी।

क्रांति के पूर्व अमेरिका की स्थिति

उत्तर में मेन से दक्षिण में जार्जिया तक कुल तेरह अंग्रेजी बस्तियाँ थीं। इन उपनिवेशों में 1713 ई. से 1763 ई. के बीच जनसंख्या में चार गुना वृद्धि हुई। इसकी तुलना में क्षेत्रफल में तीन गुना बढ़ोतरी हुई, जो कि बस्तीवासियों के पश्चिम की ओर अग्रसर होने से हुई। 1713 ई. से 1763 ई. के बीच बड़ी संख्या में अंग्रेज, स्कॉट, जर्मन तथा फ्रेंच अप्रवासी अमेरिका की बस्तियों में जाकर बसे। ये वाणिज्यवाद के महत्त्वपूर्ण वर्ष थे। अमेरिका के सभी उत्पादनों, यथा–लकड़ी, चमड़ा, तम्बाकू, चीनी, ताँबा, मछली आदि की कीमतें इंग्लैण्ड तथा यूरोप में तेजी से बढ़ीं, जिससे अमेरिकी लोग समृद्ध हुए, यद्यपि इंग्लैण्ड की व्यापारिक नीति लगातार बाधाएँ खड़ी करती रहीं। 50 वर्षों की लगातार खुशहाली के कारण ही अमेरिकी तत्कालीन विश्व ऊँचा जीवन स्तर बना पाये। इंग्लैण्ड की यात्रा पर जाना अब एक आम बात बन गई थी। विदेशों से पुस्तकों का आयात बहुत बड़े स्तर पर किया जाने लगा था और कई पत्र–पत्रिकायें अमेरिका में भी छपने लगी थीं। पत्रकारिता से अमेरिकियों का लगाव पैदा हो चुका था। कुछ पत्रों, जैसे–गजट, न्यूयार्क रिपोर्टर आदि की यूरोप तक में माँग हो चुकी थी। बोस्टन व अनापोलिस–जैसे नगरों में इंग्लैण्ड की तुलना में अधिक सुन्दर भवनों का निर्माण किया। कई प्रसिद्ध अमेरिकी विश्वविद्यालय, जैसे–प्रिंस्टन, येल, डाट माउथ, ब्राउन इत्यादि क्रांति से पूर्व स्थापित हो चुके थे। क्रांति काल के महत्त्वपूर्ण अमेरिकी नगर–बोस्टन, न्यूयार्क, जेम्स टाउन, चार्ल्स टाउन, सवानाह, फिलाडेल्फिया आदि थे। इन नगरों ने क्रांति में अहम भूमिका निभाई।

4.5 अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम के कारण (CAUSES OF THE AMERICAN WAR OF INDEPENDENCE)

NOTES

यह सही है कि अमेरिका की क्रांति का तात्कालिक कारण उपनिवेशवासियों पर कुछ अनुचित करों का लगाया जाना था, लेकिन इसके मूल कारण कुछ और ही थे। वस्तुतः अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अमेरिकी बस्तियों एवं ग्रेट ब्रिटेन में एक नये दृष्टिकोण के विकास ने अमेरिका की क्रांति को अवक्षिप्त होने का अवसर प्रदान किया। एक ओर अमेरिकी लोग ब्रिटेन के प्रभुत्व के अन्तर्गत अपनी अधीनस्थ स्थिति को स्वीकार करने को तैयार नहीं थे, दूसरी ओर ब्रिटिश सरकार ने 1863 ई. के पश्चात् ऐसी नीतियों की अभिकल्पना कर उसका अनुसरण किया, जिससे अमेरिकी उपनिवेशों पर पूर्व की अपेक्षा अधिक मजबूत शिकंजा स्थापित हो सके। फलतः साम्राज्यवादी ब्रिटेन एवं उपनिवेशी अमेरिकी राज्यों में संघर्ष अवश्यम्भावी हो गया। अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम के कारणों को दो भागों में बाँटकर देखा जाता है –

(A) आधारभूत कारण (B) तात्कालिक कारण

(A) आधारभूत कारण

(1) **क्षुब्ध व्यक्तियों द्वारा उपनिवेश की स्थापना :–** अमेरिका के स्वतंत्रता संग्राम के आधारभूत कारण इंग्लैंड की धर्मांध नीति से नाराज होकर प्यूरिटन लोगों ने यहाँ पर उद्योग और वाणिज्य व्यापार को विकसित किया था। अंग्रेजी सरकार द्वारा उन्हें व्यापारिक कम्पनियों की तरह कोई सहायता नहीं मिली थी, अतः यह आवश्यक नहीं था कि वे इंग्लैण्ड के भक्त बनकर रहते। जब इंग्लैण्ड की सरकार ने उन्हें अपने नियंत्रण में लाने की कोशिश की तो स्वतंत्रता प्रेमी उपनिवेशवासियों का विक्षुब्ध हो उठना स्वाभाविक था।

(2) **स्वशासन और इंग्लैंड की वैधानिक परम्परा :–** अंग्रेजी अमेरिकन उपनिवेशों में स्वशासन की परम्परा थी, परन्तु प्रत्येक उपनिवेश में प्रतिनिधि सभा की व्यवस्था थी, जिसका शासन में प्रभाव था। वे आन्तरिक मामलों में वस्तुतः स्वतंत्र थे। इंग्लैंड की प्रजातांत्रिक परम्परा में पले उपनिवेशवासी उत्तरदायी शासन के गुणों का उपभोग करना चाहते थे।

(3) **नौ परिवहन अधिनियम 1651 :–** नौ परिवहन अधिनियम **'नेविगेशन एक्ट'** के अनुसार इंग्लैंड और उपनिवेशों के बीच अथवा यूरोप के अन्य देशों के साथ ब्रिटिश जहाजों के द्वारा ही माल ढोया जा सकता था। अमेरिकन व्यापार की प्रगति के मार्ग में नेविगेशन एक्ट एक बहुत बड़ा रोड़ा था। दूषित वाणिज्य प्रणाली असंतोष का एक प्रधान कारण था।

(4) **व्यापार पर ब्रिटिश नियंत्रण : ट्रेड–एक्ट्स :–** व्यापार संबंधी कानून ट्रेड एक्ट्स कहलाता था। इससे उपनिवेशों का शोषण होता था और उनके आर्थिक विकास में प्रतिबन्ध लगता था। उपनिवेशों का कच्चा माल इंग्लैंड भेजा जाता था और वहाँ से तैयार माल उपनिवेशों को खरीदना पड़ता था। कुछ वस्तुएँ जैसे – चावल, तम्बाकू, लोहा, लकड़ी, ऊन, चमड़ा आदि को केवल इंग्लैंड भेजने के लिए ही सुरक्षित रखा जाता था। अमेरिका में ऊनी कपड़ा तैयार करने तथा लोहे के कल–कारखाने नहीं खोले जा सकते थे। सन् 1733 ई. के कानून के अनुसार अमेरिका को गैर ब्रिटिश उपनिवेशों को बिना कर दिये व्यापार की अनुमति नहीं थी। सन् 1699 ई. में एक कानून केटारा पार्लियामेंट ने उपनिवेश से ऊनी माल को बाहर भेजना बंद कर दिया था। सन् 1732 ई. के एक कानून के अनुसार अमेरिका से टोष भेजने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। इस प्रकार इंग्लैंड की व्यापारवादी नीति से अमेरिका उपनिवेशों के आर्थिक हितों को भारी नुकसान हो रहा था।

(5) **किसानों की खराब स्थिति :–** व्यापारिक प्रतिबन्धों के कारण किसानों की दशा भी दिन–प्रतिदिन बिगड़ती जा रही थी। उन्हें उनके उत्पादनों का समुचित मूल्य नहीं मिल रहा था।

NOTES

(6) **मध्यवर्ग का उदय :–** अमेरिका के सचेष्ट मध्यवर्गीय लोग यही बात अच्छी तरह समझते थे कि व्यापारिक प्रतिबन्ध को हटाए बिना अमेरिका का स्वतंत्र आर्थिक विकास संभव नहीं था। मध्यवर्ग ने अपनी शक्ति संगठित करके अमेरिकी समाज में महत्वपूर्ण स्थान बना लिया था। सर्वप्रथम मध्यमवर्ग ने ही कानूनों की अवहेलना प्रारम्भ की और राजनैतिक स्वतन्त्रता पाने के लिए प्रयत्नशील हो गए।

(7) **बौद्धिक जागृति :–** अमेरिकी क्रांति के कारणों में एक महत्वपूर्ण बौद्धिक पक्ष भी है। समकालीन अमेरिकी दार्शनिक **जेम्स ओटिस** ने अंग्रेजी नीतियों पर प्रहार करने का क्रम 1756 में ही प्रारम्भ कर दिया था। उन्होंने लिखा **"इतिहास में शुरू से लेकर आज तक सभी राजा दमनकारी होते आए, परन्तु इससे दमन करना एक अधिकार तो नहीं बन जाता।"** ओटिस ने **"स्टैम्प एक्ट"** से पहले यह अभियान चलाया कि इंग्लैंड की संसद को ऐसे कानून बनाने का कोई अधिकार नहीं जो प्राकृतिक कानूनों के विरुद्ध जाते हों। बैंजामिन फ्रेंकलिन के समाचार–पत्र गजट ने अमेरिका में राजनीतिक चेतना पैदा करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। 1756 से 1766 के बीच कई अन्य महत्वपूर्ण राजनीतिक पुस्तिकाएँ प्रकाशित हुईं। जैसे 1765 में स्टीफन हाफकिंस (रोड आइलैंड के गवर्नर कृत) **दि राइट्स ऑफ दि कालोनीज एग्जासिण्डे 1769 में,** सैमुअल ऐडम्स कृत **'राइट्स ऑफ कालोनिस्टम'** आदि। **सैमुअल** एडम्स के अथक **परिश्रम के** फलस्वरूप उपनिवेशों में एकता आयी। अन्य पुस्तिका लेखकों में प्रमुख थे – वर्जीनिया के **पेट्रिक हेनरी,** न्यूयार्क के **आइजक सिथरस** तथा **जान लैम्ब** और साउथ कैरोलीना के **क्रिस्टोफर गैडस्डन।** इंग्लैंड में भी कुछ ऐसे विचारक थे जो महसूस करते थे कि अमेरिका के साथ सौतेला व्यवहार किया जा रहा था। **एडमंड बर्क** ने संसद तक में इस व्यवहार के प्रति रोष प्रकट किया। अमेरिकियों ने अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध संघर्ष करने के उद्देश्य से **'स्वाधीनता के पुत्र'** एवं **'स्वाधीनता की पुत्रियाँ'** नामक संस्थाओं की भी स्थापना की।

(8) **उदार अमेरिकी समाज :–** अमेरिका में जिस समाज का निर्माण हुआ वह इंग्लैण्ड या अन्य यूरोपीय समाज से सर्वथा भिन्न था। अमेरिकी समाज नया, सरल और स्वाभाविक था। जबकि अंग्रेजी समाज पुराना, रूढ़ियों से भरा व आडम्बरपूर्ण था। अमेरिकी समाज में मेहनत, साहस व विपदाओं को सहने की आवश्यकता थी। जबकि इंग्लैड में सामाजिक स्तर, पैदाइश प्रथाओं, शिक्षा आदि से प्राप्त होता था। दोनों समाजों में चर्च, राजनीति, कानून आदि सभी विषयों पर परिगाषाओं को लेकर गहरा गतगेद था। उपनिवेश में रहने वाले लोग अधिकांशतः शिल्पी, व्यापारी व किसान थे। इंग्लैंड से आने के कारण उनमें स्वतंत्रता की भावना अधिक थी।

(9) **राष्ट्रीय भावना का विकास :–** अमेरिका वासी एक तरह का राष्ट्र बनते जा रहे थे और कोई भी राष्ट्र अधिक समय तक यह स्वीकार नहीं कर सकता कि उस पर दूर बैठा शासक मनमाने ढंग से शासन करे।

(10) **सप्तवर्षीय युद्ध का प्रभाव :–** सप्तवर्षीय युद्ध ने अमेरिकन उपनिवेशों में नई जागृति निर्मित की। इस युद्ध के फलस्वरूप अंग्रेजी उपनिवेशों पर फ्रांसीसी खतरे का भार नहीं रहा। तत्पश्चात् वे इंग्लैंड से लोहा लेने में समर्थ हो गए। सप्तवर्षीय युद्ध की समाप्ति के बाद उपनिवेशवासियों को पश्चिम की ओर बढ़ने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया, इससे उनकी क्रोधाग्नि भड़क उठी। सप्तवर्षीय युद्ध में इंग्लैण्ड का कर्ज बढ़ गया था और सेना का खर्च भी था। इसकी पूर्ति हेतु उपनिवेशवासियों से कहा गया कि नये कर के रूप में सेना का भार वहन करें। इसका अमेरिका में इतना भयंकर विरोध हुआ कि यह योजना ही स्थगित कर दी गई।

(11) **ग्रेनविल की उत्तेजकं नीतियाँ :–** सन् 1763 में जार्ज ग्रेनविल इंग्लैण्ड का प्रधानमंत्री हुआ। उसके मंत्रित्वकाल में कुछ ऐसे कार्य हुए जिन्होंने सुलगती आग में घी का काम किया। ग्रेनविल को जब यह ज्ञात हुआ कि अमेरिका से सिर्फ 2000 पौण्ड की ही वार्षिक आय होती

है, तो उसने प्रचलित कानूनों को एकत्र कर उन्हें बदलने की चेष्टा की। सर्वप्रथम चोर बाजारी रोकने के उद्देश्य से उसने व्यापार के नियमों को कड़ा किया और संबंधित मामलों की जाँच के लिए **एडमिरल्टी कोर्ट** की स्थापना की। ग्रेनविल की नीति से लोग घबरा गए, क्योंकि इन कानूनों को अब तक सख्ती से पालन करने की कोई कोशिश अंग्रेज सरकार ने नहीं की थी। 1764 में ग्रेनविल सरकार ने शीरे, रम व चीनी पर सीमा शुल्क बढ़ाया। रेशम, काफी और कुछ अन्य वस्तुओं पर भी कर लगाने का प्रयास किया गया। उपनिवेशवासियों ने ग्रेनविल की नीति को पसन्द नहीं किया। मिसीसिपी नदी के पूरब में कुछ जमीन अंग्रेजों ने फ्रांस से जीत ली थी। अंग्रेजों और उपनिवेशवादी दोनों इस भू–भाग को अपनी सम्पत्ति समझते थे। ग्रेनविल ने एक घोषणा द्वारा इन भू–प्रदेशों को रेड इंडियनों के लिए सुरक्षित कर दिया। उपनिवेशवासियों ने इसे अपने विकास की स्वतंत्रता में बाधक माना तथा अपने अधिकारों का अतिक्रमण समझा और वे ब्रिटिश सरकार के प्रति सशंकित हो उठे। ग्रेनविल ने धन आवश्यकता की पूर्ति हेतु उपनिवेशों पर स्टाम्प एक्ट लगाया जो कि क्रांति के तात्कालिक कारणों में एक महत्वपूर्ण कारण सिद्ध हुआ।

(B) तात्कालिक कारण

1. **सेना का तैनात किया जाना और स्टाम्प अधिनियम (1764) :–** 1763 में 10 हजार की एक सेना उत्तरी अमेरिका में तैनात की गयी। वह चाहता था कि इस पर होने वाले खर्च का कुछ हिस्सा उपनिवेश भी दें। इसी व्यय को पूरा करने के लिए जो कर लगाए गये **'स्टाम्प एक्ट'** उनमें विशेष घृणित सिद्ध हुआ। 1764 में स्टाम्प एक्ट योजना के अनुसार अदालती स्टेम्प पेपर का प्रयोग प्रारम्भ किया गया जो कि सभी न्यायिक व गैर न्यायिक इकरारनामों तथा समाचार–पत्रों आदि के लिए अनिवार्य बना दिया गया। ग्रेनविल को उम्मीद थी इस योजना का विरोध नहीं होगा क्योंकि इस कर का प्रति व्यक्ति बोझ बहुत कम पड़ता था। लेकिन इस योजना का अमेरिका में विरोध का कारण इसका आर्थिक बोझ न होकर सैद्धांतिक बोझ था। अमेरिकी यह मानते थे कि इंग्लैण्ड की सरकार को बाहरी कर लगाने का अधिकार तो है परन्तु आंतरिक कर केवल स्थानीय मण्डल ही लगा सकते हैं। अमेरिका में एक नया नारा उठा **'बिना प्रतिनिधित्व के कर नहीं'** यानी कि इंग्लैण्ड की संसद को, जिसमें कोई अमेरिकी नहीं बैठता था, अमेरिका पर कर लगाने का अधिकार नहीं था। स्टेम्प एक्ट ने बिजली की तेजी से सभी वर्गों को एक कर दिया और इन सबका समान शत्रु था इंग्लैंड का नया कर सिद्धांत और यही एकता का सूत्र अमेरिकी क्रांति का कर्णधार बना।

2. **रॉकिंघम की घोषणा :–** 1765 में ग्रेनविल सरकार के पतन के बाद इंग्लैंड में रॉकिंघम ने सरकार का गठन किया। रॉकिंघम ने यह घोषणा की थी कि इंग्लैड की संसद को अमेरिका पर कर लगाने का पूरा–पूरा अधिकार था। इस घोषणा पर भी अमेरिका में तीव्र प्रतिक्रिया हुई।

3. **टाउनशैड की और कर लगाने की योजना :–** रॉकिंघम सरकार के पतन के बाद विलियम पिट ने सरकार बनाई जिसमें चार्ल्स टाउनशैड अर्थ मंत्री था। टाउनशैड ने अनुमान लगाया कि अमेरिकी आंतरिक करों का विरोध तो करते थे परन्तु बाहरी कर उन्हें स्वीकार थे। अतः उसने 1767 में ऐसी पाँच वस्तुओं (चाय, शीशा, कागज, सिक्का धातु और रंग) पर सीमा शुल्क लगाया, जिन्हें अमेरिकी इंग्लैण्ड से आयात करते थे। अमेरिकियों ने इन्हें भी देने से इंकार कर दिया, क्योंकि अब उन्होंने यह सिद्धांत बना लिया कि वे अंग्रेजी संसद को किसी भी प्रकार का कर नहीं देंगे। अमेरिका में कई दंगे भड़क उठे।

4. **लार्ड नार्थ का चाय पर कर :–** नये प्रधानमंत्री लार्ड नार्थ ने पाँच में से केवल चाय को छोड़कर बाकी चार पर से कर हटा लेने की घोषणा की, किन्तु अमेरिकी बस्तियों ने **"आयात विरोधी समझौता"** कर लिया और इंग्लैण्ड से आई किसी भी वस्तु का प्रयोग न करने का फैसला भी किया। साथ ही अंग्रेजी सामान के सार्वजनिक बहिष्कार का कार्यक्रम जोरों से चला दिया गया। तस्करी विरोधी अभियान में लगे शाही सेना के जहाज **"गास्पी"** को जला

NOTES

दिया गया। लार्ड नार्थ ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी को वित्तीय संकट से उबारने के लिए 1773 में चाय अधिनियम पारित करवा दिया। इस अधिनियम के अनुसार कंपनी अपनी चाय सीधे अमेरिका में बेच सकती थी अब पहले की तरह कंपनी के जहाजों की ब्रिटिश बन्दरगाहों पर आने व चुंगी देने की आवश्यकता नहीं थी। इस चाय एक्ट का स्पष्ट उद्देश्य था कि इससे अमेरिका के लोगों को चाय सस्ती मिलेगी और कम्पनी भी घाटे से बच जायेगी, परन्तु कम्पनी के एकाधिकार को अमेरिकनों ने अपनी स्वतंत्रता पर आघात समझा। कुछ व्यापारियों के तस्करों से सम्बन्ध होने तथा उनके पास चाय का बहुत स्टाक होने से भी वे कम्पनी की सस्ती चाय के विरुद्ध थे।

5. **बोस्टन की टी–पार्टी** :– प्यूरिटन बस्ती मेसाचुसेट्स के बन्दरगाह बोस्टन में ईस्ट इण्डिया कंपनी की चाय के विरोध का स्वर कुछ ज्यादा ही उग्र था। 16 दिसम्बर, 1773 को **सैमुअल एडम्स** के नेतृत्व में कुछ अमेरिकी कुलियों का भेष धरकर बोस्टन बन्दरगाह में खड़े ईस्ट इण्डिया कंपनी के जहाजों पर चढ़ गए और उन्होंने चाय की 343 पेटियाँ समुद्र में फेंक दीं। इस घटना को बोस्टन की टी–पार्टी कहा जाता है। गास्पी को जलाने के बाद यह दूसरी बड़ी उत्तेजक कार्यवाही थी।

6. **इंग्लैंड की दमनकारी प्रतिक्रिया** :– बोस्टन टी–पार्टी इस घटना को एक चुनौती के रूप में लिया। यह निर्णय लिया गया कि न केवल बोस्टन बल्कि पूरे मेसाचुसेट्स को सजा दी जाए। स्थानीय शासन भंग कर दिया गया। मुकदमे अमेरिकी न्यायालय से इंग्लैंड स्थानांतरित कर दिए गए। बोस्टन बंदरगाह को बन्द कर दिया गया। एक सैनिक अधिकारी 'गेज' को वहाँ का गवर्नर बना दिया गया और अंग्रेज सैनिकों को लोगों के घरों में बैठा दिया गया।

7. **जार्ज तृतीय का उत्तरदायित्व** :– अमेरिका में स्वतंत्रता संग्राम के लिए इंग्लैड का राजा जार्ज तृतीय काफी हद तक जिम्मेदार था। व्यक्तिगत शासन कायम करने की उसकी इच्छा ही अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम के लिए विस्फोटक बन गई। जार्ज तृतीय प्रतिबन्ध हटाकर तथा दमन नीति को त्यागकर स्थिति सुधार सकता था, परन्तु अमेरिका के प्रति जार्ज की धारणा अच्छी नहीं थी, वह उन्हें विद्रोही कहा करता था। अतः अमेरिकी स्वतन्त्रता संग्राम में जार्ज की जिम्मेदारियाँ भी कम नहीं थीं।

4.6 स्वतंत्रता संग्राम की घटनाएँ (EVENTS OF THE WAR OF INDEPENDENCE)

अमेरिकन स्वतंत्रता संग्राम के कारणों में हमने देखा कि ब्रिटेन की सरकार अमेरिकियों पर अपनी स्वार्थपूर्ण नीतियाँ थोपना चाहती थी। नए कानूनों को लोगों ने दमनकारी कानूनों की संज्ञा दी। जब अमेरिका में **'असहनीय कानूनों'** के पारित होने की सूचना पहुँची तो लोग उत्तेजित हो गए। इन कानूनों का मुख्य उद्देश्य मेसाचुसेट्स को दबाना था, परन्तु मेसाचुसेट्स का प्रश्न तेरहों उपनिवेशों का संयुक्त प्रश्न बन गया। अब कानूनों के विरोध का प्रश्न राष्ट्रीय प्रश्न बन गया था। वर्जीनिया ने सभी उपनिवेशों के प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन बुलाने का प्रस्ताव किया तो जार्जिया को छोड़कर शेष सभी उपनिवेशों ने अपने प्रतिनिधि भेजे।

4.7 प्रथम महाद्वीपीय कांग्रेस (1774)

सितंबर 1774 में फिलाडेल्फिया में प्रथम महाद्वीपीय कांग्रेस का अधिवेशन प्रारंभ हुआ। इसमें दो दल थे एक उग्रवादी और दूसरा अनुदार पंथियों का। इसमें उग्रवादियों का बहुमत था। इस सम्मेलन में पेनसिलवेनिया के प्रतिनिधि जोसेफ गैलोवे ने महाद्वीपीय उपनिवेशों के संघ की एक योजना प्रस्तुत की। इस योजना में **'ग्रेंड काउंसिल'** की भी व्यवस्था थी। इस कांग्रेस में आन्तरिक मामलों में पूर्ण स्वतंत्रता की माँग की गई। इसमें **'अधिकारों की घोषणा'** का प्रस्ताव पारित किया गया। इस प्रस्ताव में अप्रवासियों के अधिकारों की व्याख्या करते हुए यह कहा गया कि **''जीवन स्वाधीनता एवं संपत्ति तो अंग्रेजी संविधान के सिद्धांतों,**

प्रकृति के अपरिवर्तनशील नियमों तथा आज्ञापत्रों के अंतर्गत तो सुरक्षित हैं ही। पार्लियामेन्ट के टैक्स लगाने के अधिकार तो अस्वीकृत हो ही गए हैं, परंतु बाह्य व्यापार पर नियंत्रण करने के उसके प्राधिकार को मान लिया जाए, वह भी इस शर्त पर कि इस प्रकार के नियंत्रण में बाह्य अथवा आंतरिक कटुता की भावना न हो।"

महाद्वीपीय संस्था – प्रथम कांग्रेस का एक महत्वपूर्ण कार्य था एक महाद्वीपीय संस्था की स्थापना। इसमें शपथ ली गई कि **"1 दिसम्बर, सन् 1774 ई. के बाद से वे किसी भी माल का आयात ब्रिटिश द्वीपों और आयरलैंड से न होने देंगे और 10 सितम्बर, 1975 ई. के बाद से चावल के सिवा अपने यहाँ की कोई भी उत्पादित वस्तु न तो इंग्लैंड ही और न ब्रिटिश वेस्ट इंडीज को जाने देंगे।"**

प्रथम संघर्ष :– मेसाचुसेट्स में सैमुअल एडम्स और उसके साथी नेता जनता को ब्रिटेन के खिलाफ भड़का रहे थे। यहाँ एक क्रांतिकारी शासन का गठन हो गया था तथा सैनिक सामान भी एकत्र होने लगा था। जनरल गेज को यह खबर मिली कि बोस्टन से कुछ मील दूर कांकार्ड नामक ग्राम में सैनिक सामान एकत्र हो रहा है तब उसने इस सामान को हथियाने की योजना बनाई। गेज ने एक सशस्त्र सैनिक टुकड़ी वहाँ भेज दी। जब गेज की सैनिक टुकड़ी लोक्जिगटन पहुँची तो वहाँ कुछ अप्रवासी रास्ता रोके खड़े थे। गेज की सेना के कमांडर ने उन्हें सशस्त्र समर्पण करने को कहा तो उन्होंने इंकार कर दिया। इसी बीच गोली चली और दोनों दल एक दूसरे से भिड़ गए। इसमें कुछ स्वयंसेवक मारे गए तथा कुछ घायल हुए। इस घटना का समाचार ज्यों ही जनता को मिला तो चारों तरफ से स्वयं सेवक दौड़ पड़े। कांकार्ड से वोस्टन लौटती सेना पर स्वयंसेवकों ने हमला किया। इसमें लगभग दो सौ ब्रिटिश सैनिक मारे गए।

बोध प्रश्न

1. अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम के कारण लिखिए?

....

....

....

2. स्वतंत्रता संग्राम की घटनाओं का वर्णन कीजिए?

....

....

....

4.8 द्वितीय महाद्वीपीय कांग्रेस (1775)

उपर्युक्त घटना के लगभग तीन सप्ताह बाद फिलाडेल्फिया में महाद्वीपीय कांग्रेस का दूसरा अधिवेशन प्रारंभ हुआ। इस कांग्रेस में तेरह उपनिवेशों के प्रतिनिधि सम्मिलित थे। ये अधिवेशन 1781 तक चलता रहा। इसमें **थामस जेफरसन** तथा **बेंजामिन फ्रेंकलिन** जैसे नेता भी शामिल थे। इस कांग्रेस ने स्वयंसेवक सेना जो बोस्टन में इकट्ठी हुई थी, उसे अपने अधीन कर लिया तथा उसे संघीय सेना का रूप दिया गया। अन्य उपनिवेशों से भी सेना एकत्र की गई तथा जार्ज वाशिंगटन को संघीय सेना का सेनापति नियुक्त किया गया। अलग–अलग उपनिवेशों की विधानसभाओं को प्रान्तीय सरकार के अधिकार दिए गए। कार्यपालिका सम्बन्धी कार्यों के लिए सुरक्षा एवं निरीक्षण समितियाँ बनाई गई। इस तरह सभी उपनिवेशों में क्रांतिकारी सरकारें स्थापित हो गई।

NOTES

4.9 स्वतन्त्रता की घोषणा (4 July 1776)

ब्रिटेन ने 23 अगस्त, 1775 को एक घोषणा जारी करके अमेरिकी उपनिवेशों को विद्रोही घोषित कर दिया। इस घोषणा के बाद स्वतन्त्रता का संघर्ष प्रारंभ हो गया। जार्ज तृतीय ने विद्रोहों को कुचलने के लिए सैनिक कार्यवाहियाँ बढ़ा दीं। इधर उपनिवेशों तथा संघीय नेताओं को यह महसूस हुआ कि अब स्वतन्त्रता की घोषणा करना अनिवार्य है। 7 जून को महाद्वीपीय कांग्रेस में वर्जीनिया के प्रतिनिधियों ने यह प्रस्ताव प्रस्तुत किया कि **"संयुक्त उपनिवेशों का यह अस्तित्व स्वतंत्र और स्वाधीन रियासतों के अधिकार के आधार पर होना चाहिये और वस्तुतः ऐसा है भी।"** तत्काल ही स्वतंत्रता की घोषणा का मसविदा तैयार करने के लिए एक समिति गठित की गई जिसमें – **थामस जेफरसन, बेंजामिन फेंकलिन, राजर शरमन, जॉन एडम्स और राबर्ट आर. लिविंगस्टोन थे।** इस प्रस्ताव को मूल रूप से तो जेफरसन ने ही तैयार किया था अन्य नेताओं ने तो संशोधन मात्र किया था।

4 जुलाई, 1776 को **'स्वतन्त्रता के घोषणापत्र'** को फिलाडेल्फिया कांग्रेस ने स्वीकृत कर लिया। इस तरह 4 जुलाई को एक नए राष्ट्र का जन्म हुआ। स्वतंत्रता की घोषणा का एक प्रमुख अंश इस प्रकार है –

"इसलिए हम संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रतिनिधि, जो जनरल कांग्रेस में एकत्र हैं, संसार के सर्वोच्च न्यायाधीश के समक्ष अपने संकल्पों की पवित्रता की दुहाई देते हुए उपनिवेशों की साधुवृत्त तथा जनता के नाम पर और उसके द्वारा प्रदत्त अधिकारों के बल पर सहनिष्ठा से यह घोषित और प्रख्यात करते हैं कि इन संयुक्त उपनिवेशों को जन्मजात अधिकार के आधार पर स्वतंत्र एवं स्वाधीन राष्ट्र होना चाहिए कि (अब) ये अंग्रेज राज–मुकुट के प्रति समस्त राजभक्ति की भावनाओं से मुक्त हैं, इनके और इंग्लैंड की सरकार के मध्य सारा राजनीतिक सम्पर्क समाप्त हो जाना चाहिये, एक स्वतंत्र एवं स्वाधीन राष्ट्र की हैसियत से इनको युद्ध घोषणा, संधि अनुष्ठान एवं मैत्री करने के सारे अधिकार प्राप्त हैं कि यह सब ऐसे कार्य कर सकते हैं और उपाय ग्रहण कर सकते हैं, जिनके सब स्वाधीन देश अधिकारी होते हैं। इस घोषणा की पुष्टि हेतु दैवी अनुकम्पा में अडिग विश्वास के साथ हम अपने जीवन धन और सम्मान को अर्पित करते हैं।"

4.10 युद्ध की प्रमुख घटनाएँ

स्वतंत्रता की घोषणा के बाद लगभग दो वर्षों तक युद्ध अंग्रेजों के पक्ष में रहा। ब्रिटिश जनरल विलियम हाव ने वाशिंगटन को न्यूजर्सी और डेलावाटे से खदेड़ दिया तथा बंकरहिल की लड़ाई में जार्ज वाशिंगटन को पराजित करके उसने फिलाडेल्फिया पर अधिकार कर लिया तथा वहाँ बहुत समय व्यर्थ गँवा दिया। इस अवधि में वाशिंगटन सम्हल गया तथा उसने दूसरे अंग्रेज सेनापति को कई जगह हरा दिया। युद्ध में मोड़ तब आया जब 1777 ई. में अंग्रेजों ने हडसन घाटी पर अधिकार करके उपनिवेशों को विभाजित करने की कोशिश की। अंग्रेजों की युद्ध नीति थी उत्तर में कनाडा और दक्षिण में न्यूयार्क से संघीय सेनाओं को खदेड़ना। जनरल जॉन बरगोयन ने कनाडा में ब्रिटिश सैनिकों का नेतृत्व किया, परन्तु संघीय सेना ने लगातार आक्रमण किया जिससे उसे कोई सफलता नहीं मिली। अन्ततः अक्टूबर में उसे सरगोटा में आत्मसमर्पण करना पड़ा। यह संघीय सेना की पहली महत्वपूर्ण विजय थी। इससे अमेरिकनों में उत्साह भर गया तथा आगे कई सफलतायें उन्हें मिलीं। इसके बाद फ्रांसीसी अमेरिकनों के समर्थक बन गए। 1778 में संघीय सेनापति जार्ज क्लार्क ने अंग्रेजों को मात दी। 1778 ई. में फ्रांस और अमेरिकियों के बीच एक संधि हुई। फ्रांस ने अमेरिका की सहायता के लिए धन, जहाज और सेना भेजना प्रारंभ कर दिया। फ्रांस के बाद स्पेन और हॉलैण्ड ने भी ब्रिटेन के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की। इससे ब्रिटेन पर दबाव बढ़ गया तथा अमेरिका का उत्साह तथा मनोबल बढ़ गया।

1777–78 तक यह युद्ध काफी विस्तृत क्षेत्र में फैल गया। ब्रिटिश फिलाडेल्फिया से पीछे हट गए और न्यूयार्क में सेना केन्द्रित की। 1780–81 में केरोलिना और वर्जीनिया के अधिग्रहण का प्रयास किया। इस अभियान में ब्रिटिश सैनिकों को 1781 में यार्क टाउन, वर्जीनिया में पराजित होना पड़ा। स्वतंत्रता संग्राम का यह अंतिम प्रमुख युद्ध था। यद्यपि अन्तिम रूप से युद्ध 1783 ई. तक चलता रहा।

NOTES

कार्नवालिस का समर्पण – कार्नवालिस ने 1780 एवं 1781 में केमडेन और ग्रीनी नामक अमेरिकी सेना अधिकारियों को पराजित किया। इसी बीच फ्रांसीसी सेनाएँ पहुँच गईं। अमेरिका तथा फ्रांस की संयुक्त सेना ने कार्नवालिस को यार्कटाऊन में घेर लिया। 19 अक्टूबर, 1781 में कार्नवालिस ने आत्मसमर्पण कर दिया। कार्नवालिस के आत्मसमर्पण से ब्रिटेन तथा अमेरिका का युद्ध समाप्त हो गया। दोनों के बीच संधि वार्ता प्रारंभ हुई।

4.11 पेरिस की सन्धि

तीन सितम्बर, 1783 को सन्धि पर अन्तिम हस्ताक्षर हुए। इस संधि के अनुसार–

(1) इंग्लैंड ने 13 अमेरिकी उपनिवेशों की स्वतन्त्रता को मान्यता दी।

(2) फ्रांस को इंग्लैंड से वेस्ट इंडीज में सेंट लूसिया, टोबेगो अफ्रीका में सेनिगल एवं गोरी तथा भारत में कुछ क्षेत्र मिले।

(3) स्पेन को लोरिडा तथा भूमध्य सागर में माइनारका का टापू मिला।

(4) इंग्लैंड व हॉलैंड में युद्ध पूर्व स्थिति स्थापित की गयी।

(5) नए अमेरिकी राष्ट्र की सीमा ओहायो नदी के साथ–साथ तय की गयी।

बोध प्रश्न

1. पेरिस की संधि का वर्णन कीजिए?

....

....

....

2. द्वितीय महाद्वीपीय अंग्रेज का वर्णन कीजिए?

....

....

....

4.12 अमेरिका के स्वतन्त्रता संग्राम का प्रभाव

आधुनिक युग की प्रगति में अमेरिका का स्वतन्त्रता संग्राम महत्वपूर्ण स्थान रखता है। एक नए राष्ट्र के जन्म के साथ पश्चिमी विश्व में नये युग का आरम्भ भी हुआ। राजनीतिक रूप से इसका महत्व यह था कि अमेरिकन लोगों ने ब्रिटिश सरकार के उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद के विरुद्ध पहली बार विजय प्राप्त की तथा अपने देश में लोकतन्त्र स्थापित किया। इस लोकतन्त्र ने पहली बार अपना लिखित संविधान बनाया जो कि सरकार की निरंकुशता को रोकने के लिए शक्तियों के पृथक्करण और नियन्त्रण तथा सन्तुलन की प्रणाली पर आधारित था। अतः यह संविधान भावी पीढ़ियों के लिए मार्गदर्शक बन गया।

वस्तु बना दिया गया। अमेरिका के संविधान में कुलीन वर्ग के विशेषाधिकारों का अन्त करके सब नागरिकों को समानता प्रदान की गई। इससे यूरोप के देशों को सामन्तीय व्यवस्था समाप्त करने में बड़ा भारी प्रोत्साहन मिला।

NOTES

अमेरिका की क्रान्ति का मानव इतिहास और विश्व सभ्यता पर गहरा प्रभाव पड़ा। इसने उपनिवेशवाद को जड़ से हिला दिया और उपनिवेशों के लिए स्वतन्त्रता–संघर्ष का मार्ग प्रशस्त किया। इस क्रान्ति के फलस्वरूप, ब्रिटेन को बाद में कनाडा, आस्ट्रेलिया तथा न्यूजीलैंड को औपनिवेशिक स्वराज देना पड़ा।

अमेरिका ने संसार के समक्ष यह उदाहरण पेश किया कि संघीय सरकार बड़े देशों के लिए न केवल उपयुक्त ही हो सकती है, अपितु इसके द्वारा एक नये बड़े देश का भी निर्माण हो सकता है।

अमेरिका के स्वतंत्रता संघर्ष का महत्व कई बातों में है। सार्वभौमिक और सार्वकालिक प्रभाव विश्व पर पड़ा यही इसका सबसे बड़ा महत्व है।

4.13 सारांश

अमेरिका में उपनिवेश स्थापना तथा उसके विस्तार के पीछे असंतोष स्वधर्म और स्वतंत्रता की प्रेरणाएँ शील तथा यही तत्व उसकी उन्नति को निरंतर गति प्रदान करते रहे जब अंततोगत्वा इंग्लैण्ड से संबंध–विच्छेद की नौबत आई तब इन्हीं मौलिक तत्वों को प्रावल्य रहा। असंतोष के समाधान के प्रयास ने ही क्रांति का रूप धारण कर लिया और जब क्रांति की समाप्ति हो गई तभी देशवासियों ने दम लिया।

4.14 भ्यासार्थ प्रश्न

दीर्घोत्तरीय प्रश्न

(1) अमेरिका के स्वतंत्रता संग्राम पर एक निबन्ध लिखिए।

(2) अमेरिका के स्वतंत्रता संग्राम के कारणों का विवेचन कीजिये।

लघु उत्तरीय प्रश्न

(3) अमेरिका के स्वतंत्रता संग्राम की प्रमुख घटनाओं का उल्लेख कीजिये तथा पेरिस की सन्धि की शर्तों का उल्लेख कीजिए।

अपनी प्रगति की जाँच करें
Test your Progress

विकल्प

1. अमेरिका की खोज किसने की–

(अ) कोलम्बस (ब) रांके (स) लिविंगस्टोन (द) फ्रेंकलिन

2. अमेरिका की खोज कब हुई–

(अ) 1416 (ब) 1472 (स) 1492 (द) 1482

उत्तर 1. (अ), 2. (स)

4.15 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

विश्व इतिहास (18वीं, 19वीं सदी – डॉ. संजीव जैन, कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल)

●●●

अध्याय-5 फ्रांस की क्रांति

(THE FRENCH REVOLUTION) {1789}

इकाई की रूपरेखा (इकाई–3)

5.0 उद्देश्य

5.1 परिचय

5.2 क्रांति के पूर्व फ्रांस की स्थिति

5.3 पुरातन व्यवस्था

5.4 करो का ढांचा

5.5 क्रांति के कारण

5.6 फ्रांस की क्रांति के दार्शनिकों का योगदान

5.7 क्रांति का प्रारंभ और विकास

5.8 क्रांति का प्रभाव

5.9 क्रांति का महत्व

5.10 सारांश

5.11 अभ्यास प्रश्न

5.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

5.0 उद्देश्य

इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे कि–

1. फ्रांस की क्रांति की पृष्ठभूमि का अध्ययन कर सकेंगे।
2. फ्रांस की राजनैतिक आर्थिक सामाजिक स्थिति का मूल्यांकन कर सकेंगे।
3. फ्रांस की क्रांति के कारण और घटनाओं को जान पायेंगे।
4. फ्रांस की क्रांति का प्रभाव जान सकेंगे।

5.1 परिचय

"किसी देश में क्रांति तब नहीं होती जब खराब दशा अधिक खराब हो जाए। जिस समय क्रांति होती है उस समय की स्थिति निश्चय ही उससे पहले की स्थिति से अच्छी होती है। अनुभव से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि खराब सरकार के लिए सबसे अधिक संकट का समय तब होता है जब वह सुधार का कार्य प्रारंभ करती है।"

–तोकविले

5.2 क्रांति के पूर्व फ्रांस की स्थिति

फ्रांस की क्रांति का तोकविले का यह विश्लेषण बिल्कुल सही है। फ्रांस की क्रांति से पूर्व

NOTES

की स्थिति बहुत खराब थी। निरंकुश और स्वेच्छाचारी शासक, विशेषाधिकारों से सम्पन्न अभिजात वर्ग, आर्थिक स्थिति की मार आम जनता की पीठ पर पड़ना, सामन्तवादी समाज तथा शासन व्यवस्था, पुरानी सड़ी–गली परम्परायें तथा रूढ़ियाँ, निर्जीव संस्थाएँ इत्यादि। फ्रांस की क्रांति से पूर्व की स्थिति को एक शब्द में **'असमानता'** से व्यक्त किया जा सकता है, जैसा कि **एम. फागे** ने कहा है– **"1789 की क्रांति निरंकुशता की अपेक्षा असमानता के विरुद्ध अधिक थी।"** 1789 में फ्रांस की पुरातन व्यवस्था का अन्त हुआ। वास्तव में यह पुरातन व्यवस्था ही फ्रांस की क्रांति के लिए उत्तरदायी थी।

किसी भी देश में होने वाली क्रांति के बीज उस देश की जनता की स्थिति और मनोदशा में निहित रहते हैं। असंतोष को जन्म देने वाली भौतिक परिस्थितियाँ क्रांति हेतु आवश्यक पृष्ठभूमि तैयार करती हैं तथा बौद्धिक चेतना बहुजन को उन परिस्थितियों से मुक्ति पाने हेतु प्रेरित करती है। ऐसी स्थिति में जब भी सरकार अथवा शासन के लिए पुरानी लीक पर चलना कठिन हो जाता है तथा असंतुष्ट वर्ग को अपनी ताकत का अहसास हो जाता है, तो देश में क्रांति का होना अनिवार्य हो जाता है। फ्रांसीसी राज्य क्रांति भी इस नियम का अपवाद नहीं है। इतिहास में किसी दूसरे काल पर शायद इतना कभी नहीं लिखा गया, जितना फ्रांस की इस राज्य क्रांति पर। इतनी सहानुभूति या इतना आक्रोश शायद विश्व की दूसरी घटना पर व्यक्त नहीं किया गया है। कांट, हैगल, वर्डस्वर्थ ने इस क्रांति पर खुशी व्यक्त की, तो एडमण्ड बर्क ने आक्रोश जाहिर किया। फ्रांस की क्रांति आधुनिक युग की क्रांतियों से सबसे निराली व्यापक प्रभाव की दृष्टि से थी। उन्नीसवीं सदी की जो भी मुख्य घटनाएँ यूरोप में घटीं, उन पर किसी न किसी तरह से फ्रांस की क्रांति ने असर डाला।

फ्रांस की क्रांति ने यूरोप में ऐसी स्थिति पैदा की कि पुरानी राजनीतिक व्यवस्था लड़खड़ा गयी। 1789 से 1815 ई. तक के काल का वर्णन साधारणतः चार शब्दों में किया गया है – क्रांति, युद्ध, निरंकुशता और साम्राज्य। हिंसा एवं पैशाचिकता से ओत–प्रोत क्रांति का अन्त युद्धों से हुआ। इसके बाद एक सैनिक अर्थात् नेपोलियन की निरंकुशता आयी और इस सैनिक निरंकुशता ने नेपोलियन की 'सीजर' जैसी महत्वाकांक्षाओं को जन्म दिया, जिससे विशाल साम्राज्य के निर्माण को प्रोत्साहन मिला। फ्रांस की राज्य क्रांति और नेपोलियन का साम्राज्य एवं वे युद्ध जो इनसे सम्बन्धित रहे, उनके महत्व को नकारा नहीं जा सकता है।

साधारणतया क्रांति का आरंभ 1789 ई. में माना जाता है। कुछ विद्वान 5 मई, 1789 ई. क्रांति के प्रारंभ की तिथि मानते हैं, क्योंकि इसी दिन एस्टेट्स जनरल का अधिवेशन प्रारंभ हुआ था। इसके विपरीत इतिहासकारों का एक वर्ग क्रांति के प्रारंभ की तिथि 14 जुलाई, 1789 ई. मानते हैं। क्योंकि इसी दिन बास्तील के दुर्ग का पतन हुआ था, किन्तु पिछले कुछ वर्षों से शोध कार्य हुआ, उससे यह निष्कर्ष निकलता है कि क्रांति की अनेक घटनाओं का अतीत के साथ सातत्य था और उनका अतीत से पूर्ण अलगाव नहीं था। यह सोचना गलत होगा कि यह क्रांति अचानक या अकारण हुयी है– यह उस उल्का तारे की तरह नहीं थी, जो एकाएक आकाश में किसी ओर से टूटकर सामने आता है और फिर शून्य में विलीन हो जाता है। वस्तुतः यह अनेक कारणों के परिणामस्वरूप हुयी। 1787 ई. से 1799 ई. तक की घटनाओं ने क्रांति के प्रारंभ एवं प्रसार में अभीष्ट योगदान दिया।

5.3 पुरातन व्यवस्था

पुरातन व्यवस्था का सामान्यतया जो अर्थ ग्रहण किया गया है वह है फ्रांस में क्रांति से पूर्व की व्यवस्था, परन्तु कुछ इतिहासकार इससे कुछ विभिन्न अर्थ भी ग्रहण करते हैं : कुछ लोग इसका अर्थ नवीं शताब्दी में सामंतवाद की स्थापना से लगाते हैं, कुछ 1500 से 1789 की

स्थिति से तथा कुछ इसका अर्थ 1751 से 1789 के बीच की व्यवस्था से लगाते हैं। क्रांति के सन्दर्भ में पुरातन व्यवस्था से अभिप्राय था 1715 के बाद की फ्रांस की स्थिति या व्यवस्था।

फ्रांस की इस पुरातन व्यवस्था में सामंतीय तत्व मौजूद थे, परन्तु एक तथ्य जो इसके अन्य देशों की अपेक्षा अलग था, वह था फ्रांस में बड़ी संख्या में कृषकों का होना। ये कृषक कृषि दास नहीं थे कर देते थे और स्वतंत्र थे। 1715 में फ्रांस की जनसंख्या एक करोड़ नब्बे लाख थी और यह बढ़कर 1789 में दो करोड़ साठ लाख हो गई थी। इस जनसंख्या में दो करोड़ बीस लाख के लगभग कृषक थे जो विशेषाधिकार सम्पन्न वर्ग से अलग भूमि पर आधारित थी जबकि शेष विशेषाधिकार सम्पन्न वर्ग अलग थे। असमानता यह थी कि इस कृषक समूह के पास सिर्फ 35 प्रतिशत भूमि थी। जबकि शेष विशेषाधिकार सम्पन्न वर्ग के पास फ्रांस की 65 प्रतिशत भूमि थी।

(a) कुलीन वर्ग :– फ्रांस में कुलीन वर्ग भी वर्गों में विभाजित था। जैसे दरबारी सामन्त और न्यायिक कुलीन या तलवारधारी कुलीन सेना से सम्बन्धित थे, इनके बाद पोशाकधारी कुलीनों का वर्ग आता था इसमें वकील, प्रशासक और न्यायिक संस्थाओं के लोग आते थे। इन वर्गों को कई विशेषाधिकार प्राप्त थे–जैसे इन्हें कई प्रकार के करों से छूट मिली रहती थी। दूसरे इन्हें लुई पन्द्रहवें के राज्य के काल से चर्च और स्थानीय प्रशासन में उच्च पद प्राप्त करने के अपने विशेषाधिकार पुनः प्राप्त हो गए थे। 1781 में सेना में कमीशन केवल कुलीन वर्ग के व्यक्तियों के लिए सुरक्षित कर दिये गये थे।

(b) पादरी वर्ग :– पादरी वर्ग में भी स्तरीकरण था। चर्च में प्रशासकीय पदानुक्रम और निर्धन पादरियों में अंतर था। उच्च वर्ग के पादरी आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न और स्वतंत्र होते थे तथा उन्हें विशेषाधिकार प्राप्त होने से कर देने में छूट मिली होती थी।

(c) मध्यवर्ग तथा कृषक वर्ग :– फ्रांस में मध्यवर्ग तथा कृषक वर्ग सर्वाधिक त्रस्त था। यह बहुसंख्यक था तथा करों का सबसे अधिक बोझ इन्हीं वर्गों को देना पड़ता था। मध्यवर्ग की दो श्रेणियाँ थीं प्रथम श्रेणी में व्यापारी आते थे। यही वह वर्ग था जो कुलीन वर्ग को अपनी उन्नति में बाधक समझता था। इनकी दूसरी श्रेणी में साहूकार और जहाजों के स्वामी आते थे। इनके अलावा एक अन्य वर्ग था ठेकेदारों का जो, जनता से कर वसूल करता था। कृषक वर्ग की स्थिति ठीक नहीं थी क्योंकि उनके पास जो जमीन थी वो पर्याप्त नहीं थी। कई कृषकों को मजदूरी तक करनी पड़ती थी। इस तरह धीरे–धीरे भूमिहीन कृषक मजदूरों की संख्या बढ़ती जा रही थी।

5.4 करों का ढाँचा

फ्रांस की कर संरचना बहुत असन्तोषजनक थी। सर्वाधिक करों का भुगतान उन्हें करना पड़ता था जिनके पास आय के पर्याप्त साधन और स्रोत नहीं थे। इतने पर जब भी फसल खराब होती या कोई अन्य आपत्ति आती तो सामंत लोग करों में वृद्धि करके अपनी आय बढा लेते थे। इससे मध्य वर्ग तथा कृषकों की स्थिति और बिगड़ जाती थी।

(a) सरकारी कर :– फ्रांस सत्रहवीं तथा अठारहवीं सदी में अनेक युद्धों में व्यस्त रहा इससे उसकी आर्थिक हालत बिगड़ती रही। इसके परिणामस्वरूप करों में वृद्धि हुई। किसान को अपनी उपज का 50 से 60 प्रतिशत भूमिकर के रूप देना पड़ता था। अठारहवीं सदी के मध्य में कुछ कुलीनों पर भी कर लगा दिया गया। सबसे प्रमुख कर **'ताय'** था जिसे भूमिकर कहा जाता था कुलीन वर्ग इस 'ताय' नामक कर से मुक्त होता था। दूसरा प्रमुख कर था नमक कर। यह दोनों कर जनता में बहुत अप्रिय थे। जनता का असन्तोष इनकी असमानता के विरुद्ध भी था।

(b) चर्च तथा अन्य विशेषाधिकार प्राप्त वर्गों द्वारा लगाया गया कर :– फ्रांस में सरकारी करों के देने मात्र से जनता का पीछा नहीं छूटता था उसे चर्च तथा अन्य सामन्तों या कुलीनों द्वारा लगाये गये करों का बोझ भी ढोना पड़ता था। चर्च भूमि कर के रूप में 8 से 10 प्रतिशत तक वसूल करता था। 1750 के बाद से कुलीनों के प्राचीन करों को पुनः वसूल करना प्रारंभ कर दिया था।

5.5 क्रांति के कारण (CAUSES OF THE REVOLUTION)

(A) सामाजिक कारण

सामाजिक व्यवस्था फ्रांस की सामाजिक स्थिति भी विस्फोटक थी। समाज का प्रत्येक वर्ग एक दूसरे से घृणा करने लगा था तथा एक दूसरे के विरुद्ध भड़क उठने को तैयार हो रहा था। फ्रांसीसी समाज विषम एवं विघटित था। वह सामन्तवादी पद्धति, असमानता और विशेषाधिकार के मूलभूत सिद्धांतों पर आधारित था। समाज मुख्यतः तीन वर्गों में विभक्त था– पादरी, कुलीन वर्ग और सर्वसाधारण वर्ग। प्रत्येक वर्ग के भीतर विभिन्न श्रेणियों के बीच अधिकारों एवं सुविधाओं की दृष्टि से भारी विषमताएँ थीं। **"फ्रांस की सामाजिक व्यवस्था का आधार कोई विधान या कानून नहीं वरन् विशेषाधिकार, रियायतें और छूट थीं।"** फ्रांस का सामाजिक स्वरूप व्यक्ति के जीवन, स्वतंत्रता व प्रसन्नता को बढ़ाने वाले सिद्धांतों को प्रोन्नत करने वाला नहीं था, जब तक कि कोई व्यक्ति इतना भाग्यशाली न हो कि उसका जन्म उच्च वर्ग में न हुआ हो। इस प्रकार की व्यवस्था के फलस्वरूप जनजीवन में संशय, अविश्वास एवं असंतोष ही पनप सकता था। यह तथ्य भी ध्यान देने योग्य है कि फ्रांस की कुल जनसंख्या के अनुपात में विशेषाधिकार प्राप्त उच्च वर्ग के लोगों की संख्या एक प्रतिशत से अधिक नहीं थी। क्रांति से पूर्व फ्रांस की कुल जनसंख्या ढाई करोड़ थी, जिनमें से लगभग डेढ़ लाख पादरी और लगभग एक लाख चालीस हजार सामन्त थे। इतनी कम जनसंख्या होते हुये भी उच्च वर्ग के लोग अधिकारों, सुविधाओं एवं जीवन स्तर की दृष्टि से शेष 99 प्रतिशत देशवासियों से बहुत आगे थे। अनुमान लगाया गया है कि जागीरदारों एवं चर्च के धर्माधिकारियों में प्रत्येक के पास फ्रांस की समस्त संपत्ति का पाँचवाँ भाग था। फिर भी ये दोनों वर्ग कर से मुक्त थे और साधनहीन तृतीय वर्ग के लोगों को करों से लाद दिया गया था। इन दोनों वर्गों को प्रदत्त विशेषाधिकारों ने जनसामान्य को विरोधी बना दिया। अगर राजा विशेषाधिकार का प्रश्न हल कर देता और मध्यमवर्ग को उचित स्थान दिला देता, तो शायद क्रांति नहीं होती। नेपोलियन ने ठीक ही कहा था कि मध्यमवर्ग का अहंभाव ही क्रांति का असली कारण था, स्वतंत्रता तो एक बहाना मात्र थी। इतिहासकार मेरियट का मत है कि **"वास्तव में जब क्रांति हुयी, तो वह मुख्यतः राजा के निरंकुश एकतंत्र के विरुद्ध नहीं वरन् विशेषाधिकारों से युक्त वर्गों – कुलीन व पुरोहित के विरुद्ध और क्रांतिकारियों ने आरंभ में उन्हीं को ही समाप्त किया।"** इस सामाजिक असंतोष का वर्णन निम्न प्रकार किया जा सकता है:–

(1) उच्च कुलीन वर्ग : विलासिता की पराकाष्ठा

सर्वप्रथम शीर्ष पर फ्रांस का उच्च कुलीन वर्ग था जिसमें राज परिवार के लोग, समस्त दरबारीगण व अन्य जागीरदार व सामंत आते थे। समस्त ऐश्वर्य का भोग करना व दरबार में रहकर राजा के शासन–प्रशासन को प्रभावित करना इसी वर्ग का काम था। यह वर्ग कोई कर नहीं देता था तथा अनेक प्रकार के करों को वसूल करके विलासिता से सारा जीवन व्यतीत करता था। यद्यपि कार्डिनल रिशलू और बाद में लुई चौदहवें (1643–1715 ई.) ने सामन्तों की शक्ति का अंत करके उन्हें बहुत से अधिकारों से वंचित कर दिया था फिर भी इस वर्ग को अभी भी बहुत सुविधाएँ तथा अधिकार प्राप्त थे। राज्य, चर्च तथा सेना के सभी उच्च पद इसी वर्ग के हाथों में थे और फ्रांस की समस्त भूमि का पाँचवाँ भाग उनके अधिकार में था।

कुलीन वर्ग में विभाजन और असमानता – फ्रांसीसी कुलीन वर्ग की एक प्रमुख विशेषता यह थी कि उसमें एकात्मकता एवं समरूपता का अभाव था। वंश की प्राचीनता, सामाजिक कार्यों का स्वरूप, राज दरबार के साथ संबंध आदि के आधार पर कुलीन वर्ग अनेक उपवर्गों में विभाजित था। अभिजात एवं प्राचीन वंशों के सामन्त, राजकृपा प्राप्त नवोदित कुलीनों को, सैनिक पदों पर अधिकार रखने वाले कुलीन, नागरिक प्रशासन के पदाधिकारी कुलीनों को तथा दरबारी कुलीन, प्रान्तीय कुलीनों को हेय दृष्टि से देखते थे। इन विभिन्नताओं के मध्य कुलीन वर्ग के सदस्य इस मायने में समान थे कि उन्हें समाज में विशिष्ट स्थान प्राप्त था। यह स्थान इस मान्यता पर आधारित था, कि वे सामन्ती भू–स्वामी हैं, जो सरकार के कार्यों में हाथ बँटाते हैं, युद्ध में राजा की सेवा करते हैं तथा ग्रामीण क्षेत्रों में कानून एवं व्यवस्था को बनाये रखने का उत्तरदायित्व उठाते हैं। अपनी इस विशिष्ट स्थिति के कारण कुलीन वर्ग के सदस्य करों से मुक्त थे तथा राज्य के विभिन्न पदों पर आसीन थे। आर्थिक दृष्टि से सभी सामन्त समान नहीं थे। अमीर और गरीब दोनों प्रकार के सामंत थे, परन्तु एक बात दोनों में समान थी– दोनों ही किसानों का शोषण करते थे। उन्हें न्याय संबंधी भी अधिकार प्राप्त थे। वे अपने अधीन किसानों के झगड़ों का फैसला करते और जुर्माने लगाकर अपनी आय में वृद्धि करते थे। उनको शिकार करने का विशेषाधिकार प्राप्त था। इस काम के लिए काफी भूमि सुरक्षित रखी जाती थी ताकि उसमें जंगली जानवर पल सकें। ये जानवर किसानों की खड़ी फसल नष्ट कर देते थे, परन्तु वह बेबस थे। इस प्रकार यह वर्ग कई विशेषाधिकारों का उपभोग करते हुये, निम्न वर्ग पर अत्याचार करता था। इन सबके कारण निम्न वर्ग में असंतोष की भावना बलवती होती चली गयी। थीयर्स का यह मत उल्लेखनीय है **"बगावत राजगद्दी के कम तथा कुलीन वर्ग के अत्याचारों के विरुद्ध अधिक थी।"**

राजनीतिज्ञ दृष्टि से यह समय फ्रांस में कुलीन वर्ग के पुनरुत्थान का युग था। अगर सामाजिक क्षेत्र में वह अपनी विशिष्ट प्रकृति को संरक्षित करने हेतु सचेष्ट था, तो राजनीतिक क्षेत्र में उसका उद्देश्य सरकार की महत्वपूर्ण संस्थाओं में प्रविष्ट होकर एक बार पुनः एक वास्तविक सत्ता को प्राप्त करना था, जिसे बूर्बों वंश के पूर्व शासकों ने समाप्त कर दिया था। इस प्रकार जहाँ एक ओर सामंती विशेषाधिकारों एवं उत्पीड़न ने समाज के निम्न वर्ग को क्रांतिकारी बनाया, वहीं दूसरी ओर इस वर्ग की राजनीतिक महत्वाकांक्षा ने इसे भी निरंकुश राजतंत्र के विरुद्ध संघर्ष हेतु प्रेरणा दी। राजा के विरुद्ध सामन्तों का यह संघर्ष लुई चौदहवें की मृत्यु के साथ आरंभ हुआ। लुई पन्द्रहवें के समय बढ़ा तथा लुई सोलहवें के समय उत्कर्ष पर पहुँच गया था। सुधारों के प्रश्न पर यह संघर्ष लुई सोलहवें के काल में क्रांति का प्रथम चरण बन गया। इस तरह फ्रांस की क्रांति में कुलीन वर्ग की भूमिका महत्वपूर्ण मानी गई है।

(2) पादरी वर्ग का भ्रष्ट और अनैतिक जीवन

उच्च कुलीन वर्ग की भाँति ही अन्य पादरी वर्ग था जो **"विशेषाधिकार युक्त"** होता था। इनको **"प्रथम श्रेणी का नागरिक"** मानकर अनेक सुविधाएँ दी गई थीं। चूँकि फ्रांस की अधिकांश जनता रोमन कैथोलिक मतावलम्बी थी। अतः कैथोलिक चर्च का काफी प्रभाव था। उसका अपना देशव्यापी संगठन था। उसके पास अतुल संपत्ति थी और परम्परा के अनुसार वह राज्य के करों से मुक्त था। इसके साथ ही शिक्षा, जन्म–मृत्यु के आँकड़े, विवाह एवं अन्य सामाजिक और धार्मिक संस्कारों आदि पर पादरियों का एकाधिकार–सा था। उसे पुस्तकों एवं पत्र–पत्रिकाओं के सैंसर करने का अधिकार था। चर्च के पृथक न्यायालय और कानून थे। उसके व्यापक अधिकारों एवं प्रभावों के कारण ही यह कहा गया है, कि **'फ्रांस का चर्च राज्य के अन्दर राज्य'** था।

फ्रांस की संपूर्ण जागीरी भूमि की बीस प्रतिशत भूमि चर्च के अधीन थी, जिससे चर्च को बहुत अधिक आय होती थी। इसके अलावा चर्च किसानों से सब प्रकार की फसलों पर धर्मांश भी वसूल करता था। अनुमानतः चर्च की वार्षिक आय राजकीय आय से आधी थी। यद्यपि चर्च इस आय का कुछ भाग धार्मिक कार्यों, जनहित तथा शिक्षा के प्रसार आदि कार्यों में व्यय करता

NOTES

था तो भी फ़्रांस में चर्च बहुत अधिक बदनाम एवं अलोकप्रिय हो गया था। लोगों की नजर में खटकने वाली बात यह थी कि चर्च की बढ़ती हुई संपदा के साथ पादरी अपने धार्मिक कर्त्तव्यों की उपेक्षा करते जा रहे थे। चर्च की अलोकप्रियता का एक मुख्य कारण फ्रांस के मध्यम वर्ग के व्यक्तियों में लोकप्रिय होती हुयी संशयवाद की प्रवृत्ति थी, जिसके प्रभाव से ईश्वर का अस्तित्व तथा चर्च की उपयोगिता दोनों ही विवाद के विषय बन गये। दूसरा कारण, चर्च के सामन्तीय अधिकार तथा उनका कठोरता से लागू किया जाना था, जिसके कारण किसानों में चर्च के विरुद्ध असंतोष उत्पन्न होने लगा।

(i) उच्च पादरी वर्ग भ्रष्ट और अनैतिक जीवन – पादरियों में भी दो श्रेणियां थीं– a) उच्च पादरी, b) सामान्य पादरी वर्ग। उच्च पादरी वर्ग में आर्क बिशप, जैसे पद थे। ये कुलीनों के पुत्र होते थे। इनकी आमदनी थी और ये शान–शौकत एवं आराम का जीवन बिताते थे। धार्मिक कार्यों में उनकी रुचि बहुत कम थी और उनमें से अधिकांश अपने धार्मिक कार्यक्षेत्र को छोड़कर राज दरबार में रहकर भोगविलास का जीवन व्यतीत करते थे। वे ईश्वर के अस्तित्व तक में विश्वास नहीं रखते थे। राष्ट्रीय उपज का दसवाँ भाग इनको धार्मिक कर के रूप में मिलता था। समस्त चर्च की सम्पत्ति के ये स्वामी थे तथा चर्च की ओर से उच्च पदाधिकारियों को हजारों लाखों लीरा की आय होती थी जिसके बल पर ये उच्च कुलीन वर्ग की शांति ही ऐश्वर्यपूर्ण जीवन व्यतीत करते थे तथा **"चर्च के राजकुमार"** कहलाते थे। लुई सोलहवें ने पेरिस के आर्क बिशप की नियुक्ति करते समय कहा था– **"कम से कम पेरिस में तो हमको एक ऐसा आर्क बिशप रखना है, जो ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास रखता है।"** इस श्रेणी के लोग सामान्य पादरियों को हेय समझते थे। यह उच्च पुरोहित वर्ग धर्म के आदर्शों को भूलकर भ्रष्ट एवं विलासमय जीवन बिता रहा था, जिससे जनता में उनके प्रति श्रद्धा के स्थान पर असंतोष एवं विरोध की भावना बढ़ रही थी।

(2) निम्न पादरी वर्ग : शोचनीय दशा :– शिक्षा और धर्म का समस्त शौर्य फ्रांस में इस समय यही वर्ग करता था फिर भी इस वर्ग की दशा बड़ी सोचनीय थी। सुप्रसिद्ध इतिहासकार हेजन ने लिखा है कि **"उनकी दरिद्रता को देखकर झोपड़ियों की कड़ियाँ भी क्रन्दन करते लगती थीं जिस व्यवस्था में इतनी (सामाजिक) असमानता हो वह अधिक दिन नहीं ठहर सकती।"** अपने दुःखी जीवन से तंग आकर ही इस वर्ग ने क्रांति का विरोध न करके समर्थन ही किया। सामान्य पादरी वर्ग में हजारों स्थानीय गिरजाघरों के छोटे पादरी थे, जो प्रायः निम्न वर्ग या कृषक वर्ग से आते थे। वे जनसाधारण के सभी धार्मिक कार्य करते और उनके सुख–दुःख में सम्मिलित होते थे, किन्तु इनकी आय इतनी कम होती थी कि उससे कई बार इनके लिए जीवन निर्वाह करना कठिन हो जाता था। ये फटे–पुराने कपड़े पहनते थे। इनके मन में चर्च के उच्चाधिकारियों, जो उनकी अवहेलना करते थे और ठाट–बाट से रहते थे, के प्रति घृणा एवं आक्रोश का होना स्वाभाविक था। यथार्थ में इस श्रेणी के पादरी जनसाधारण के अधिक निकट थे और प्रचलित अन्यायपूर्ण व्यवस्था के दोषों से परिचित थे। इसी कारण उन्होंने क्रांति के समय जनता का समर्थन किया और उसे सफल बनाने में काफी सहयोग दिया ।

(3) मध्यम वर्ग : सक्षम लेकिन उपेक्षित

निम्न साधारण वर्ग से निकलकर बुद्धिजीवी वर्ग अब नवीन वर्ग में परिणत होता जा रहा था तथा अपनी बुद्धि, विवेक, दक्षता, योग्यता, तर्क एवं वैचारिक चिंतन–मनन आदि के कारण समाज में प्रमुख स्थान बनाने लगा था किंतु इस वर्ग में सर्वाधिक असंतोष था, क्योंकि सबसे अधिक योग्य होने के बावजूद इस वर्ग को कोई भी अधिकार प्राप्त न था। इस वर्ग में वकील, डॉक्टर, अध्यापक, पत्रकार, व्यापारी आदि प्रमुख थे। इसी वर्ग ने वस्तुतः क्रांति की बागडोर अपने हाथ में ली। देश की लगभग 94 प्रतिशत जनसंख्या इस वर्ग से संबंधित थी। यह वर्ग विशेषाधिकार एवं अन्य सुविधाओं से वंचित था, परन्तु इस वर्ग में भी भारी असमानता थी और सामाजिक तथा आर्थिक दृष्टि से इस वर्ग के विभिन्न अंगों में व्यापक अंतर था।

इस वर्ग में साहूकार, व्यापारी, शिक्षक वकील, डॉक्टर, लेखक, कलाकार सरकारी कर्मचारी आदि सम्मिलित थे, जो उद्योग, व्यवसाय एवं पेशे से संबंधित थे तथा जिन्हें शारीरिक श्रम नहीं करना पड़ता था। संख्या की दृष्टि से इस वर्ग के सदस्य अल्पमत में थे, किन्तु शासन के उच्च पदों को छोड़कर सभी पद इन्हीं लोगों के हाथों में थे। इस वर्ग के लोग पुरातन व्यवस्था के घोर विरोधी थे, क्योंकि कुलीन पादरी एवं कुलीन वर्ग का व्यवहार इनके प्रति अच्छा न था, यद्यपि ये लोग अक्लमंद, मेहनती, शिक्षित एवं आर्थिक रूप से सम्पन्न थे। इस वर्ग को कोई राजनीतिक अधिकार भी नहीं था। अतः यह वर्ग सामाजिक व्यवस्था में क्रांति के साथ–साथ राजनीतिक व्यवस्था में भी आमूल–चूल परिवर्तन चाहते थे। हेजन ने लिखा है, वे सामाजिक समता चाहते थे, उनकी प्रबल इच्छा थी कि कानून इस बात को स्वीकार कर ले कि बुर्जुआ वर्ग के लोग कुलीन वर्ग के समान हैं। इनके मस्तिष्क उस युग के साहित्य से, जिसका वे ध्यान से अध्ययन करते थे, ओत–प्रोत थे। वाल्तेयर, रूसो, मान्तेस्क्यू तथा अनेक अर्थशास्त्रियों के विचारों ने उन्हें आंदोलित कर रखा था। यही कारण था कि फ्रांस की क्रांति में मध्यम वर्ग का प्रमुख योगदान रहा। फ्रांस के मध्यम वर्ग के संबंध में मुख्य बात यह थी कि फ्रांस में ग्रामीण एवं शहरी जनता के बीच कोई स्थायी विभेद नहीं था और इसी कारण नगरों में रहते हुए भी मध्यम वर्ग किसान एवं जनता से घनिष्ठ संबंध रखता था और इसलिए क्रांति के दौरान वह उनका समर्थन पा सका। क्रांति के पूर्व फ्रांस के मध्यम वर्ग में व्याप्त असंतोष के कारण निम्नलिखित थे –

(i) मध्यम वर्ग की महत्वाकांक्षा थी कि उसे भी सामाजिक ढाँचे में पहली पंक्ति में स्थान प्राप्त हो, किन्तु रक्त के आधार पर श्रेणीबद्ध फ्रांसीसी समाज में कुलीन वर्ग ने उसे वंचित कर रखा था। उसके पास धन था, योग्यता थी किन्तु तदनुरूप समाज में प्रतिष्ठित नहीं थे। उसके विचार में इस विषमता को तभी दूर किया जा सकता था जब सामन्ती ढाँचे को नष्ट कर दिया जाये।

(ii) मौजूदा व्यवस्था के प्रति आक्रोश का एक कारण यह था कि समझदार, कर्मठ, शिक्षित एवं धनी होने के उपरान्त भी देश की राजनीतिक संस्थाओं में उसका कोई प्रभाव नहीं था। इतिहासकार डेविड थामसन का मत है कि **"फ्रांस की क्रांति फ्रांसीसी समाज के दो परस्पर विरोधी गुटों के संघर्ष का परिणाम थी। एक तरफ राजनीतिक दृष्टिकोण से प्रभावशाली और दूसरी तरफ आर्थिक दृष्टिकोण से प्रभावशाली वर्ग थे। देश की राजनीति और सरकार पर प्रभुत्व कायम करने के लिए इन दोनों वर्गों में संघर्ष एक तरह से अनिवार्य था।"**

(iii) मध्यम वर्ग का बुद्धिजीवी इस आदर्श भावना से प्रेरित था कि विवेक एवं बुद्धि पर आधारित समाज की संरचना हो। सामाजिक असमानता ने बुद्धिजीवियों में असंतोष को भड़काया। वे समकालीन लेखकों की रचनाओं को पढ़ते थे, वैचारिक क्लबों एवं संस्थाओं के सदस्य बनकर राजनीतिक विषयों, उदार प्रजातांत्रिक तथा क्रांतिकारी विचारधाराओं पर वाद–विवाद करते थे। इनकी गतिविधियों के कारण फ्रांस में राजनीतिक जागृति तथा जनमत का निर्माण हुआ।

(iv) मध्यम वर्ग के वाणिज्य–व्यापार से जुड़े वर्ग में भारी असंतोष था। सत्रहवीं सदी में फ्रांस के व्यापार–वाणिज्य में काफी वृद्धि हुई थी, जिसका लाभ इसी वर्ग ने उठाया था और वे काफी धनी हो गये थे। संपत्ति में वृद्धि के साथ–साथ उनके जीवन स्तर में भी अनुकूल परिवर्तन आया। इस वर्ग के कुछ लोगों के पास इतना धन जमा था कि वे सरकार और बहुत से कुलीनों को ब्याज पर कर्जा देने लगे थे, परन्तु फ्रांस की सरकार जिस तेजी के साथ दिवालियापन की ओर बढ़ रही थी, उससे यह वर्ग भयभीत हो उठा था क्योंकि उसे भय था कि कहीं उसके कर्ज की विशाल राशि डूब न जाये। अतः यह वर्ग मौजूदा राजनीतिक व्यवस्था में संशोधन का समर्थक था। इस वर्ग के असंतोष का एक कारण व्यापार–वाणिज्य के मार्ग में विभिन्न रुकावटें थीं, जिनकी वजह से उन्हें काफी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। राजा और सामंत लोग उनके

व्यापार पर कई प्रकार के कर लगाते रहते थे और उन्हें स्थान–स्थान पर चुंगी चुकानी पड़ती थी। अतः उन्होंने व्यापारिक प्रतिबंधों का विरोध किया तथा स्वतंत्र व्यापार का समर्थन किया।

NOTES

(4) निम्न एवं साधारण वर्ग : शोषण का सर्वाधिक शिकार

फ्रांसीसी समाज का यह निम्न साधारण वर्ग ही सबसे अधिक दलित, शोषित, दुःखी और अत्याचार पीड़ित था। सबसे अधिक कर देने के बावजूद भी पेट भर भोजन नहीं कर पाता था। क्रांति का सूत्रपात करने वाला वस्तुतः यही वर्ग था। इस प्रकार क्रांति के मूल कारणों में सामाजिक कारण भी महत्वपूर्ण स्थान रखते थे। इस वर्ग में निम्न लोग समाहित थे। इनकी सामाजिक और आर्थिक स्थिति का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है –

(i) **दस्तकार व मजदूर** – इनकी दशा अच्छी नहीं थी। इनको वेतन कम मिलता था तथा काम का समय बहुत ज्यादा था वे मध्यम वर्ग के पूँजीपतियों की दया पर निर्भर थे, जो अपनी श्रेणियों तथा निगमों द्वारा उद्योग–धंधों तथा व्यापार पर नियंत्रण रखते थे। उनमें से अधिकांश शहरों में रहते थे, जिससे इनका संपर्क नगरों के शिक्षित एवं प्रबुद्ध वर्ग से था।

(ii) **कृषक**– कृषक लोगों की संख्या सर्वाधिक थी। वे संख्या में दो करोड़ थे, जो कुल जनसंख्या का अस्सी प्रतिशत था। इनकी दशा सबसे अधिक निम्न एवं शोचनीय थी। अठारहवीं शताब्दी में महँगाई के कारण भी इन्हें कष्ट उठाना पड़ा था। फ्रांस में कृषकों के दो वर्ग थे – प्रथम, स्वतंत्र किसान तथा द्वितीय, अर्द्ध–दास। स्वतंत्र किसान अपनी भूमि का मालिक था किन्तु अर्द्ध–दास किसान अपनी इच्छा से अपने मालिक जमींदार की भूमि को त्याग कर बाहर नहीं जा सकता था। दोनों वर्गों के किसान कुलीनों के शोषण के शिकार थे। उन्हें राज्य, चर्च तथा जमींदार को अनेक प्रकार के कर तथा नजराने देने पड़ते थे। कर भुगतानों में किसान की आमदनी का 80 प्रतिशत भाग चला जाता था। इतना ही नहीं उन्हें बेगार भी करनी पड़ती थी। उन्हें जागीरदार की गेहूँ पीसने की चक्की, शराब की भट्टी, रोटी सेंकने का तंदूर तथा उसके पुल तक का उपयोग करने के लिए एक निश्चित शुल्क चुकाना पड़ता था। जमीदारों का जो विशेषाधिकार कृषकों को अखरता था, वह था शिकार करने का एकाधिकार। किसान और उसका परिवार भरपेट भोजन के लिए तरसता था, किन्तु जमींदार के हिरण, कबूतर आदि उसकी खड़ी फसल का नाश करते थे, फिर भी उन्हें नहीं हटा सकता था क्योंकि वह बेबस था। इस प्रकार अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में किसानों में अपनी निम्न सामाजिक एवं आर्थिक दशा के प्रति असंतोष व्याप्त था। एक दृष्टि से किसानों के असंतोष का मुख्य कारण उनकी गरीबी न होकर सामन्तों द्वारा दिये जाने वाले कष्ट और असुविधाएँ थीं। अधिकांश कृषक ठेके पर भूमि जोतने वाले थे और भूमि पर उनका अधिकार नहीं था. इसलिए भी उनमें असंतोष था। इतिहासकार **लियो गरशॉय** का मत है कि **"किसान इतने दुःखी हो चुके थे कि वे स्वयं ही एक क्रांतिकारी तत्व के रूप में परिणत हो गये। उन्हें क्रांति करने के लिए मात्र एक संकेत की आवश्यकता थी तथा उन्हीं की प्रमुख भूमिका ने 1789 ई. की क्रांति को सुफल बनाया था।"**

(B) आर्थिक कारण

इस समय फ्रांस की आर्थिक स्थिति बहुत अधिक दयनीय थी। इस दयनीय अवस्था के लिए सरकार की फिजूलखर्ची के अतिरिक्त उसकी कर व्यवस्था बहुत अधिक जिम्मेदार थी। **प्रोफेसर हेजन** ने लिखा है कि **"सरकार आय के अनुसार व्यय करने के बजाय व्यय के अनुसार आय को निश्चित करती थी।"** राजा की व्यक्तिगत आय और राष्ट्र की आय में कोई अंतर नहीं किया जाता था। फलतः राजा को अपने व्यक्तिगत कार्यों पर सरकारी कोष से धन व्यय करने का मनमाना अवसर मिल जाता था। राजा की विलासिता पर कोई अंकुश नहीं था। खर्चीले युद्धों ने देश की स्थिति को और भी कमजोर बनाया। लुई चौदहवें ने मरते समय अपने उत्तराधिकारी को युद्ध न करने की सलाह दी थी, किन्तु लुई पन्द्रहवें ने इस सलाह

की ओर ध्यान नहीं दिया। उसने आस्ट्रिया के उत्तराधिकार तथा सप्तवर्षीय युद्धों में भाग लेकर फ्रांस की आर्थिक स्थिति को बहुत खराब कर दिया। क्रांति से पूर्व फ्रांस को प्रत्येक वर्ष लगभग ढाई करोड़ डालर का घाटा हो रहा था, जिसकी पूर्ति भारी ब्याज पर ऋण लेकर की जा रही थी। क्रांति से पूर्व कुल राष्ट्रीय आय का आधा भाग केवल ब्याज चुकाने में चला जाता था।

फ्रांस राज्य की क्रांति के प्रमुख आर्थिक कारण इस प्रकार बताये जा सकते हैं--

(1) दोषपूर्ण अर्थ--विभाजन :-- क्रांति से पूर्व फ्रांस की आर्थिक व्यवस्था अत्यन्त दोषपूर्ण थी। आर्थिक दृष्टिकोण से फ्रांस का समाज प्रधानतः दो वर्गों में विभक्त था-- अमीर और गरीब। अमीर वर्ग में धर्माधिकारी व सामन्त लोग आते थे। उनमें भी उच्च पुरोहित वे दरबारी सामन्त थे। इन लोगों की आर्थिक व्यवस्था अच्छी थी। अपनी वैभवता व सम्पन्नता के कारण वे सुखी और विलासी जीवन व्यतीत करते थे। धार्मिक कार्य उनके जीवन से सदा परे रहते थे। दरबार में रहकर सामन्त राजा की चापलूसी कर उससे अनेक प्रकार की सुविधाएँ प्राप्त करते रहते थे। उच्च पुरोहित अपने न्यायालयों में किसानों पर अत्याचार करते व अन्य करों से उनका शोषण करते थे। उनकी संख्या गरीब जनता के अनुपात में नगण्य थी, परन्तु फिर भी देश की अधिकांश भूमि पर उनका ही अधिकार था और देश की 80 प्रतिशत आय इन दोनों वर्गों के ही काम आती थी। अतः स्पष्ट है कि सामन्त लोग तो साधारण जनता का शोषण करते थे। अतः साधारण जनता में इस विषम अर्थ--व्यवस्था से रोष होना स्वाभाविक था।

(2) दोषपूर्ण कर व्यवस्था :-- देश की कर प्रणाली अव्यवस्थित एवं दोषपूर्ण थी। फ्रांस में विशेषाधिकारों की परम्पराओं ने समाज के सर्वाधिक सम्पन्न लोगों को कर--मुक्त कर रखा था। करीब तीन लाख सामन्तों और पादरियों के बीच समाज की अधिकांश संपत्ति बँटी हुयी थी। सामन्त लोग प्रत्यक्ष कर से मुक्त थे। लेकिन वह स्वयं कर लगा सकते थे।

कर दो प्रकार के थे -- प्रत्यक्ष और परोक्ष। वस्तुतः करों का भार कृषकों एवं सामान्य जनता पर ही पड़ता था। परोक्ष करों में मुख्य-- नमक, शराब, तम्बाकू आदि पर लिए जाने वाले कर थे। इनमें से एक नमक कर (गेबेल) सबसे अधिक दुःखदायी था। नमक के व्यापार का एकाधिकार एक कंपनी के पास था और कानून के अनुसार सात वर्ष से अधिक आयु वाले प्रत्येक व्यक्ति को वर्ष में सात पौण्ड नमक अवश्य खरीदना पड़ता था।

कंपनी मनमाने भाव पर नमक बेचती थी और जो व्यक्ति नमक की निर्धारित मात्रा नियमित नहीं खरीदता था, उसे राज्य दण्डित करता था। जिन लोगों के पास रोटी के लिए पैसे नहीं थे, उन्हें भी नमक खरीदना पड़ता था। लोगों ने नमक खरीदा या नहीं, इसकी जाँच की जाती थी। ऐसा अनुमान है कि नमक कर की अवहेलना करने के अपराध में प्रतिवर्ष 30,000 लोगों को कारावास की सजा भोगनी पडती थी। नमक का अवैध व्यापार करने वालों को मृत्यु दण्ड की सजा दी जाती थी। फ्रांस में करों का सारा भार तीसरे वर्ग पर ही पड़ता था। सामन्त व धर्माधिकारी लोगों को कर ही नहीं देने पड़ते थे। वैसे तो प्रत्यक्ष कर जागीर व निजी धन पर भी लगाया जाता था। परन्तु ये लोग अधिकारी गणों को प्रभाव में ले कर से मुक्त हो जाते थे। उदाहरण के लिए राजकुमारों के आय कर से 25 लाख की वसूली होनी चाहिए थी पर उनसे दो लाख भी वसूल न हो पाते थे। इससे स्पष्ट है कि लोगों को इस प्रकार की कर व्यवस्था से असंतोष होना स्वाभाविक था। इसके अलावा फ्रांस की कर व्यवस्था में एक दोष और था। अप्रत्यक्ष करों की वसूली राजकीय कर्मचारी नहीं करते थे। यह कार्य ठेके पर कम्पनी व अन्य आदमियों को सौंप दिया जाता था। उन्हें सरकार को केवल एक निर्धारित धन राशि देनी पड़ती थी। इसका परिणाम यह होता था कि वे जनता से अधिकाधिक धन करों के रूप में लेने का प्रयास करते थे। ठेकेदारों द्वारा घृणित तरीकों से कर वसूल करने पर जनता में आक्रोश होना स्वाभाविक था। देश की कर प्रणाली अव्यवस्थित एवं दोषपूर्ण थी। फ्रांस में विशेषाधिकारों की परम्पराओं ने समाज के सर्वाधिक सम्पन्न लोगों को कर--मुक्त कर रखा था। करीब तीन लाख

सामन्तों और पादरियों के बीच समाज की अधिकांश संपत्ति बँटी हुयी थी। सामन्त लोग प्रत्यक्ष कर से मुक्त थे। लेकिन वह स्वयं कर लगा सकते थे।

NOTES

(3) अप्रिय नमक कर :– नमक जनसाधारण के काम में आने वाली वस्तु है। परन्तु फ्रांस की सरकारों ने नमक का एकाधिकार एक कम्पनी को दे रखा था। उस कम्पनी को सरकार की तरफ से विशेष सुविधाएँ प्राप्त थीं। सात वर्ष से अधिक आयु वाले प्रत्येक मनुष्य को इस कम्पनी से वर्ष में सात पौण्ड का नमक अनिवार्य रूप से खरीदना पड़ता था। नियम के अवहेलना करने पर उसे कठोर दण्ड दिया जाता था। क्रांति से कुछ ही समय पूर्व सरकारी तौर पर अनुमान लगाया गया था कि इस अपराध में प्रतिवर्ष लगभग बीस हजार व्यक्ति जेल में डाल दिये जाते थे तथा पाँच सौ को प्राण दण्ड दिया जाता था। इसके अलावा यह भी नियम था कि यह सात पौण्ड नमक केवल भोजन पकाने के ही प्रयोग किया जावे। मछली व माँस को खराब होने से बचाने के लिए उन्हें अतिरिक्त नमक खरीदना पड़ता था। इस नमक कर व्यवस्था में फ्रांस की आम जनता परेशान थी और वे इस प्रकार के कर लगाने वाली सरकार में परिवर्तन करना चाहते थे।

(4) शराब पर कर :– शराब बनाना फ्रांस का एक बड़ा राष्ट्रीय उद्योग है और यह व्यवसाय वहाँ सदियों से प्रचलित था, परन्तु फ्रांस की सरकार ने इस उद्योग पर कई प्रतिबन्ध लगा रखे थे। इसका परिणाम यह होता था कि इस उद्योग का विकास अवरुद्ध हो गया, और वह उपभोक्ता के पास पहुँचते–पहुँचते बहुत महँगी हो जाती थी। इसके अलावा इसकी दर भी सारे फ्रांस में एक सी न थी। फ्रांस के विभिन्न राज्यों में कर दर में अन्तर होने के कारण लोग इसका चोरी से व्यापार करने लग गये। पर अपराध में पकड़े जाने वाले व्यक्ति को घोर यातनाएँ सहन करनी पड़ती थीं। सरकार के इस बर्बरता पूर्ण दमन के विरुद्ध जनता थी और वह धीरे–धीरे सरकार की इस नीति की आलोचना करने लगी थी।

(5) व्यापार की दशा :– अठारहवीं सदी के अन्त में फ्रांस के व्यापार की अवस्था भी दयनीय बनी हुई थी। इसकी दयनीयता के प्रमुख कारण थे प्रान्तों की व्यापार प्रणाली में भिन्नता, नाप–तौल के बांटों में भिन्नता, कर की दरों में अन्तर। इसके अलावा फ्रांस के समस्त राज्यों में मुद्राएँ भी समान न थीं। कारखानों के स्वामी अच्छा धन कमाते थे और वे मजदूरों को मामूली मजदूरी देते थे। इसका परिणाम यह हो रहा था कि फ्रांस में दैनिक वस्तुओं की कीमतें बढ रही थीं और मजदूरों को इतना वेतन नहीं मिलता था कि जिससे वे अपना गुजारा कर सकें। 10 विभिन्न चुंगी दरों व राज्य के विभिन्न प्रतिबन्धों के कारण बीच के व्यापारियों को भी व्यापार करने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था।

(6) युद्धों पर अत्यधिक व्यय :– फ्रांसीसी सम्राटों ने युद्धों के समय अत्यधिक व्यय किया। फ्रांसीसी सम्राट लुई चौदहवें के समय से ही फ्रांस की आर्थिक स्थिति का ह्रास होने लगा था। लुई पन्द्रहवें और सोलहवें ने फ्रांस की बिगड़ती स्थिति को सुधारने का कोई प्रयास नहीं किया बल्कि **"आस्ट्रेलिया के उत्तराधिकारी युद्ध"** तथा "सप्तवर्षीय युद्ध" में इन सम्राटों ने काफी अधिक खर्च किया जिससे फ्रांस की आर्थिक स्थिति का और अधिक ह्रास हुआ।

(7) **दरबार पर अधिक व्यय :–** फ्रांस के राजा, रानी एवं समस्त दरबारी अपने सुख एवं ऐश्वर्यपूर्ण जीवन पर अधिक खर्च करते थे, फ्रांस के दिवालिया होने के बावजूद भी राजा एवं मेरी अन्टोयनेट के खर्चो में कोई कमी नहीं आई। इस कारण फ्रांस की आर्थिक व्यवस्था काफी बिगड़ चुकी थी।

(8) **सामान्य जनता पर करों का भार –** जनसाधारण विशेषतः किसानों को कई प्रकार के कर सामन्तों को देने पडते थे। सामन्तों की भूमि में पड़ने वाले पुलों को पार करने पर एक निश्चित राशि देनी होती थी। चर्च को उसे **'टाइथ'** कर देना होता था, जो उपज का दसवॉ भाग होता था। करों के अतिरिक्त किसानों को समय–समय पर उपहार भी देने पड़ते थे। लगान सहित कृषक की पैदावार का अस्सी प्रतिशत भाग कर के रूप में चला जाता था।

कर वसूलने का ढंग भी बड़ा त्रुटिपूर्ण था। करों को ठेके पर वसूल करने की प्रथा थी। वे किसानों से मनमाना कर वसूल करते थे और राजस्व का एक भाग स्वयं हड़प जाते थे। राज्य को आमदनी का केवल 60 या 65 प्रतिशत भाग ही मिल पाता था। इसके अतिरिक्त कर वसूलने की यह प्रणाली खर्चीली भी थी। कर वसूल करने में आय का 14 प्रतिशत खर्च हो जाता था।

आर्थिक व्यवस्था की समीक्षा

लियो गरशॉय ने इस प्रणाली की आलोचना करते हुए लिखा है, "कर वसूलने का तरीका भ्रष्ट व आर्थिक हानि का, सामाजिक दृष्टि से अप्रतिरक्षणीय था। अप्रत्यक्ष करों को वसूलने के तरीके तो अत्यन्त दुःखदायी और पाश्विक थे। कर प्रणाली इस दृष्टि से भी दोषपूर्ण थी कि करों की दरें विभिन्न प्रांतों में भिन्न–भिन्न थीं। करों की असमानता की यह स्थिति थी कि किसी वस्तु के एक स्थान से दूसरे स्थान के मूल्य में कभी–कभी 30 गुना फर्क होता था। कतिपय जिले कर के भार से पूर्णतः मुक्त थे, जिनका संपूर्ण भार अन्य जिलों के द्वारा वहन किया जाता था। देश की आर्थिक दुर्व्यवस्था को वाणिज्य–व्यापार को प्रोत्साहन देकर भी सुधारा जा सकता था, परन्तु सरकार की वाणिज्य नीति इतनी अनियन्त्रित एवं दोषपूर्ण थी कि उससे राज्य में उत्पादन एवं व्यापार का विकास संभव नहीं था। वस्तुओं के उत्पादन पर अभी तक मध्यकाल से चली आ रही श्रेणियों के नियंत्रण लगे हुये थे। जो वस्तुएँ उत्पन्न होती थीं उनको देश में ही इधर–उधर ले जाने से प्रत्येक प्रान्त की सीमा पर चुंगी देनी पड़ती थी जिससे वे बाजार में बहुत महंगी बिकती थीं।

इस प्रकार क्रांति से पूर्व फ्रांस की आर्थिक व्यवस्था खर्चीली, अव्यवस्थित एवं अन्यायपूर्ण यह थीं। यह कहावत चरितार्थ हो चली थी कि **"सामंत लड़ता है, पादरी पूजा करता है और सामान्य जन कर देता है।"** सामान्य जन करों के भार से दबा जा रहा था। राज्य की आर्थिक स्थिति दिवालियापन की थी। अदूरदर्शी शासकों ने आर्थिक व्यवस्था को उस कगार पर लाकर छोड़ दिया, जहाँ उसके सुधार का कोई उपाय नहीं हो सकता था। "आर्थिक कारण ने क्रांति को शीघ्र अवक्षेपित कर दिया।"

(c) राजनैतिक कारण

क्रांति के कारण उसी समाज और व्यवस्था में थे, जिसे पुरातन व्यवस्था कहते हैं। पुरातन व्यवस्था का अध्ययन करने पर ही यह स्पष्ट हो सकेगा कि फ्रांस क्रांति के कगार पर कैसे आ खड़ा हुआ? क्या 1789 ई. की क्रांति निरंकुशता की अपेक्षा असमानता के विरुद्ध अधिक थी? क्या क्रांति पुरातन घिसी–पिटी शासन व्यवस्था के विरुद्ध मध्यम वर्ग का आंदोलन थी? क्या बौद्धिक जागरण के बिना क्रांति न होती? फ्रांस की राज्य क्रांति के लिए वहाँ राजनीतिक व्यवस्था बहुत हद तक उत्तरदायी थी। अतः क्रांति के पूर्व की राजनीतिक व्यवस्था का संक्षिप्त विवरण यहाँ प्रस्तुत है।

राजनीतिक व्यवस्था

लुई चौदहवें का शासनकाल – फ्रांस में वंशानुगत राजतंत्र था। राजा स्वयं को पृथ्वी पर परमेश्वर का प्रतिनिधि मानता था। **लुई चौदहवें** के शासनकाल में फ्रांस में निरंकुश राजतंत्र अपने गौरव एवं शक्ति की पराकाष्ठा पर पहुँच गया। उसने **"मैं ही राज्य हूँ"** कहकर अपनी निरंकुश सत्ता का परिचय दिया। वह अपनी इच्छानुसार कानून बनाता था, कर वसूल करता था और राजकीय आय को मनमाने ढंग से खर्च करता था। **लुई सोलहवाँ** (1774–1793 ई.) कहा करता था कि **"यह चीज इसलिए कानूनी है कि मैं यह चाहता हूँ।"** राजा अपने राज्य में जिसे चाहता, कैद कर सकता था और बिना मुकदमा चलाये, जो चाहे सजा दे सकता था। राजा ही नहीं उसका कोई भी कृपापात्र इस अधिकार का उपभोग कर सकता था। इसके लिए

उसे केवल राज्य की मुद्रा वाले पत्र की आवश्यकता थी। ऐसे पत्र राजा की ओर से किसी व्यक्ति को गिरफ्तार करने और दण्ड देने के लिए जारी किये जाते थे, परन्तु राजा के कृपापात्र ऐसे मुद्रायुक्त पत्र प्राप्त कर लेते थे, जिनमें गिरफ्तार किये जाने वाले व्यक्ति का स्थान खाली रहता था। ऐसी अवस्था में किसी भी व्यक्ति की स्वतंत्रता सुरक्षित नहीं थी।

NOTES

संक्षेप में, राजा पूर्णतः स्वेच्छाचारी एवं असीमित शक्तियों का उपभोग करने वाला था। राजा के असीमित अधिकारों पर किसी भी प्रकार का अंकुश लगाने वाली कोई जन प्रतिनिधि सभा या संसद नहीं थी। फ्रांस में एस्टेट्स जनरल नामक एक प्रतिनिधि सभा अवश्य थी, किन्तु 1614 ई. के बाद उसका कोई अधिवेशन नहीं बुलाया गया था। अतः लोग इसके चुनाव एवं संगठन की जानकारी भी भूल चुके थे। ऐसी स्थिति में फ्रांस में यदि कोई संस्था ऐसी थी, जो राजा के स्वेच्छाचारी आचरण पर अंकुश लगा सकती थी, तो यह पार्लमाँ थी, जिनकी संख्या तेरह थी। इनमें पेरिस की पार्लमाँ अधिक शक्तिशाली थी। पार्लमाँ कोई प्रतिनिधि सभा नहीं थी अपितु इनकी स्थिति उच्च न्यायालयों के समान थी। न्याय करने के अतिरिक्त पार्लमाँ का एक प्रमुख कार्य राजा के आदेशों को कानून के रूप में पंजीकृत करना पड़ता था। पार्लमाँ किन्हीं आदेशों को पंजीकृत करने से मना कर सकती थी और विरोध प्रदर्शित कर जनता का ध्यान आकर्षित कर सकती थी, परन्तु यदि राजा उसे दुबारा निर्देश दे, तो पार्लमाँ को उस आदेश को पंजीकृत करना पड़ता था लेकिन क्रांति के पूर्ववर्ती वर्षो में पार्लमाँ के अनुचित कानूनों को पंजीकृत करने से इन्कार कर दिया था। अन्य संस्थाओं के अभाव में पार्लमाँ सरकारी नीतियों के प्रति जनता का ध्यान यदा–कदा आकृष्ट करती थी और लोगों को यह बताती थी कि देश के मूलभूत कानून को मनमाने ढंग से बदलने का अधिकार राजा का नहीं है। पार्लमाँ के न्यायाधीश वे लोग थे, जिन्होंने पदों को खरीद कर कुलीनता प्राप्त कर ली थी। अब वे वंशानुगत हो गये थे।

लुई सोलहवें का चरित्र :– निरंकुश शासन की सफलता शासक की योग्यता एवं कुशलता पर निर्भर रहती थी, किन्तु **लुई चौदहवें** का उत्तराधिकारी लुई पन्द्रहवाँ अकर्मण्य था। शासनतंत्र को सुधारने के बजाय वह आमोद –प्रमोद एवं विलासितापूर्ण जीवन में डूबा रहा। जब उसके कुछ योग्य परामर्शदाताओं ने उसे सुझाव दिया कि फ्रांस में सुधार किये जाने की अत्यधिक आवश्यकता है, तो विलासी लुई पन्द्रहवें ने सुधार करने के स्थान पर जवाब दिया कि **"वर्तमान व्यवस्था में भी उसका समय नष्ट हो जायेगा।"** उसके शासनकाल में फ्रांसीसी राजतंत्र अपमानित होने लगा तथा फ्रांस का विदेशों में अपमान होने लगा। स्वयं लुई पन्द्रहवें ने अपनी मृत्यु के समय कहा था, "मेरे मरने के बाद प्रलय होगी।" ऐसी निराशाजनक स्थिति में लुई सोलहवाँ गद्दी पर बैठा।

क्रांति का श्रीगणेश लुई सोलहवें के शासनकाल में हुआ। वैसे तो फ्रांस के लोग लुई पन्द्रहवें की मृत्यु पर बड़े प्रसन्न हुए थे और लुई सोलहवें के राज्याभिषेक पर बहुत प्रसन्न हुए थे। उनकी धारणा यह थी **"लुई सोलहवाँ उत्तरदायित्व का अनुभव करता है तथा उसकी धारणाएँ भी सुन्दर हैं। उसके हृदय में प्रजा के लिए स्थान है और वह उसे समृद्ध देखना चाहता है।"** परन्तु जनता की यह धारणा असत्य सिद्ध हुई। नेपोलियन ने एक बार कहा था कि जब लोग किसी सम्राट को दयावान बतलावें तो समझ लेना चाहिए कि उसका शासन असफल सिद्ध होगा। नेपोलियन की धारणा लुई सोलहवें के साथ पूर्णतः सत्य सिद्ध हुई। उसमें नेतृत्व की क्षमता नहीं थी। उसमें न तो स्वयं निर्णय कर सकने की क्षमता थी और न ही वह किसी दूसरे की सही सलाह समझा सकता था। वह बुद्धिहीन तो नहीं था, किन्तु निरर्थक कार्यो में अपना समय बर्बाद करता था। राज्य की समस्याओं में उसको कोई विशेष रुचि नहीं थी। "घटनाओं को दिशा देने के बजाय, वह स्वयं धारा के साथ बह जाता था। समस्त बूर्बो राजाओं के समान उस पर उसकी पत्नी **मेरी आंत्वानेत** का बहुत प्रभाव था। वह आस्ट्रिया के सम्राट जोसेफ द्वितीय की बहन और दिवंगत महारानी मेरिया थेरीसा की पुत्री थी। यद्यपि उसमें निर्णय लेने की क्षमता थी किन्तु वह अभिमानी, जिद्दी, विवेकहीन एवं फिजूलखर्ची महिला थी। राज कार्यो

के संचालन का उसे कोई अनुभव न था। वह लुई को न तो सही सलाह दे सकती थी और न ही उससे प्रेम करते हुये उसके हित की बात सोच सकती थी। वह सदा लोभी चाटुकारों से घिरी थी, जो उस समय की व्यवस्था से लाभ उठाने में नहीं चूकते थे। राज कार्यों में उसके अनावश्यक हस्तक्षेप के कारण शासन की कठिनाइयों में वृद्धि हुयी।

अनेक इतिहासकारों ने इस महान क्रांति का उत्तरदायी उसे ही बताया है। सम्राट धर्म का कट्टर था। वह कैथोलिक धर्म का परम अनुयायी था। इसका परिणाम यह हुआ कि वह धर्म के क्षेत्र में अन्य धर्मों के प्रति असहिष्णु बन गया। इससे अन्य धर्मावलंबी उसके विरोधी हो गये। सम्राट की कट्टरता ने शिक्षित वर्ग को भी रुष्ट कर दिया। लुई अपने समय की सामाजिक समस्याओं को सही रूप में न समझ सका। उसके विचार अच्छे थे तथा वह सुधारों के पक्ष में भी था, परन्तु वह अपनी बुद्धि से यह नहीं जान सका कि मुझे इस समय कौन से सुधार करना उचित होगा। यह सत्य है कि लुई सोलहवाँ फ्रांस की तत्कालीन आर्थिक अवस्था से अवगत था। उसमें वह सुधार भी करना चाहता था और इसी दृष्टि से उसने निजी खर्च में कमी की थी और योग्य अर्थशास्त्रियों को मंत्री पदों पर नियुक्त किया था, परन्तु उसकी यह योजना सामन्त वर्ग के कारण सफल न हो सकी। लुई सोलहवें का स्वास्थ्य अधिक अच्छा नहीं था। वह कठोर परिश्रम करने व अधिक समय तक प्रशासनिक कार्यों में भाग लेने में असमर्थ था। वह किसी भी ठोस प्रस्ताव पर अपना मत व्यक्त नहीं कर सकता था। इसका प्रमुख कारण यह था कि उसे स्वयं पर विश्वास नहीं था। उसे स्वयं के कार्यों पर संदेह होने लगता था। इसी कारण वह अन्य सलाहकारों की बातों में आ जाता था। लुई अपने किसी भी निश्चय पर अटल नहीं रहता था। लुई स्वयं राजनीतिज्ञ एवं दूरदर्शी नहीं था। साथ ही सामन्तों के विरोध के कारण वह सदैव सुयोग्य सलाहकारों के अभाव में रहा और इस अभाव के कारण वह फ्रांस की राज्य क्रांति को शान्त रखने में सर्वथा असमर्थ रहा। उसमें अच्छे सेनानायक के गुण न थे जिनकी कि उस समय अत्यन्त आवश्यकता थी। उसने राज्य में लाखों की बचत कर दिखाई, देश का उत्पादन बढ़ाने हेतु उसने श्रेणियों का अंत कर दिया, परन्तु उसकी इस नीति का वार्साय के प्रासाद में पलने वाले तथा विशेषाधिकारों से सुसज्जित सामन्तों व सटोरियों ने विरोध किया। पेरिस की संसद ने भी मुक्त अनाज के व्यापार का विरोध किया। उसने कोरवी नामक घृणित कर को समाप्त कर दिया। इस कर के अन्तर्गत किसानों को बिना वेतन के सड़कों पर कार्य करना पड़ता था। इस कर की पूर्ति के लिए उसने सभी भूस्वामियों पर एक समान कर लगा दिया। इस कर से सामन्तों की क्रोधाग्नि भड़क उठी। उन्होंने रानी को अपने पक्ष में कर लिया। रानी के विरोध के आगे राजा को झुकना पड़ा और तुर्गो को उसने पद से हटा दिया।

साधारणतः यह माना जाता है कि फ्रांस के राजाओं की शान–शौकत एवं विलासिता पर कोई अंकुश न था। राजा–रानी और उनके संबंधी तथा कृपापात्र फ्रांस की राजधानी पेरिस से बाहर बारह मील दूर वार्साय के विशाल प्रासादों में ऐश्वर्यपूर्ण जीवन व्यतीत करते थे। यूरोप के अन्य राजाओं के लिए वार्साय के महल अपने वैभव की वजह से ईर्ष्या के कारण बने हुये थे। वार्साय में 18000 व्यक्ति निवास करते थे, जिनमें 16000 केवल नौकर–चाकर ही थे। अन्य लोगों में राज परिवार के लोग एवं उनके अतिथि और राजा के कृपापात्र सामन्त लोग थे। अकेली रानी के 500 नौकर थे। वस्तुतः वार्साय में विलासिता एवं शान–शौकत का कोई अंत न था। राजा और रानी अपने कृपापात्रों को खुले हाथ अनाप–शनाप धन का वितरण किया करते थे। ऐसा अनुमान है कि क्रांति के पूर्व वार्साय में होने वाला खर्चा 200 लाख डालर प्रतिवर्ष था। जनता की कमाई को पानी की तरह वार्साय में बहाया जाता था। बहुत अधिक अपव्ययता के कारण दरबार को **"राष्ट्र की समाधि"** कहा जाने लगा था।

शासन में भ्रष्टाचार :– लुई सोलहवां स्वयं स्वेच्छाचारी एवं निरंकुश तो था ही पर साथ में ही वह अयोग्य था। उसमें आदमी की परख व सूझबूझ नहीं थी। इसके कारण उच्च पदों पर अयोग्य अधिकारी ही नियुक्त किये जाते थे। चाटुकार अयोग्य होते हुए भी उच्च एवं

उत्तरदायित्वपूर्ण पद प्राप्त कर लेते थे। इसके अलावा उच्च पद नीलाम किये जाते थे और उनको सामन्तों के पुत्र ही प्राप्त करते थे। वे योग्य एवं निष्क्रिय होते थे। वे लोग धन के बल से ही शक्ति में आते थे तथा धन कमाना ही वे अपना परम धर्म समझते थे। उच्च पदों पर मध्यम–वर्ग के वे आदमी स्थान नहीं पाते थे तथा धन कमाना भी वे अपना परम धर्म समझते थे, जो कि बौद्धिक एवं क्रियाशील होते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि फ्रांस का शासन दिनोंदिन जर्जर होता गया और राज्य में शान्ति व व्यवस्था कूच करने लगी। जन साधारण उस शासन व्यवस्था का विरोध करने लगी।

शासन की कुशलता का प्रभाव :– लुई चौदहवें ने शासन–व्यवस्था को ठीक करने का प्रयास किया था। उसने सामन्तों के अधिकारों पर भी प्रहार किया। परन्तु उसकी मृत्यु के उपरान्त शासन–व्यवस्था पुनः अस्त–व्यस्त हो गई। लुई पन्द्रहवें के शासन में यह अवस्था और भी दयनीय होगी। उसने शासन की ओर ध्यान दिया ही नहीं। उसके शासनकाल में अयोग्य अधिकारी राजकीय सेवाओं में भर लिये उनका कार्य सरकारी आय पर केवल ऐश करना था। वे चरित्रहीन होते थे। प्रशासन की ओर वे तनिक भी ध्यान नहीं देते थे। लुई सोलहवें ने प्रारम्भ में कुछ सुधार करना चाहा, परन्तु दरबार के स्वार्थी एवं निष्क्रिय अधिकारियों ने उसे इसमें सफल न होने दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि सरकार में अयोग्य कर्मचारी निरन्तर स्थान पाते रहे। उसके कार्यों से जनता परेशान थी और शासन व्यवस्था में परिवर्तन चाहती थी।

नेकर (1776–81) :– तुर्गो का पद बाद में **लुई नेकर** को दिया। वह जिनेवा का महाराजा था। वह प्रोटेस्टेण्ट धर्मावलंबी था और इसी कारण वह अपने प्रयत्नों से ही दरिद्र से एक धनी व्यक्ति बना था, परन्तु उसे धन का लालच न था। उसमें अपने युग की मानवता थी। आर्थिक नीति में वह तुर्गो का समर्थक था। अतः उसने भी आय–व्यय को संतुलित करने के विचार से व्यर्थ के खर्चों पर रोक लगाने का प्रयत्न किया, परन्तु उसने जैसे ही मितव्ययिता का प्रस्ताव रखा दरबार में उसका भी विरोध होने लग गया और 1781 ई. में जब उसने राज्य की आय–व्यय की रिपोर्ट प्रकाशित कराई तो दरबारी सामन्त बौखला उठे। यह प्रथम अवसर था जब कि राज्य की आय व व्यय का ब्यौरा जनता के समक्ष प्रस्तुत किया गया। इस रिपोर्ट से यह भी स्पष्ट हो गया कि दरबारियों की पेंशन में प्रतिवर्ष कितना धन व्यर्थ खर्च कर दिया जाता है। यह विरोध इतना प्रबल हुआ कि उसे 19 मई, 1781 ई. को अपना त्यागपत्र देना पड़ा।

केलोन 1783–87 :– नेकर का त्याग–पत्र स्वीकार कर लुई ने केलोन को महानियन्त्रता नियुक्त किया। उसकी नियुक्ति में रानी आन्तवानेत का विशेष हाथ था। इसके पद संभालने के समय फ्रांस की आर्थिक व्यवस्था अत्यन्त दयनीय थी। उसकी आर्थिक नीति एक विशेष सिद्धान्त पर ही आधारित थी। उसका कहना था कि जिनको उधार लेना है उन्हें धनी बनकर रहना चाहिए ताकि लोग चकाचौंध रह जायें। इसकी नीति का परिणाम यह हुआ कि राजकीय खर्च कम होने के बजाय दिनोंदिन बढ़ने लगा और धन की कमी को पूरा करने के लिए वह कर्ज पर कर्ज लेता चला गया। उसकी नीति से दरबारी सामन्त अवश्य प्रसन्न हुए, परन्तु उसने अपने अल्पकाल में सरकार पर तीस करोड डालर का ऋण और लाद दिया। 1786 ई. में उसे पता लगा कि शाही कोष अब पूरी तरह से खाली हो चुका है और फ्रांस में अब कोई ऐसा मूर्ख नहीं बचा है जो सरकार को ऋण देने को उद्यत हो। इस स्थिति ने उसके सुनहले स्वप्नों को समाप्त कर दिया तथा तुर्गो की नीति पर चलने को बाध्य कर दिया। उसने राजा को सुझाया कि एक सामान्य कर लगाया जावे और वह कर सामान्य जनता तथा सामन्त दोनों से वसूल किया जावे। इसका परिणाम यह हुआ कि सामन्त लोग अब उसका भी विरोध करने लगे। इसी स्थिति में उसने राजा को सुझाव दिया कि वह तीनों सदनों में मनोनीत सदस्यों की एक परिषद आमन्त्रित करें और नवीन कर लगाने की अनुमति उससे प्राप्त करें। महत्वपूर्ण सामन्तों ने इस सुझाव का भी विरोध किया। राजा सामन्तों को नाराज नहीं कर सकता था। अतः वह केलोन के प्रस्ताव से

सहमत नहीं हुआ। ऐसी परिस्थिति में केलोन ने भी 1787 ई. अपने पद से त्याग–पत्र दे दिया।

लौमनि द बीने :– वह केलोन का उत्तराधिकारी बना। वह तुर्गो व वाल्तेयर का मित्र था। उसने भी अपने पूर्वजों की भाँति कर लगाने का प्रस्ताव रखा। प्रथम दो वर्गों ने उसका भी विरोध किया। पेरिस की संसद ने भी उसका विरोध किया और राजा को सुझाव दिया कि वह नवीन करों की स्वीकृति के लिए स्टेट्स जनरल की बैठक बुलाये। लुई ने पहले तो संसद को आतंकित करने का प्रयास किया परन्तु अन्त में पेरिस की संसद के आगे उसे झुकना पड़ा। उसने एस्टेट्स जनरल का अधिवेशन बुलाया और साथ में ही नेकर को पुनः वित्त मंत्री के पद पर आसीन किया। उसने आते ही 30 प्रतिशत फण्ड एकत्र कर दिया, परन्तु अब वह समय नहीं रहा था। जब कि वह फ्रांस की दयनीय अवस्था को उन्नत कर सकता। अतः उसने भी बैठक बुलाने की ही सलाह दी।

शासन प्रणाली की अक्षमता

क्रांति के पूर्व फ्रांस की शासन प्रणाली अक्षम, भ्रष्ट और खर्चीली थी। एकरूपता का अभाव फ्रांस की शासन व्यवस्था की बहुत बड़ी कमजोरी थी। शासन का प्रमुख राजा था। उसकी सहायता के लिए पाँच समितियाँ थीं, जो कानूनी बनातीं, राजा की तरफ से आदेश जारी करती तथा राज्य के घरेलू तथा वैदेशिक मामलों की देखभाल करती थीं। प्रान्तीय शासन के लिए समस्त देश दो प्रकार के प्रान्तों में बाँटा गया था। एक प्रकार के प्रान्त **गवर्नमेन्ट** कहलाते थे, जिनकी संख्या 40 थी। इनमें अधिकांश फ्रांस के प्राचीन प्रान्त थे और उनका शासन में कोई भाग न था। उनके गवर्नर उच्च वर्ग के कुलीन थे और राज्य से वेतन के रूप में बहुत धन पाते थे। इनका काम केवल राज्य दरबार में पड़े रहकर ऐश्वर्य का जीवन व्यतीत करना रह गया था। शासन का वास्तविक कार्य दूसरे प्रकार के 34 प्रांतों में होता था। ये प्रांत **जेनेरालिते** कहलाते थे। शासन राजा द्वारा नियुक्त एतांदाँ द्वारा किया जाता था। यह अधिकारी उच्च बुर्जुआ या कुलीन वंश के होते थे और राजा के प्रति उत्तरदायी थे। वे स्थानीय, शांति, सुरक्षा, कर संग्रह आदि का निरीक्षण एवं नियंत्रण करते थे। व्यवहार में एतांदाँ की शक्तियों पर कोई प्रतिबंध न था। वे जनता की आवश्यकता या कठिनाइयों की ओर ध्यान न देकर केवल राजा की आज्ञा का पालन करते और अपनी आय बढ़ाने का प्रयत्न करते रहते थे। अपने प्रांत में उनकी शक्ति उसी प्रकार असीमित थी, जैसी कि केन्द्र में राजा की।

स्थानीय स्वशासन का अभाव – फ्रांस में स्थानीय स्वशासन का कोई अस्तित्व न था। स्थानीय प्रशासन भी वर्साय के राजमहल से ही संचालित होता था किसी व्यक्ति अथवा संस्था को सार्वजनिक क्षेत्र में कार्य करने का अधिकार प्राप्त नहीं था। स्थानीय कर्मचारियों को छोटी–छोटी बातों के लिए राजधानी से आदेश प्राप्त करना पड़ता था। इस प्रकार प्रशासन में जनता का हाथ न होने के कारण उसे प्रशासन का अनुभव प्राप्त न हो सका। यही कारण है कि क्रांति–काल में जब जनता ने शासन सूत्र अपने हाथ में लिये, तो उसने अनेक भूलें कीं।

कानून और न्याय का भ्रष्ट होना – शासन के अन्य अंगों की भाँति कानून और न्याय के क्षेत्र में अव्यवस्था एवं भ्रष्टाचार व्याप्त था। देश में कानून की कोई एक प्रामाणिक संहिता नहीं थी। पूरे देश में लगभग 385 प्रकार के न्याय–विधान प्रचलित थे। फ्रांस में प्रचलित कानूनों की भिन्नता के संबंध में प्रसिद्ध विचारक **वाल्तेयर** ने कहा था, किसी व्यक्ति को फ्रांस में यात्रा करते समय सरकारी कानून उसी प्रकार बदलते हुये मिलते हैं, जिस प्रकार उसकी गाड़ी के घोड़े बदलते हैं।" कहाँ कौन–सा कानून लागू होगा? कोई नहीं जानता था। देश में कई प्रकार के न्यायालय थे, किन्तु इन न्यायालयों के क्षेत्राधिकार अस्पष्ट थे। अतः यह ज्ञात करना मुश्किल था कि कौन से न्यायालय में किस विवाद का निर्णय होगा? न्यायिक पदों को बेचने की परम्परा से न्यायिक व्यवस्था बदतर हो गयी थी। पैसे पर आधारित व्यवस्था में तीसरे वर्ग के लोग तो न्याय की आशा ही नहीं कर सकते थे। राजा की विशेष मुद्रा वाले पत्रों द्वारा किसी भी व्यक्ति

NOTES

को बिना अभियोग के जेल में डाल दिया जाता था। **दिदरो और वाल्तेयर**–जैसे विचारकों को बास्तील के दुर्ग में कैद की सजा भुगतनी पड़ी थी। दण्ड व्यवस्था भी कठोर एवं पक्षपातपूर्ण थी। कुछ अपराधों के लिए कुलीन वर्ग के लोगों को किसी प्रकार की सजा नहीं मिलती थी। किसी–किसी मामले में जागीरदार न्यायाधीश का काम करने के साथ–साथ वादी अथवा प्रतिवादी का काम भी कर सकता था। न्याय प्रणाली की एक बुराई यह भी तो थी कि अदालतों की भाषा लैटिन थी, जिसे फ्रांसीसी भाषा जानने वाली आम जनता समझ नहीं पाती थी।

फ्रांस की तत्कालीन राजनीतिक स्थिति के बारे में **कैटलबी** ने लिखा है, **"शासकों की नीति सिद्धांत पर नहीं, इच्छा पर निर्भर थी, इसलिए कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिये कि क्रांतिकारियों की सबसे पहली माँग संविधान के लिए थी, जिससे उनका अभिप्राय था– देश में कुछ व्यवस्था, कुछ संगठन हो।"** फ्रांस की अराजकतापूर्ण की स्थिति के मामलें में व्यंग्य रूप में कहा था, **"बुरी व्यवस्था का तो कोई प्रश्न नहीं, कोई व्यवस्था ही नहीं थी।"** इस प्रकार राजनीतिक स्वेच्छाचारिता और अकुशल तथा भ्रष्ट प्रशासन के कारण जनता की सहनशीलता जवाब दे गई और असंतोष क्रांति के रूप में सामने आया।

बोध प्रश्न

1. क्रांति के पूर्व फ्रांस की स्थिति का वर्णन कीजिए।

   ....

   ....

   ....

2. फ्रांस की क्रांति के कारण लिखिए?

   ....

   ....

   ....

5.6 फ्रांस की क्रांति में दार्शनिकों का योगदान (CONTRIBUTION OF PHILOSOPHERS IN THE FRENCH REVOLUTION)

अठारहवीं सदी के प्रारंभ से ही फ्रांस के विचारक राजनीतिक स्वतंत्रता पर जोर दे रहे थे और इस सदी के अन्त में यह भावना और भी प्रबल हो गई थी। इसका प्रमुख कारण अमेरिका का स्वतंत्रता संग्राम था।

बौद्धिक जागरण का योगदान

अठारहवीं शताब्दी के अनेक प्रतिभाशाली दार्शनिकों और साहित्यकारों ने फ्रांस की पुरातन व्यवस्था की बुराइयों की कटु आलोचना करके अपनी लेखनी द्वारा युग के असंतोष, क्रोध और आकांक्षाओं की व्यापक रूप से अभिव्यक्ति की। **मान्तेस्क्यू, वाल्तेयर, रूसो, दिदरो** तथा अन्य अनेक विचारकों के साहित्य ने मानसिक जगत को गहराइयों तक आंदोलित कर दिया। उन्होंने राजनीति, धर्म, समाज, व्यवसाय आदि से संबंधित विचारों को नया आयाम एवं संवेग दिया। तत्कालीन साहित्य आशावादी, विश्लेषणात्मक, कटु आलोचक, संदेहमूलक, निर्भीक तथा वैज्ञानिकता की छाप से युक्त था। साहित्य क्रांति के स्पंदन एवं संवेगों तथा अपरिमित विश्वास से भरा हुआ था। इस ज्वलनशील साहित्य के निःश्वास से स्वतत्रता का प्रेम और न्याय की अभिलाषा निकलकर वायुमण्डल में फैल गयी और उसने मंथन को आलोडित किया, जिससे भविष्य में फलीभूत होने वाली महान घटनाओं एवं क्रियाओं का मार्ग प्रशस्त हुआ।

अठारहवीं सदी में फ्रांस ने वैचारिक स्तर पर परम्परागत विचारों को त्याग कर विवेकपूर्ण दृष्टिकोण अपनाया और यूरोपीय जनता को जागरूक करने में मदद की। जागृति का यह कार्य फ्रांस के प्रबुद्ध वर्ग ने किया, जिनमें **मान्तेस्क्यू, वाल्तेयर, रूसो, दिदरो, क्वेस्ने, तुर्गो, डी एलम्बर्ट** आदि प्रमुख थे। इन विचारकों ने लोगों को स्वतंत्र चिन्तन की प्रेरणा दी। इनके विचारों की मुख्य विशेषता थी– **"उदार प्रगतिशील एवं आदर्श समाज की स्थापना।"** ये विचारक, जिनमें अनेक कुलीनवर्गीय या मध्यमवर्गीय व्यक्ति थे। अनेक गोष्ठियों द्वारा वर्तमान व्यवस्था की बुराइयों पर विचार–विमर्श करते थे। ये मुक्त व्यापार का समर्थन करते थे। करों में व्याप्त असमानता समाप्त करना चाहते थे। प्रशासन में स्वायत्त शासन के अधिकारों के पक्षपाती थे। यह बहुत सीमा तक ब्रिटेन की राजनीतिक व्यवस्था से प्रभावित थे। इन्होंने भावी व्यवस्था के लिए अनेक उपयोगी सुझाव दिये। इनकी लेखनी ने असमानता, शोषण, अत्याचार, धार्मिक असहिष्णुता, भ्रष्ट तथा निरंकुश राजतंत्र, आर्थिक नियंत्रण, निम्नवर्ग की विपन्नता, प्रशासनिक एवं न्यायिक दोषों को उजागर किया। इन्होंने विशेषाधिकारों एवं अन्याय पर आधारित धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक संस्थाओं पर कई प्रश्नचिह्न खड़े किये। मानव मस्तिष्क को पुराने विचारों से मुक्त कराने का आह्वान इन लेखकों द्वारा किया जा रहा था। लेखक फ्रांसीसी समाज के असंतोष को उभार रहे थे। वे जनता को प्रेरणा दे रहे थे। संसद–विहीन देश में साहित्यकार ही राजनीतिज्ञ हो गये थे। उन्होंने फ्रांस की संस्थाओं के खोखलेपन को अनेक तरह से प्रकट कर दिया। व्यंग्य तथा हास्य द्वारा, आलोचना और तुलना द्वारा, वैज्ञानिक व्याख्या द्वारा, समाजशास्त्रीय विचारधारा द्वारा और स्पष्ट निन्दा द्वारा।

इस समय के बौद्धिक आंदोलन ने जीवन के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण का प्रयोग किया। आशावादिता इस समय के चिन्तन का प्रमुख गुण दिखाई देता है। तत्कालीन स्थितियों और दोषों से निरुत्साहित होने के स्थान पर लोगों के मन में उज्ज्वल भविष्य के दर्शन होते हैं। अठारहवीं शताब्दी के बौद्धिक जागरण की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि इस समय के चिन्तन का केन्द्र मनुष्य था। मानव कल्याण को परम लक्ष्य स्वीकार किया गया कि राज्य, चर्च तथा अन्य संस्थाओं को केवल मनुष्य के लिए ही प्रयत्नशील रहना चाहिए।

यह प्रश्न विवादास्पद है कि प्रबुद्धवादियों का बौद्धिक आंदोलन फ्रांस की राज्य क्रांति के लिए कहाँ तक उत्तरदायी था ? प्रायः बौद्धिक चेतना को क्रांति की आत्मा कहा जाता है और क्रांति का श्रेय दार्शनिक लेखकों एवं प्रबुद्ध वर्ग को दिया जाता है। स्वयं **नेपोलियन** का कथन था कि **"यदि रूसो न हुआ होता, तो फ्रांसीसी क्रांति संभव नहीं होती।"** अपनी लेखनी के बल से लोगों को इन राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक बुराइयों के प्रति जागरूक बनाने का काम फ्रांसीसी लेखकों एवं दार्शनिकों ने ही किया अन्यथा बुराइयाँ तो पहले भी व्याप्त थीं, तब क्रांति क्यों न हुयी? **जार्ज एलन 'फ्रेंच रिवोल्यूशन'** के खण्ड एक में लिखता है कि फ्रांस की क्रांति होने के कारण, वहाँ लोगों का दुःख तथा उन पर होने वाले अत्याचार नहीं थे, बल्कि उसका कारण बुद्धिवादी वर्ग के विचार थे। यह वर्ग समाज, राज्य तथा प्रशासन में व्याप्त बुराइयों का आलोचक था। फ्रांसीसी क्रांति बौद्धिक आंदोलन एवं भौतिक दुःखों के सम्मिश्रण से उत्पन्न हुयी थी। बौद्धिक आंदोलन ने ही भौतिक दुःखों का अधिक व्यापक रूप से विरोध किया था। अतः मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि दार्शनिकों ने क्रांति को जन्म दिया।

लेखकों ने मिलकर अधिकांश लोगों की यह मानसिकता तो बना ही दी कि फ्रांस में जो है, वह अपर्याप्त और त्रुटिपूर्ण है। उन्होंने नेताओं का एक दल तैयार कर दिया और उनके लिए कुछ निश्चित सिद्धांत, मुहावरे और बहस के मसले प्रस्तुत किये। यही नहीं, उनके मन में एक बलवती आशा जगाकर उनकी सफलता का मार्ग प्रशस्त किया। उन्होंने फ्रांस की व्यवस्था में व्याप्त दोषों एवं बुराइयों को अद्भुत ढंग से उजागर कर दिया, उन लोगों को इन बातों पर

बहस करने के लिए मजबूर किया और लोगों का ध्यान आकृष्ट किया, लोगों को इन बातों पर बहस करने के लिए मजबूर किया और लोगों का जोश बढ़ाया। कुल मिलाकर कम से कम यह तो कहा जा सकता है कि विचारक और लेखक चाहे क्रांति के कारण नहीं थे, किन्तु उसे सह–परिणामी निश्चय ही थे और उन शक्तियों के, जो फ्रांसीसी जीवन की समान सतह के नीचे उमड़–घुमड़ रहे थे। वे ज्वालामुखी विस्फोट के साथ उत्पन्न होने वाले उस तीव्र ताप के समान थे, जो अपने संपर्क में आने वालों को तीव्र गर्माहट दिये बिना नहीं रहता। उसके विचारों की गर्माहट ने स्थापित सत्ता एवं व्यवस्था से बुद्धिजीवियों के संबंध को एकदम भंग कर दिया। यह सच है कि उन्होंने समाज और राजनीति की बुराइयों पर आघात किया और सुधार लाने की प्रेरणा प्रदान की लेकिन धर्म का विरोध और भौतिक मान्यताओं पर जोर देकर उन्होंने लोगों का नैतिक ह्रास किया, जिससे लोग बहुत ही स्वार्थी हो गये। दार्शनिकों की बहुत सी रचनाओं को बेकार समझकर लोगों ने पढ़ा भी नहीं।

सन् 1751 से 1772 ई. **"इनसाइक्लोपीडियाओं"** की रचना हुई। लेकिन इससे पहले ही फ्रांस के लोगों के बीच आर्थिक और राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त करने की इच्छा थी। **"मौन्तेस्क्यू"** की रचना से पहले ही ये भावनाएँ लोगों के दिल में घर कर गयी थीं। अगर अठारहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में स्वतंत्रता की इच्छा बलवती हो गयी तो इसका मुख्य कारण दार्शनिकों का प्रभाव नहीं था, बल्कि अंग्रेजों की स्वतंत्रता और अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम की सफलता थी। फ्रांस में जो वित्तीय संकट और करों का बोझ था उससे सरकार की कमजोरी और असफलता सामने आ गयी थी। उसके लिए दार्शनिक लोग कतई जिम्मेदार नहीं थे। अमेरिकी क्रांतिकारियों ने लगभग वे ही सिद्धान्त अपनाए थे, जो फ्रांसीसी क्रांतिकारियों ने, लेकिन अमेरिका में वे बुराइयाँ नहीं आ सकीं, जो फ्रांस में आयीं। फ्रांस में जो रक्तपात हुआ वे इन दार्शनिकों के सिद्धान्तों से सम्बन्धित नहीं थे, बल्कि चालाक वक्ताओं की उच्चाभिलाषाओं से सम्बन्धित थे। ये रक्तपात दार्शनिक के कहने के सर्वथा प्रतिकूल थे। स्वतंत्रता, समानता और भाईचारे के प्रसिद्ध सिद्धान्त से ये कतई मेल नहीं खाते थे। यह कहना अतिशयोक्ति है कि रूसो ने ही पहले पहल जनता की प्रभुसत्ता का राग अलापा। वस्तुतः सोलहवीं सदी में इंग्लैण्ड वाले इस सिद्धान्त से सहमत हो चुके थे। ईसाई धर्म ने यह अच्छी तरह स्पष्ट कर दिया था कि सभी आदमी बराबर हैं। राज्य की रक्षा के लिए कोई भी काम बुरा नहीं है– यह सिद्धान्त भी कोई नया नहीं था। दूसरे पक्ष के तर्क सत्यांश से रहित नहीं हैं, लेकिन अधिकांश आधुनिक विद्वान स्वीकार करते हैं कि 18वीं सदी के फ्रांसीसी दार्शनिकों ने जनता के मस्तिष्क में दीर्घकाल से युद्ध क्रांति की भावना को जगाकर कार्य रूप में परिणत करने के लिए प्रेरित किया।

प्रमुख दार्शनिकों का योगदान

(1) मोन्तेस्क्यू (1669–1755) :– तीन पीढ़ियों तक फ्रांसीसी राजतंत्र की नींव पर कटु आलोचना और तीव्र व्यंग्य का धुआँधार प्रहार होता रहा। इसका प्रारंभ मोन्तेस्क्यू ने किया था। वह न्यायिक वर्ग का एक सामन्त उच्च श्रेणी का वकील तथा बोर्दो की संसद का न्यायाधीश था। **"कानून की आत्मा"** उसकी महान कृति थी जिसे उसने बीस वर्ष के कठिन परिश्रम से लिखा उनका प्रकाशन 1748 में हुआ। यह ग्रन्थ राजनीति दर्शन का एक अध्ययन था। इसमें मनुष्य की सात विभिन्न शासन–प्रणालियों का विश्लेषण और उनकी विशेषताओं, गुणों तथा दोषों का सन्तुलित और आवेशरहित समीक्षा की गई थी। मोन्तेस्क्यू ने रहस्य के उस अवधारणा को जिससे मनुष्य ने अपनी समस्याओं को ढँक रखा था, फाड़कर फेंक दिया, उनकी प्रकृति में कोई पवित्र, धार्मिक और उल्लंघनीय गुण हो सकता है। इस मत का निर्मम ढंग से खण्डन किया और उसके विभिन्न रूपों का उसी निर्लिप्त तथा दृश्यगत भाव से परीक्षण किया जैसे कि कोई वनस्पतिशास्त्री पेड़–पौधों और फूल–पत्तियों का करता है। इसके इस विश्लेषण और परीक्षण

से दो–तीन प्रमुख विचारों का उदय हुआ। पहला यह कि इंग्लैण्ड की शासन व्यवस्था सर्वश्रेष्ठ थी। उसके राज्यतंत्र की शक्तियाँ सीमित थीं और देश की जनता के प्रतिनिधियों की एक सभा का उस पर नियन्त्रण था। दूसरे शब्दों में इंग्लैण्ड की सरकार का वही रूप था जिसे आधुनिक राजनीतिक भाषा में सांविधानिक राज्यतंत्र कहते हैं। दूसरे, मोन्तूस्क्यू ने इस बात पर ज़ोर दिया कि एक सुनियमित राज्य में सरकार की तीन शक्तियों–विधायी, कार्यपालक और न्यायपालक को सावधानी के साथ पृथक किया जाना चाहिए। फ्रांसीसी राजतंत्र में सब शक्तियाँ एक ही शक्ति, राजा के हाथों में केन्द्रित थीं और उन पर किसी सांसारिक शक्ति का नियंत्रण नहीं था और न उस पर कोई दैवी नियन्त्रण ही ऐसा था जो दृष्टिगोचर हो सकता। इन धारणाओं का निरंकुश राजतंत्र की अपेक्षा सांविधानिक राजतंत्र अच्छा था और तीनों शक्तियों का पृथक्करण आवश्यक है, फ्रांस के उन सब संविधानों पर गहरा प्रभाव रहा जो 1789 से अब तक बने हैं और उन्होंने उस देश की सीमा के बाहर संविधान के निर्माताओं को प्रभावित किया है। मोन्तेस्क्यू की पुस्तक बुद्धिमत्तापूर्ण विचारों का भण्डार सिद्ध हुई और चूँकि लेखक एक विद्वान और अध्ययनशील न्यायाधीश था और उसकी भाषा तथा शैली गम्भीर और ओजपूर्ण थी, इसलिए उससे फ्रांस में तथा अन्यत्र विचारों, वाद–विवाद और कार्यों को भारी उत्तेजना मिली।

(2) वॉल्तेयर (1660–1779) :– फ्रांसीसी क्रांति में वॉल्तेयर का योगदान कहीं अधिक महत्वपूर्ण था। वह यूरोपीय इतिहास का एक महान मनीषी माना जाता है और उसके नाम पर एक युग का नाम पड़ गया। वह बौद्धिक स्वतंत्रता का महान पोषक था। उसमें साहित्य प्रतिभा उच्चकोटि की थी। वह एक कुशल कवि, इतिहासकार और यहाँ तक कि कुशल वैज्ञानिक सिद्ध हुआ। इसमें सन्देह नहीं कि उसके चरित्र में अनेक दुर्बलताएँ थीं जिसमें से अतिशय अहंकार सबसे बड़ी थी, किन्तु जो लोग मानव स्वतंत्रता के संग्राम में लड़ना चाहते उनके लिए दिन में वह दिशा सूचक बादल का और रात में प्रकाश स्तम्भ का काम करता। उसने स्वयं अपने निजी जीवन में पुरातन व्यवस्था के उत्पीड़न का अनुभव किया था और उसके प्रति उसके हृदय में गहरी और स्थाई घृणा थी। उसे अनेक बार घृणित गिरफ्तारी पत्रों द्वारा कारागार में डाला गया था, क्योंकि उसने बड़े लोगों से शत्रुता मोल ले ली। अपने जीवन का एक बड़ा भाग उसे फ्रांस से बाहर बिताना पड़ा, क्योंकि अपने देश में उसका जीवन सुरक्षित न था। अपने महान मानसिक कार्यों द्वारा उसने बहुत सा धन जमा कर लिया था और यूरोप के शक्तिशाली लोगों में उनका स्थान था। वॉल्तेयर के युग में यह बात अक्षरशः सत्य थी कि तलवार की अपेक्षा लेखनी में कहीं अधिक बल होता है। तलवार की धार के समान उसकी शैली स्पष्ट, नुकीली, लोचदार और तीखी थी। वह जो कुछ भी लिखता था उसमें उसकी आत्मा का उत्साह और उमंग प्रतिबिंबित रहती। कटु व्यंग्य के तीर छोड़ने में और धूल में मिला देने वाला वाक्प्रहार करने में वह दक्ष था। अपने युग के आडम्बरों, अत्याचारों और धर्मान्धता पर उसने इन अस्त्रों का खुलकर प्रयोग किया और अपनी लेखनी की विध्वंसक आग से उन्हें जला डाला। इसी कारण उसकी राज्य और चर्च से टक्कर हो गई। उसने कानून तथा न्याय–व्यवस्था और यातना देने की प्रथा की खुलकर भर्त्सना की।

वॉल्तेयर मोन्तेस्क्यू की भाँति गम्भीर और सावधान विद्यार्थी न था। उस युग में जबकि पत्रकारिता का प्रचार न हो सका था वह प्रभावशाली पत्रकार था और अपने समय की घटनाओं और समस्याओं पर, जो मन में आता, निर्भीक होकर लिखता था। उसकी रचनाओं की विविधता और रोचकता आश्चर्यजनक थी। मूलतः वॉल्तेयर राजनैतिक विचारक था। राज्य व्यवस्था में विशेष बुराइयाँ जो उसने देखीं उन पर उसने प्रहार किया और राज्य के प्रति श्रद्धा के साख की जड़ खोखली कर दीं। किन्तु संस्था के रूप में वह ऊपरी तौर से राजतंत्र से संतुष्ट था। उदार निरंकुशवाद को वह आदर्श शासन व्यवस्था मानता था। वह लोकतंत्र का पुजारी न था **"मैं सौ चूहों की**

अपेक्षा एक सिंह द्वारा शासित होना पसन्द करूँगा।'' इन शब्दों में उसने अपने विचार प्रकट किये। चर्च को वह पशुता का प्रतीक मानता था। उसके अनुसार वह अन्धविश्वासों का गढ़ और विचारों की स्वतंत्रता का शत्रु था, वह इन निर्दोष आदमियों का उत्पीड़न करता जो उससे सहमत न होते, वह असहिष्णुता का केन्द्र और हर प्रकार के संकीर्ण तथा मतान्धतापूर्ण दुर्भावों का समर्थक था। 18वीं शताब्दी में फ्रांस के चर्च में अनेक दोष और उन्हीं को उसने अपने घातक तथा ज्वलनशील वाक्–वाणों का शिकार बनाया, वॉल्तेयर का काम रचनात्मक न होकर ध्वंसात्मक था। उसका धार्मिक विश्वास अनिश्चित था और उसमें प्रेरणा बल का सदैव अभाव था। धर्मों के सही बाह्य आडम्बरों से उसे घृणा थी और उनका उसने तिरस्कार किया।

NOTES

(3) रूसो (1712–1778) :– जाँ जॉक रूसो उस युग का एक अन्य महान लेखक था। रूसो का कार्य रचनात्मक और कल्पनामूलक था और उसमें भविष्य दृष्टा का विश्वारा छिपा था। उसने एक सर्वांगीण राजनैतिक विचारधारा का निर्माण किया, उसने विश्वास के साथ एक नयी सामाजिक व्यवस्था के सिद्धान्त प्रतिपादित किये। वह समाज का एकदम नये ढंग से पुनर्संगठन करना चाहता था क्योंकि उसका कहना था कि कितने ही थेगरे लगाए जायें, कितना ही जीर्णोद्धार किया जाए वर्तमान व्यवस्था ठीक नहीं हो सकती। उसके गद्य में जादू था, वह सम्पन्न बोलती हुई निराशा और उद्विग्नता से भरी हुई रंगीन और संगीत की लय से परिपूर्ण थी और उसमें उच्च कोटि का शांत प्रवाह था। अतीत का रूसो पर कोई प्रभाव न था। अतीत से तो वास्तव में उसे घृणा थी। उसका कहना था कि मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु अतीत ही है। वह उन अगणित बुराइयों का आदि कारण है जिनसे मानवता आज संतृप्त है और जिनसे उनका मुक्त होना आवश्यक है। उनके सामने जैसा संसार था उससे उसे घृणा इसलिए थी कि उसका स्वयं का जीवन बड़ी कठिनाइयों में बीता था। जिनेवा के घड़ी बनाने वाले के यहाँ उसका जन्म हुआ था, जीविका कमाने के लिए इसे इधर–उधर घूमना पड़ा और एक के बाद एक उसने अनेक व्यवसाय किये। कहीं किसी के यहाँ चाकरी की, कहीं संगीत की शिक्षा दी और कहीं अध्यापन का कार्य किया। दुःख–दरिद्रता से वही भली–भाँति परिचित था और उसके निजी जीवन में कोई ऐसी बात न हुई थी जिससे वह संसार को और उसकी सभ्यता को अच्छी दृष्टि से देख सकता और उसके सम्बन्ध में अच्छे भाव रख सकता।

रूसो का मुख्य ग्रन्थ **''सामाजिक संविदा''** था। उसका पहला ही वाक्य ऐसा है कि उसे पढ़कर आदमी चौंक पड़ता है। **''मनुष्य स्वतंत्र उत्पन्न हुआ था, किन्तु वह सर्वत्र बंधनों में पड़ा हुआ है।''** इसी विचार को आधारशिला बनाकर उसने शुद्ध और सूक्ष्म तर्क द्वारा एक आदर्श राज्य की रूपरेखा प्रस्तुत की जो उस दुनिया से बिलकुल भिन्न थी जिसमें वह रह रहा था। उसने कहा कि समाज का आधार उन व्यक्तियों का पारस्परिक समझौता होता है जिनसे मिलकर वह बनता है। प्रभुत्व समस्त जनता में निवास करता है, न कि किसी व्यक्ति अथवा वर्ग में। सभी व्यक्ति स्वतंत्र और समान हैं, सरकार का उद्देश्य है प्रत्येक व्यक्ति के अधिकारों की रक्षा करना। रूसो ने प्रतिनिधि शासन प्रणाली का खण्डन किया और माँग की कि जनता को प्रत्यक्ष रूप से अपने कानून बनाने का अधिकार होना चाहिए। सरकार की बागडोर बहुसंख्यक लोगों के हाथ में हो। बहुसंख्यक लोगों से भूल हो सकती है किन्तु उसके कार्य सदैव न्यायपूर्ण होते हैं– कितना भ्रमपूर्ण कथन है। रूसो ने अपने राज्य में बहुसंख्यकों के आक्रमण से अल्पसंख्यकों के अधिकार को सुरक्षित रखने की कोई व्यवस्था नहीं की। उसकी व्यवस्था का सबसे बड़ा दोष यही था कि उसमें बहुसंख्यक को अल्पसंख्यकों के ऊपर उसी प्रकार घृणित और अनियंत्रित ढंग से अत्याचार करने का अधिकार था जैसा कि किसी निरंकुश राजा को हो सकता है, किन्तु उसके दो विचारों का बहुत महत्व था–**जनता का प्रभुत्व और नागरिकों की राजनैतिक स्वतंत्रता।** इन दो लोकतांत्रिक सिद्धान्तों ने यूरोप के तत्कालीन राज्यों की जडें खोदने में बहुत काम किया। इन सिद्धान्तों ने फ्रांस की क्रांति को बहुत प्रभावित किया और उस समय से लेकर

अब तक प्रतिद्वन्द्वी पंथों द्वारा उत्साह के साथ उनका प्रचार और तीव्र घृणा के साथ आलोचना की गई।

5.7 क्रांति का प्रारंभ और विकास (ORIGIN & PROGRESS OF THE REVOLUTION)

क्रांति की शुरुआत

फ्रांस की राज्य क्रांति का अर्थ था प्रभुसत्ता का राजा से संसद के हाथ में आना। 1787 से 1799 की घटनाएँ फ्रांस की राज्य क्रांति की घटनाएँ मानी जाती हैं। वास्तव में फ्रांसीसी राज्य क्रांति की कोई योजना नहीं बनाई गई और न ही भविष्य की घटनाओं (स्टेपों) के बारे में सोचा गया। परिस्थितियाँ बनती गईं, घटनाएँ घटती गईं और क्रांति पूर्ण हो गई। इसके पीछे फ्रांस की शासन व्यवस्था, विशेषाधिकार, आम आदमी का शोषण और अन्य परिस्थितियों से उत्पन्न असंतोष उत्तरदायी था।

लुई सोलहवें के शासनकाल के पन्द्रहवें वर्ष में स्टेट्स जनरल को बुलाने का निर्णय आधुनिक काल के इतिहास का महत्वपूर्ण मोड़ था एवं क्रांति की भूमिका भी। 5 जुलाई, 1788 को सिद्धान्त रूप में स्टेट्स जनरल को बुलाना स्वीकार कर लिया गया था। आठ अगस्त, 1788 को घोषणा द्वारा स्टेट्स जनरल की बैठक की तिथि एक मई निश्चित की गई। 15 मई, 1789 को स्टेट्स जनरल का विधिवत उद्घाटन होना था।

स्टेट्स जनरल के गठन के बारे में कुलीन तंत्र एवं रूढ़िवादी, 1614 वाली पद्धति ही अपनाने की बात कर रहे थे परन्तु 'राष्ट्रवादी' तृतीय श्रेणी का प्रतिनिधित्व शेष दो वर्गों के बराबर चाहते थे तथा प्रति व्यक्ति द्वारा वोट का अधिकार भी चाहते थे। 1614 की अपेक्षा 1789 का फ्रेंच नागरिक सम्पन्न सुखी एवं अन्याय के प्रति अधिक जागृत था। औद्योगिक क्रांति एवं बौद्धिक जागृति ने **'तृतीय श्रेणी'** की मानसिक एवं आर्थिक स्थिति में बहुत परिवर्तन ला दिया था इसके विपरीत अपेक्षाकृत, प्रशासन अधिक भ्रष्ट एवं राजतंत्र निरंकुश होते हुए भी दुर्बल हो गया था। ऐसी परिस्थितियों में स्टेट्स जनरल को रूढ़िवादी ढंग पर गठित करना समय को दो सौ वर्ष पीछे धकेलने का प्रयत्न करना था।

कुलीन तंत्र की पारलमाँ ने भी इस विवाद के संकटपूर्ण बनाने में मदद की। 25 सितम्बर, 1788 को राजा की आठ अगस्त की घोषणा का पंजीकृत करते समय एक वाक्य यह भी जोड़ दिया गया कि सभा का गठन उसी प्रकार होगा जैसा कि 1614 ई. के अधिवेशन के समय था। इस बात से पारलमाँ की लोकप्रियता कम होने के साथ जनमत उत्तेजित भी हुआ।

5 मई, 1789 को वेरसाई में स्टेट्स जनरल के अधिवेशन का उद्घाटन हुआ। राजा लुई सोलहवें ने सभा को सम्बोधित किया। एस्टेट्स जनरल की कुल संख्या लगभग 1,200 थी, जिनमें से 600 से अधिक तीसरे सदन के सदस्य थे। सच तो यह है कि जन साधारण से चुनकर आये प्रतिनिधियों की संख्या इससे कहीं अधिक थी, क्योंकि 300 पादरियों के प्रतिनिधि में से 200 से अधिक जनसाधारण पादरी वर्ग से चुनकर आये प्रतिनिधि थे और इनकी सहानुभूति तीसरे सदन के साथ थी। परम्परागत नियम के अनुसार तीनों सदनों की अलग–अलग बैठकें होती थीं और तीनों अलग–अलग निर्णय करते थे। प्रस्तुत प्रस्ताव के पारित होने के लिए जरूरी था कि कोई दो सदन उसे स्वीकृति दें। यद्यपि तृतीय सदन की सदस्य संख्या बढ़कर दुगुनी कर दी गयी थी तथापि पुरानी विधि के चलते जन–साधारण को इससे कोई लाभ नहीं होने वाला था क्योंकि प्रत्येक सदन का एक वोट माना जाता था और बहुसंख्या के बावजूद तीसरे सदन के निर्णय को मान्यता नहीं मिल पाती। इस जटिल स्थिति को हल करने के लिए तीसरे सदन के प्रतिनिधियों ने तीनो सदनों की सम्मिलित बैठक का आग्रह किया, जिसमें सभी प्रतिनिधियों के बहुमत से निर्णय लिया जाये।

प्रथम एवं द्वितीय सदन के सदस्यों ने इस माँग का विरोध किया। दूसरी ओर तृतीय सदन के प्रतिनिधि अपनी मॉग पर डटे रहे। इस प्रकार अधिवेशन के प्रारंभ में ही गतिरोध पैदा हो गया। सर्व–साधारण ने अपना मत अपने पचास–साठ हजार सुझाव–पत्रों में (काहिया) में पहले ही व्यक्त कर दिया था। 6 मई को तीनों सदनों में जोरदार संघर्ष छिड़ गया। इसी बीच एक और समस्या उठ खड़ी हुयी, सदस्यों के सदस्यता के प्रमाण–पत्रों की जाँच होना आवश्यक थी। सामन्तों ने अपने को पृथक सदन मानकर अपनी बैठक में 47 के विरुद्ध 188 के बहुमत से अपनी जाँच पूरी कर ली। पादरियों के सदन से एक मत का मसला हल न होने से पूर्व जाँच से साफ इंकार कर दिया।

जनसाधारण की इच्छा के विपरीत राजा के उद्‌घाटन भाषण में सुधारों के कार्यक्रम तथा प्रति सदस्य मतदान की माँग की ओर कोई संकेत नहीं था। अन्य अधिकारियों के भाषणों से भी तृतीय श्रेणी के प्रतिनिधियों को निराशा हुई। राजा का निर्देश था तीनों सदन अलग अपने कक्षों में बैठकर अपना कार्य शुरू करें, परन्तु अगले दिन इस बात पर कार्यवाही में गतिरोध उत्पन्न हो गया। जन साधारण के प्रतिनिधि तीनों वर्गों की सम्मिलित बैठक, प्रति सदस्य मतदान के अधिकार की माँग पर अड़ गये। उन्हें मिराबों के रूप में एक योग्य नेता भी मिल गया था। 28 मई को पेरिस के धुरंधर प्रतिनिधि–सियेस, बेली तथा केमस के आ जाने से तृतीय श्रेणी का मनोबल और बढ़ गया। पादरियों और कुलीनों को जन साधारण के प्रतिनिधियों के साथ एक ही सभा में बैठने हेतु निमंत्रण भी भेजा गया।

10 जून, 1789 को प्रथम क्रांतिकारी कदम उठाया गया। एक माह बेकार बीत गया था परिणामस्वरूप निर्णायक कदम उठाया जाना चाहिए था। इस कारण पेरिस के प्रतिनिधि द्वारा प्रस्तुत किये जाने वाले महत्वपूर्ण प्रस्ताव पर पूरा विचार किया जाए।

मिराबो के इस प्रस्ताव के बाद आरबसिये ने कहा अब जनकार्य को प्रारंभ करने में अब और देरी करना प्रतिनिधियों द्वारा अपने कर्त्तव्यों की अवहेलना करना है, इसलिए अन्य दोनों वर्गों को, हमारे साथ बैठने का अंतिम निमंत्रण दिया जाए तथा अधिकार पत्रों का प्रमाणीकरण प्रारंभ हो। 11 जून का दिन कुछ धार्मिक समारोह आदि में बीत गया। 12 जून, शुक्रवार को सिये के प्रस्ताव अनुसार शेष दोनों वर्गों को मुख्य सभा भवन में अपना स्थान ग्रहण करने का **''अन्तिम निमंत्रण''** भेजा गया तथा तृतीय श्रेणी ने **''प्रमाणीकरण''** का कार्य भी प्रारंभ कर दिया किन्तु वर्ग विशेष के प्रतिनिधियों के रूप में नहीं, अपितु राष्ट्र के प्रतिनिधियों के रूप में। तीसरे सदन ने बार–बार ऊपर के सदनों से सम्मिलित बैठक का आग्रह किया। अंत में उसने अपनी जाँच 11 जून से आरंभ करने की घोषणा के साथ दोनों सदनों को अंतिम निमंत्रण दिया। निम्न वर्ग से चुनकर आये पादरी एक–एक करके तीसरे सदन के साथ आ गये और विशेषाधिकारी लोगों का साथ त्याग दिया।

13 जून को जब जनसाधारण के प्रतिनिधि सभा भवन में एकत्र हुए तो आभिजात्य वर्गों के तीन पादरियों– **लेंसेव** (Lecerve), **बालारा** (Ballard) तथा **जाले** (Jallet) में से जाले ने कहा, **''विवेक के प्रकाश में जन कल्याण तथा अपनी अन्तरात्मा की आवाज से प्रेरित होकर हम अपने सभी प्रतिनिधियों एवं बंधुओं का साथ देने के लिए आये हैं।''** और वे तृतीय श्रेणी के प्रतिनिधियों से आ मिले। 14 जून को नौ पादरी और आ गये। वह विशेषाधिकार युक्त वर्गों के आत्मसमर्पण का प्रारंभ हुआ और अब संघर्ष में सफलता के लक्षण दिखाई देने लगे थे।

17 जून को लोरेन के एक प्रतिनिधि ने सभा के सम्मुख **'राष्ट्रीय सभा'** की उपाधि धारण करने का प्रस्ताव रखा। जनसाधारण प्रतिनिधियों ने स्वयं को राष्ट्र का सच्चा एवं वास्तविक प्रतिनिधि घोषित किया तथा 491 मतों से बहुमत से **'राष्ट्रीय महासभा'** का नाम ग्रहण कर लिया। यह घोषणा महत्वपूर्ण क्रांतिकारी कदम था। सरकार के लिए सीधी चुनौती एवं राजकीय अधिकारों पर कुठाराघात थी।

19 जून को उग्र विचार–विमर्श कर पादरियों ने 149 के बहुमत से जिनमें छः बिशप एवं आर्क बिशप थे, जनसाधारण के साथ बैठने का फैसला किया। **19 जून क्रांति के इतिहास की महत्वपूर्ण तिथि मानी गई है।**

इस परिस्थिति में राजा द्वारा 23 जून को **'राजसी अधिवेशन'** की घोषणा की गई। तब तक के लिए सभा भवन को बन्द करवा दिया। 20 जून को जब प्रतिनिधि सभा भवन के समक्ष पहुँचे तो वहाँ सैनिक पहरा दे रहे थे। प्रतिनिधियों ने मून्ये द्वारा प्रस्तावित शपथ, पास के टेनिस कोर्ट में ली जिसमें 600 से अधिक प्रतिनिधियों ने ऐतिहासिक शपथ लेते हुए कहा – "राष्ट्रीय सभा यह निश्चय करती है कि हम कभी अलग नहीं होंगे और जब तक संविधान का निर्माण नहीं हो जाता तथा उसे दृढ़ नींव पर नहीं रखा जाता, तब तक जहाँ भी और जब भी परिस्थितियों के अनुसार आवश्यक होगा एकत्र होंगे। इनमें से केवल एक प्रतिनिधि ने शपथ के विरोध में हस्ताक्षर किये थे।"

इस घटना के पश्चात् 21 जून को दो कुलीन, 149 पादरी तथा जन साधारण प्रतिनिधियों ने एक चर्च में अपनी कार्यवाही जारी रखी। इन कार्यवाहियों से चिंतित होकर राजा ने 23 जून, 1789 ई. को तीनों सदनों की संयुक्त बैठक बुलायी, जिसमें राज ने कतिपय सुधार लागू करने की इच्छा व्यक्त की किन्तु इसके साथ ही उसने तृतीय वर्ग के द्वारा राष्ट्रीय सभा की घोषणा को अमान्य करार दिया और रानी के दबाव में आकर तीनों वर्गों को अलग–अलग बैठने और मतदान करने की आज्ञा दी। राजा की आज्ञा से करों पर विचार करने के लिए तीनों वर्ग सम्मिलित रूप में बैठ सकते थे, किन्तु इसके साथ ही यह भी स्पष्ट कर दिया गया था कि कुलीन लोगों के संपत्ति संबंधी अधिकार तथा विशेषाधिकार ज्यों के त्यों बने रहेंगे। राजा की इस नीति का विरोध कुछ कुलीन तथा निम्न पादरी लोगों ने किया।

राजा के जाने के बाद कुलीन और पादरी वर्ग के प्रतिनिधि उठकर चले गये परन्तु जन साधारण के प्रतिनिधि वहीं बैठे रहे। मिराबो ने गरजते हुए पूरे सदन की तरफ से अधिकारी से कहा कि **"श्रीमान जाइये और उनसे (राजा) कह दीजिये कि हम यहाँ जनता की इच्छा से हैं और हमें बन्दूक की गोली के बल पर ही हटाया जा सकता है।"** 24 और 25 जून को बहुत से पादरी और कुलीन प्रतिनिधि जन साधारण से आ मिले। 27 जून को राजा ने प्रथम दोनों सदनों के अध्यक्षों को लिखित आदेश भेजे कि तीनों सदन मिलकर एक सभा के रूप में बैठें। इस आदेश से **'राष्ट्रीय महासभा'** को वैधानिक स्वीकृति मिल गई। इस तरह हम देखते हैं कि 5 मई, 1789 से 27 जून, 1789 तक घटित घटनायें फ्रांसीसी राज्य क्रांति का प्रारंभ थीं। ये घटनायें सुनिश्चित योजना का अंग नहीं थी, बल्कि एक घटना दूसरी घटना के अनुकूल स्थिति पैदा करती थी और दूसरी घटना के लिए अनुकूल स्थिति पैदा करती थी और दूसरी तीसरी घटना को। इस तरह घटनाओं का घटित होते जाना क्रांति का सूत्रपात और क्रांति की सफलता का प्रतीक था।

27 जून को क्रांति के प्रथम दौर में राजा और कुलीन वर्ग की पराजय जनता के प्रतिनिधियों द्वारा हुई। अभी राजा और कुलीन वर्ग को जनता द्वारा सीधे और पराजित होना था। क्रांति का अगला कदम जो वास्तील पतन के रूप में सामने आया। 27 जून की विजय के संदर्भ में **आर्थर यंग** ने लिखा है कि **'क्रांति समाप्त हो गई – क्रांति पूर्ण हो गई है।"** अब राजा के हाथ से तलवार खिसक कर राष्ट्र के अनुभवहीन हाथों में पहुँच गई थी। तीनों वर्गों की एकता के पश्चात् राष्ट्रीय सभा ने तुरन्त ही संविधान निर्माण हेतु समिति की नियुक्ति कर दी एवं अपना नाम भी राष्ट्रीय संविधान सभा रख लिया।

जून की घटनाओं में जनता की विजयों को पेरिस में धूमधाम से मनाया गया। पेरिस की जनता की उत्तेजना तथा उत्साह विध्वंसक होता जा रहा था। उनके पास कोई नेता नहीं था, कोई योजना नहीं थी, बस जीत का उन्माद था, सदियों की बेड़ियों के टूटने की खुशी हिंसक

NOTES

रूप धारण करने लगी थी। इस स्थिति में राज दरबार की सत्ता को पुनः स्थापित करने तथा भीड़ को नियंत्रित करने का प्रयत्न असफल रहा। जल्द ही यह अफवाह फैल गई कि राष्ट्रीय संविधान सभा भंग की जाने वाली है तथा कुछ प्रमुख प्रतिनिधियों को गिरफ्तार कर लिया जायेगा। मिराबो ने चेतावनी दी कि **''यदि राजा ने अपने सैनिकों को नहीं हटाया तो पेरिस की गलियों में खून बहेगा।''** 11 जुलाई को नेकर को पदच्युत कर उसे तत्काल देश छोड़ देने के आदेश दिये गये। विदेशी सैनिकों की उपस्थिति से भीड़ पहले ही उत्तेजित थी, नेकर के हटाये जाने से लोग और अधिक भड़क उठे। जन साधारण दरबार में उसे अपने हितों का रक्षक समझने लगे थे। 12 जुलाई को **कामिल दे मूलें** नामक पत्रकार ने पेरिस के बाजार में शोर मचाकर अपने भाषण में पेरिस की भीड़ को उत्तेजित कर दिया। उसने कहा– **''हथियार! हथियार!! हथियार!!! एक क्षण भी नष्ट नहीं होना चाहिये, मैं अभी–अभी बेरसाई से वापस आ रहा हूँ। जर्मनी की सेनाएँ आकर हमें कत्ल कर देंगी। हमारे लिए केवल एक ही रास्ता रह गया है– हम हथियार उठायें।''** इस गरजना से भीड़ उत्तेजित हुई तथा अपनी रक्षा के हथियारों की खोज में भागने लगी।

14 जुलाई को भीड़ ने दो शस्त्रागार लूट लिए। हथियारों की तलाश में उत्तेजित जन समूह को किसी ने यह कह दिया कि हथियार बास्तीय के किले में रखे हैं। शीघ्र भीड़ में यह नारा गूँजा 'बास्तीय चलो'। बास्तीय पेरिस से पूर्व में कुछ दूरी पर 400 वर्ष पुराना किला था, जो अब राजकीय कारागार के रूप में काम आता था। निरंकुशता, दमन एवं अन्याय की अनेक झूठी–सच्ची वारदातें इसके साथ जुड़ी हुई थीं। जनता इस किले को शाही निरंकुशता और अत्याचार का प्रतीक मानकर इससे घृणा करती थी। शीघ्र ही भीड़ ने किले को घेर लिया। किले के गवर्नर ने समर्पण से इन्कार कर दिया। इसी बीच भीड का किले के सैनिकों के बीच संघर्ष प्रारंभ हो गया। लगभग तीन घंटे के संघर्ष के बाद भीड़ का कब्जा किले पर हो गया। इस तरह बास्तीय का पतन हो गया।

14 जुलाई को राष्ट्रीय दिवस घोषित कर दिया गया। पुराने राजकीय झंडे के स्थान पर लाल, सफेद एवं नीले रंग का एक नया तिरंगा झंडा अपना लिया गया। पेरिस में जनता ने पुरातन राज्य प्रशासन को समाप्त करके नयी म्युनिसिपल सरकार बना ली और यह ''पेरिस की कम्यून'' के नाम से प्रसिद्ध हुई। नगर की सुरक्षा के लिए नेशनल गार्ड का गठन किया गया और लाफायेत को इसका प्रधान बनाया गया। बेली को पेरिस का मेयर घोषित किया गया। राजा से इन परिवर्तनों को स्वीकार कर लेने को कहा गया। राजा ने नेकर को वापस बुलाना तथा विदेशी सैनिकों को हटा लेना स्वीकार कर लिया। लुई 17 जुलाई को पेरिस आया, उसके साथ राष्ट्रीय सभा के तीन चौथाई सदस्य भी थे। राजा ने क्रांति के तीन रंगों वाला तमगा लगा रखा था। भीड़ ने राजा का जिन्दाबाद के नारे से स्वागत किया। बेली ने अपने भाषण में जो शब्द कहे, वे बदली हुयी परिस्थिति का सटीक वर्णन करते हैं– **''1589 ई. में एक दिन हेनरी चतुर्थ ने पेरिस की जनता को जीता था, आज पेरिस की जनता ने अपने राजा को जीत लिया है।''** राजा ने सारे परिवर्तनों को स्वीकार कर उन पर अपनी अनुमति की मुहर लगा दी।

पेरिस के इस घटनाक्रम का संपूर्ण फ्रांस पर त्वरित प्रभाव पडा। जगह–जगह पेरिस की तर्ज पर कम्यून और नेशनल गार्ड स्थापित किये गये। फ्रांस के ग्रामीण क्षेत्र भी इस परिवर्तन से पीछे न रहे। ग्रामीणों ने अपने उत्पीड़कों पर धावा बोल दिया और सामंती करों के अभिलेखों को आग लगा दी। गढ़ों को नष्ट करके उन्हें अग्नि–समर्पित कर दिया। जुलाई के अंतिम सप्ताह में विनाश का यह क्रम अबाध चलता रहा। इन सब के दौरान असामाजिक तत्वों ने भी खुलकर हाथ दिखाये, जिससे अत्याचार के काण्ड भी हुये परन्तु ऐसी परिस्थितियों में अपरिहार्य रूप से ऐसी घटनाएँ होती हैं। इस तरह फ्रांस की जनता ने व्यवहार मे सामन्ती व्यवस्था का अंत कर दिया।

NOTES

राष्ट्रीय सभा ने 13 जुलाई को नेकर की वापसी की माँग रखी तथा 14 जुलाई को पेरिस से सेनाएँ हटाने की। 15 जुलाई को राष्ट्रीय सभा ने बास्तील के पतन तथा 14 जुलाई को हुई घटनाओं का अनुमोदन कर दिया। 15 जुलाई को ही सभा की आशा के विपरीत राजा स्वयं सभा में आया और उसने सभा को सूचित किया कि पेरिस और बेरसाई से सेनाओं को हटाने के आदेश दे दिए गये हैं और नेकर को वापस बुलाया जा रहा है। 16 जुलाई का लाफायेत और बेली सहित सभा के 88 सदस्यों का एक दल बेरसाई से पेरिस आया। **ओतेल द विल**–जो क्रांति का मुख्य केन्द्र स्थल था– के प्रतिनिधियों का विजेताओं के समान स्वागत किया। 15 और 16 जुलाई को पेरिस के क्रांतिकारियों ने तीन कार्य ऐसे किये जिनसे पुरातन शासन व्यवस्था पर करारा प्रहार हुआ–

- बेली को पेरिस नगरपालिका का अध्यक्ष नियुक्त कर दिया गया।
- नागरिक सेना का नाम 'राष्ट्रीय रक्षा दल' कर दिया गया तथा लाफायेत को इसका अध्यक्ष बनाया गया।
- बूरवो वंश के सफेद झण्डे के स्थान पर तिरंगा झण्डा राष्ट्रीय ध्वज स्वीकार कर लिया गया।

17 जुलाई को राजा लुई सोलहवाँ स्वयं पेरिस आया और **'आतेल–देविल'** में क्रांतिकारियों के जोशीले और क्रांतिकारी भाषणों को सुना। राजा ने बेली और लाफायेत की नियुक्तियों को तथा क्रांति के नये तिरंगे झण्डे को अपनी स्वीकृति प्रदान कर दी। इस प्रकार लुई ने उस क्रांति को स्वीकृति प्रदान कर दी, जिसे नियंत्रित करने में वह असफल रहा था। 17 जुलाई, 1789 को जनता ने अपने राजा को जीत लिया था। 14 जुलाई से 17 जुलाई तक की घटनाओं का समाचार पाते ही फ्रांस के अन्य भागों में भी सामन्तों की गाड़ियाँ और उनमें रखे रिकार्डों को जला दिया अथवा बर्बाद कर दिया गया।

स्टेट्स जनरल को राष्ट्रीय सभा के रूप में परिणत होना तथा बास्तीय का पतन फ्रांस में क्रांति का प्रारंभ था। शीघ्र ही बास्तीय के पतन जैसी घटनाएँ फ्रांस के दूर–दराज वाले सामंती इलाकों में भी घटित हुईं।

राष्ट्रीय संविधान सभा क्रातिकारी फ्रांस की पहली प्रतिनिधि सभा थी। जून 1789 से प्रारंभ होकर यह सभा 30 सितम्बर, 1791 तक चली। सारे फ्रांस का क्रांतिमय स्वरूप इसी काल में बना। वास्तव में क्रांति की मुख्य उपलब्धियाँ इन्हीं दो वर्षों में प्राप्त हुईं। संविधान सभा का मुख्य कार्य था– मानव अधिकारों की घोषणा तथा सामन्तवाद का खात्मा करना। 18 सितम्बर, 1791 को लुई ने संविधान पर स्वीकृति प्रदान की। 30 सितम्बर, 1791 को संविधान सभा विसर्जित हो गयी। राष्ट्रीय संविधान सभी के विसर्जन के दिन लुई सोलहवें ने लिखा कि **"क्रांति समाप्त हो गयी है, अब राष्ट्र को पुनः अपने आह्लादपूर्ण स्वभाव की ओर लौट आना चाहिये।"**

जनता की इन कार्यवाहियों का राष्ट्रीय सभा पर भी जबरदस्त प्रभाव पड़ा। 4 अगस्त, 1789 ई. को एक समिति ने राष्ट्र की अराजक दशा पर एक रिपोर्ट पेश की। इस रिपोर्ट से सभा के सदस्यों में सन्नाटा छा गया। सत्र समाप्त होने को था। इसी वक्त नाटकीय रूप से नोआइय नामक एक कुलीन ने सभा में यह कहते हुए कि समाज में दोषों का कारण सामंती करों का बोझ और सामंतों एवं कुलीनों की संपत्ति और विशेषाधिकार हैं, इनको समाप्त कर दिया जाये। साथ ही, अपने विशेषाधिकारों की घोषणा की। इसके साथ ही फ्रांस के सबसे बड़े सामंत 'ड्यूक द एगीओ' ने इसका समर्थन करते हुए अपने विशेषाधिकार त्याग दिये। फिर तो स्थिति उन्माद एवं भावावेशपूर्ण हो गयी। त्याग की होड़ लगी। देखते–देखते लगभग सभी सदस्यों ने अपने विशेषाधिकारों का परित्याग कर दिया। नान्सी के बिशप ने अपने वर्ग के विशेषाधिकार त्याग दिये। सी.डी. हेजन लिखते हैं कि "रात भर ऑसुओं, आलिंगनों, उल्लासजनित करतल ध्वनि और देशभक्ति पूर्ण त्याग के हर्षातिरेक के बीच इस प्रकार कार्य चलता रहा और प्रातः आठ बजे तक लगभग 30 अध्यादेश जारी कर दिये गये और एक ऐसी असाधारण सामाजिक

क्रांति संपादित हो गयी, जैसी किसी राष्ट्र के जीवन में नहीं हुयी थी। यह क्रांति कल्पनातीत थी। वस्तुतः प्रातःकालीन अरुणिमा में फ्रांस में अब नवप्रभात था।''

NOTES

इस प्रकार उत्पीड़नकारी तथा अन्यायपूर्ण व्यवस्था का जुआ राष्ट्र के कंधों से उतार फेंका गया। उल्लास और कोलाहल के बीच पारित इन प्रस्तावों को औपचारिक रूप से कानूनी जामा पहनाया जाना अभी समय की बात थी, इसलिए उत्साह जब ठंडा पड़ा और लोग स्वप्न से जागे, तो उन्हें वास्तविकता का अहसास हुआ कि इन परिवर्तनों को लागू करने में अनेक कठिनाइयाँ हैं। परिणामस्वरूप लोगों में प्रतिक्रिया का भय सताने लगा कि सभागृह की उदारता उसके बाहर न फैल पाये। शीघ्र ही दो दल बन गये। एक क्रांति की सफलताओं को अक्षुण्ण रखना चाहता था, दूसरा चाहता था कि खोया हुआ पुनः प्राप्त कर लिया जाये। दूसरे दल वाले प्रति–क्रांतिकारी माने गये। कुछ अधिक अहंकारी एवं क्रोधी दरबारी, लुई के भाई आत्वाँ के सरदार के साथ–साथ फ्रांस से पलायन कर गए। इसके साथ ही पलायन का सिलसिला शुरू हो गया, जिसके कारण बाद में फ्रांस को यूरोप के अनेक राज्यों से उलझना पड़ा। बचे हुए दरबारियों एवं रानी के दबाव में राजा के मध्य वर्ग के हितों का विरोध शुरू कर दिया। राजा का चचेरा भाई आर्लेआं का ड्यूक, जो अपार धन–संपदा का स्वामी था, राजा के स्थान पर स्वयं को आसीन करने के लिए दरबारियों से मिलकर षड्यंत्र रच रहा था।

4 अगस्त की आज्ञप्तियाँ राजा की बिना स्वीकृति के कानूनी शक्ल नहीं ले सकती थीं। जनता में राजा के प्रति संदेह होने लगा। अफवाहों का बाजार गर्म हो उठा। लोगों को संदेह हुआ कि राजा क्रांति के दमन के लिए वार्साय में सेना एकत्र कर रहा है। भोजों पर बेहिसाब धन व्यय हो रहा। अकाल एवं भूख से त्रस्त जनता पर इन अफवाहों का रोषकारी प्रभाव पड़ा। जनता का आक्रोश उबलने लगा।

इसी बीच 5 अक्टूबर को पेरिस में हजारों स्त्रियों की भीड़ एकत्र हो गयी और वे 'हमें रोटी दो के नारे के साथ वार्साय संधि पहुँची। उनके साथ सैकड़ों अन्य व्यक्ति भी सम्मिलित हो गये। वार्साय पहुँच कर नर–नारियों के समूह ने राजप्रासाद को घेर लिया। राजा–रानी ने भीड़ को कुछ आश्वासन देकर शांत करने का प्रयास किया, परन्तु 6 अक्टूबर को सुबह भीड़ एक फाटक से राज महल में घुस गयी और राजा और राज परिवार को पेरिस ले जाने की माँग करने लगी। विवश होकर राजा और उसके परिवार को पेरिस जाना पड़ा। जब लाचार लुई पेरिस आ रहा था, तो साथ ही भीड़ यह कहते हुए नाच–गा–रही थी कि "हमारे साथ रोटी वाला और उसका परिवार है।" शाही परिवार को पेरिस लाकर तुईलरी के प्रासाद में रखा गया। अब राजा की स्थिति एक कैदी के समान हो गयी। इसके बाद लुई कभी वार्साय न जा सका। लुई के पेरिस आने के पश्चात् 16 अक्टूबर को राष्ट्रीय सभा को भी पेरिस ले आया था। राष्ट्रीय सभा के अधिकांश सदस्य ग्रामीण क्षेत्रों से आये थे परन्तु उसके पेरिस आ जाने पर उस पर नगरीय तत्वों का प्रभाव स्थापित हो गया। यह एक ऐसा परिवर्तन था, जिसके दूरगामी परिणाम हुये। क्रांति का नेतृत्व पेरिस के नेताओं के हाथ में आ जाने से उसका रूप अधिक उग्र हो गया।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि फ्रांस की क्रांति घटनाओं के क्रम की उपज थी किसी सुनिश्चित योजना का परिणाम नहीं।

बोध प्रश्न

1. फ्रांस की क्रांति का प्रभाव लिखिए?

....

....

....

2. फ्रांस की क्रांति में .... के योगदान का वर्णन कीजिए?

....

....

....

NOTES

5.9 क्रांति का प्रभाव

(IMPACT OF THE REVOLUTION)

बास्तीय के पतन का तात्कालिक परिणाम यह हुआ कि झोपड़ियाँ महलों के खिलाफ तथा किसान अभिजातवर्गीय जमींदारों के विरुद्ध उठ खड़े हुए। सारे प्रांतों में लगभग चालीस हजार छोटे–छोटे बास्तीय (कुलीनों की गाड़ियाँ अथवा हवेलियाँ जो अन्याय और शोषण का प्रतीक थीं) थे, जिनमें से अधिकांश किसानों के क्रोध का शिकार हुए। उन्होंने सामन्तों की हवेलियों तथा अन्न गोदामों को जला दिया। कृषकों के सामंतीय ऋणों तथा लगान के अभिलेखों को नष्ट कर दिया गया। कई कर संग्राहकों, वित्तीय अभिवक्ताओं, बिशपों तथा कुलीनों को अनेक स्थानों पर अपमानित होना पड़ा। उच्च अधिकारी इधर–उधर छिप गये। सारी शासन व्यवस्था अस्त–व्यस्त हो गई तथा अराजकता एवं अव्यवस्था की बाढ़ आ गई।

संविधान सभा पर इस समय दोहरा आतंक छाया हुआ था। एक राजदरबार का तथा दूसरा भीड़ का आतंक। राजदरबार ने सार्वजनिक मामलों में सभी की सर्वोच्चता को भी स्वीकार कर लिया था। राजदरबार के आतंक की अपेक्षा भीड़ का आतंक अधिक था। कुलीन तथा पादरी वर्ग विशेष रूप से आतंकित थे। लूटमार, उपद्रव तथा हिंसात्मक घटनाओं के समाचार लगातार आ रहे थे। उपद्रवों को रोकने के सारे प्रयास असफल हो चुके थे और यह बात स्पष्ट हो गई थी कि शक्ति के बल पर उपद्रवों को समाप्त करना संभव नहीं है।

इस स्थिति में समसामयिक घटनाओं पर विचार करते हुए सभा की लगातार बैठकें हो रही थीं। चार अगस्त की बैठक में उपद्रवों की जानकारी प्राप्त करने हेतु एक समिति ने अपनी रिपोर्ट पेश की। इस रिपोर्ट में नगरों एवं प्रांतों में हो रही अराजकतापूर्ण तथा हिंसात्मक कार्यवाहियों की विस्तृत जानकारी दी गई। गढ़ियों (हवेलियों) का जलाया जाना, भूमि सम्बन्धी अभिलेखों का नष्ट करना, कर संग्राहकों एवं चक्कियों के स्वामियों का फाँसी पर चढ़ाया जाना आदि। एक वकील ने प्रस्ताव रखा कि उपद्रवों को शक्ति से दबा देना चाहिये परन्तु इस प्रस्ताव का विरोध करते हुए कुलीनों के एक प्रतिनिधि ने ही, चार अगस्त की रात्रि को आठ बजे एक महान सामाजिक क्रांति का सूत्रपात किया। इस क्रांति के बाद एक नए प्रजातंत्रीय फ्रांस ने जन्म लिया। जनता द्वारा किये गए समस्त उपद्रव एवं हिंसात्मक गतिविधियों का मूल कारण था सामन्ती करों का बोझ अतः उन्हें समाप्त करना अनिवार्य था। सामन्तीय विशेषाधिकारों असमानता और अन्याय आम जनता की बदतर हालत के लिए उत्तरदायी थे अतः उन्हें भी समाप्त किया जाना था। इसी बीच 'वीकोंत दे नोआय ने अकस्मात् मंच पर आकर प्रस्ताव रखा कि अधिकांश सामन्ती करों को समाप्त किया जाना चाहिये। फ्रांस के सबसे बडे भूस्वामी एवं प्रसिद्ध सामन्त (Ducd' Aiguillon) तथा अन्य कुलीन वर्गों के प्रतिनिधियों ने उक्त प्रस्ताव का समर्थन किया।

चार अगस्त की रात्रि को इतने प्रस्ताव पारित हुए कि फ्रांस के इतिहास में यह अधिवेशन ऐतिहासिक बन गया। नॉसि के बिशप ने टाइथ सहित सभी विशेषाधिकारों के त्याग की घोषणा की। छोटे पादरियों ने भी अपने शुल्कों को त्याग दिया। न्यायिक सामन्तों ने अपने सम्मान तथा उपाधियाँ छोड़ दीं। सामन्तों ने अपने शिकार के विशेष अधिकार छोड़ दिये। प्रांतों ने अपने विशेषाधिकारों तथा नगरों ने अपनी विमुक्तियों को तिलांजलि दे दी। तमाम रात्रि, आँसुओं, आलिंगनों, उल्लास जनित करतल ध्वनि के बीच यह उत्तेजनापूर्ण कार्य चलता रहा और सब मिलाकर आज्ञप्तियाँ

पारित की गई। इन आज्ञप्तियों ने कृषि दासता, सामंतीय क्षेत्राधिकार, जमींदारी लगान, टाइथ, क्रीड़ा विधियों, बिकने वाले पदों एवं असमान कराधान तथा म्युनिसिपल एवं प्रांतीय विशेषाधिकारों को समाप्त कर दिया। श्रेणियों तथा अन्य प्रतिबन्धों को हटा दिया गया। सभी नागरिक सार्वजनिक पदों के योग्य समझे जाने लगे। इस तरह चार अगस्त की रात्रि को एक महान सामाजिक क्रांति घटित हो गई। जो कार्य पन्द्रह वर्षों में भी पूरा नहीं किया जा सकता वह कार्य एक रात में संपादित हो गया।

समीक्षा

चार अगस्त की रात्रि को जो सामाजिक क्रांति हुई वह विवशता वश घटित हुई थी। विशेषाधिकार सम्पन्न वर्गों–सामन्तों, धर्माचार्यों, कुलीनों को भय और आतंक ने अपने विशेषाधिकारों को छोड़ने के लिए प्रेरित किया था, क्योंकि उस समय फ्रांस में ऐसा वातावरण था कि यदि उक्त सामाजिक क्रांति नहीं होती तो फ्रांस का सामंतवादी सामाजिक ढाँचा धराशायी हो गया होता। यह सच है कि कुछ कुलीन अथवा उच्च धर्माधिकारी स्वतः उदार रहे होंगे, किन्तु सुविधायुक्त वर्ग के अधिकांश सदस्यों ने अन्य सदस्यों के दबाव तथा विवशता वश ही अपने विशेषाधिकारों का त्याग किया जो वास्तव में उनसे छिन चुकी थी या छीनी जा रही थी। जुलाई के अंतिम दिनों की हिंसात्मक कार्यवाहियों में वे सभी रिकार्ड जला दिये गये थे जिनमें सारा हिसाब–किताब तथा विवरण लिखा हुआ था। सुविधा सम्पन्न वर्गों का अस्तित्व निश्चित रूप से खतरे में पड़ चुका था। यदि वे स्वेच्छा से अपनी सुविधाएँ न छोड़ते तो उन्हें मजबूर होकर छोड़ना पड़ता। किसी इतिहासकार ने बहुत ठीक लिखा है कि– **"यह बलिदान ऐसा लगता है जैसे आँधी और तूफान के बीच फँसे जहाज को डूबने से बचाने के लिए उसके यात्री जहाज का सामान समुद्र में फेंक रहे हों।"**

"विवश उदारता" के उन्माद, प्रतिस्पर्धा, विशेष में विशेषाधिकार युक्त वर्गों के प्रतिनिधि अपनी सीमा से कुछ आगे निकल गये थे। उपर्युक्त प्रस्ताव केवल कार्यक्रम मात्र थे उन्हें कानूनी रूप देने में कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। अनेक ऐसी चीजों को बनाये रखने के लिए सघर्ष किया जिन्हें छोड़ने की घोषणा चार अगस्त की रात्रि की जा चुकी थी। सभा के ऐतिहासिक अधिवेशन में उपस्थित सामंतों तथा बिशपों ने जिन विशेषाधिकारों का त्याग किया था, आवश्यक नहीं था कि उनके वर्ग के सभी अथवा बहुसंख्यक सदस्य उन्हें स्वीकार कर लें। यही हुआ, सभा भवन में जो उदारता दिखाई गई थी, इस उदारता को सभागृह की दीवारों से बाहर निकलने में काफी विरोध का सामना करना पड़ा। उदार नीति के विरोधी खोई हुई शक्ति को पुनः प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील रहे तथा आगे चलकर क्रांति विरोधी अथवा प्रति क्रांतिकारी कहलाये।

इसी विचार से चार अगस्त की घोषणाओं को कानूनी रूप देते समय सामन्तशाही के सभी अंगों को पूरी तरह नष्ट नहीं किया जा सका। 5 से 11 अगस्त के बीच बहुत से सामन्ती करों तथा कर्मचारियों का टाइथ, कानूनी तौर पर समाप्त कर दिये गये, किन्तु परस्पर समझौते से सम्बन्धित करों की धनराशि की अदायगी किसानों को करनी थी। 1793 में शेष विशेषाधिकारों को कानूनी तौर पर समाप्त कर दिया गया, किन्तु व्यवहार में ये पहले ही समाप्त हो चुके थे।

इस तरह हम देखते हैं कि चार अगस्त की रात्रि को राष्ट्र के कन्धों से घृणित तथा अन्यायपूर्ण सामाजिक असमानता का बोझ उतार फेंका गया। सदियों पुरानी दासता मानो एक ही रात्रि के अंधेरे में विलुप्त हो गई हो। सामंतवाद की समाप्ति ने न केवल पुरातन व्यवस्था के समाज को नष्ट कर दिया अपितु नये समाज की आधारशिला भी रख दी। इस रात्रि की रचनात्मक उपलब्धियाँ इस प्रकार थीं– समान कर व्यवस्था, समान अवसर, समान न्याय तथा नागरिक एवं धार्मिक संस्थाओं में क्रांतिकारी सुधार इत्यादि। इन उपलब्धियो ने समान नागरिकता को

जन्म दिया जो आधुनिक फ्रांस की मुख्य शक्ति बन गई। चूँकि सामन्तवाद की जड़ें फ्रांस में बहुत गहरी थीं, इसलिए वहाँ के प्रशासनिक एवं अधिकारिक क्षेत्रों में इसका प्रभाव भले ही आने वाली शताब्दियों में भी बना रहा हो किन्तु वे फिर कभी जनता का शोषण नहीं कर सके। इस तरह **"अतीत का फ्रांस चार अगस्त को नष्ट हो गया तथा उसके स्थान पर नये प्रजातांत्रिक फ्रांस का जन्म हुआ।"**

5.9 क्रांति का महत्व (IMPORTANCE OF THE REVOLUTION)

फ्रांसीसी क्रांति को आधुनिक काल के इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना इसलिए माना जाता है कि इस क्रांति ने कुछ ऐसे मूल्यों की प्रतिष्ठा की जिनकी जरूरत सम्पूर्ण विश्व को थी। मानव जाति के इतिहास में मानवता को शोषण से बचाने तथा नए लोकतांत्रिक मूल्यों के आधार पर जीने की राह दिखाने का कार्य इस क्रांति ने किया। अधिकांश फ्रेंच और विदेशी लेखकों का विचार है कि फ्रेंच क्रांति आधुनिक इतिहास की महानतम घटना सिद्ध हुई है। इस घटना ने आधुनिक जीवन की उदार, जनतंत्रीय तथा प्रगतिशील विचारधारा की नींव रखी। हालैण्ड रोज, इस क्रांति को, विचार, समाज और राजनीति के क्षेत्र में एक ऐसी विजय मानते हैं, जो कि अव्यवस्था, विशेषाधिकार तथा निरंकुश शासन से युक्त, पुरातन व्यवस्था पर पाई गई थी। पुरातन व्यवस्था के यूरोपीय समाज और राजनीति पर हुए इस भयंकर आक्रमण ने मानव मस्तिष्क को इस प्रकार आन्दोलित कर दिया कि प्राचीन रूढ़ियों और मान्यताओं का बना रहना असंभव हो गया। मुख्यतः इसी अर्थ में इसे एक महत्वपूर्ण घटना कहा है। इसकी महत्ता का मूल्यांकन हम क्रांति की उपलब्धियों के आधार पर कर सकते हैं।

1789 की क्रांति के उद्देश्यों को राष्ट्र की जनता द्वारा प्रदत्त स्मृतिपत्रों में पढ़ा जा सकता है। सामाजिक असमानता, सामंतीय विशेषाधिकार तथा निरंकुश एवं भ्रष्ट प्रशासन के विरुद्ध फ्रांसीसी जनता की भावनायें अधिक तीव्र थीं। बौद्धिक आन्दोलन से प्रेरित होकर, 1789 में एक महान क्रांति का आरंभ हुआ।

1789 से 1799 के दशक की सारी उथल–पुथल और अस्थिरता के बावजूद भी यह बात स्पष्ट है कि राजनैतिक सत्ता को निर्बल बनाना तथा धार्मिक सत्ता को नष्ट करना क्रांति का उद्देश्य नहीं था। मध्यम वर्ग की रुचि निरंकुशता और अव्यवस्था के विरुद्ध राजनैतिक सत्ता तथा व्यवस्था में थी। कृषकों की रुचि विशेषाधिकारों के विरुद्ध समानता में थी। अतः हम कह सकते हैं कि सामाजिक समानता और व्यवस्था क्रांति के मुख्य उद्देश्य थे। बाद में राष्ट्रीय गौरव प्राकृतिक सीमांत और विश्व बन्धुत्व की भावनाओं को यूरोप में फैलाना आदि नए सिद्धान्त क्रांति के उद्देश्य के साथ जुड़ गये।

अनेक चरणों में **"सामन्तीय देशों"** को समाप्त कर तथा न्याय और कर व्यवस्था में समानता लाकर, क्रांति ने सामाजिक समानता की कल्पना को वास्तविकता में परिणत कर दिया। पुरातन फ्रांस की मुख्य विकृति अव्यवस्था के स्थान पर क्रांति ने तीन संविधानों तथा अन्य उपायों के माध्यम से न केवल व्यवस्था की स्थापना का प्रयास किया अपितु आधुनिक उदार जनतंत्रीय राज्य की नींव भी रख दी। राजनैतिक दृष्टि से, क्रांति की यह एक महानतम उपलब्धि थी। कानून अब एक व्यक्ति (राजा) की इच्छा का परिणाम न होकर राष्ट्र के निर्वाचित प्रतिनिधियों की इच्छा का परिणाम था। वंशानुगत और भ्रष्ट न्यायाधीशों के स्थान पर अब निर्वाचित न्यायपालिका तथा जूरी पद्धति थी। चर्च के आडम्बरों तथा क्रियाकलापों को बहुत कम कर दिया गया। क्रांति ने सहिष्णुता का परिचय देते हुये यहूदियों और विदेशियों को भी नागरिक अधिकार दिये।

यद्यपि फ्रांस के निर्धन वर्ग को 1795 में मताधिकार से अवश्य वंचित होना पड़ा, तथापि कार्य की स्वतंत्रता, व्यक्तियों तथा सम्पत्ति की सुरक्षा द्वारा राष्ट्रीय जनता के लिए नए मूल्य स्थापित

NOTES

भविष्य में क्रांति ने सार्वभौमिक रूप धारण कर लिया। जो मूल्य क्रांति ने दिये– पुरातन व्यवस्था का टूटना तथा बौद्धिक जागृति–सम्पूर्ण यूरोप ने अपना लिए। शीघ्र ही यूरोप के अन्य देश क्रांतिकारी विचारधारा की चपेट में आ गए। 1848 की व्यापक क्रांतियाँ तथा इटली और जर्मनी का एकीकरण इसके प्रभावशाली उदाहरण हैं। फ्रांस की क्रांति को समझना एक तरह से उन्नीसवीं–बीसवीं शताब्दी को समझना है।

5.10 सारांश

फ्रांस की क्रांति का लोकविले का यह विश्लेषण विल्कुल सही है फ्रांस की क्रांति से पूर्व की स्थिति बहुत खराब थी। निरंकुश और स्वेच्छाचारी शासक, विशेषाधिकारों से सम्पन्न अभिजात वर्ग, आर्थिक स्थिति की मार आम जनता की पीठ पर चढ़ना सामंतवादी समाज तथा शासन व्यवस्था, पुरानी–गली परम्पराओं तथा रूढ़ियाँ निर्जीव संस्थाएँ इत्यादि। फ्रांस की क्रांति से पूर्व की स्थिति को एक शब्द में असमानता से व्यक्त किया जा सकता है। 1789 की क्रांति निरंकुशता की अपेक्षा असमानता के विरुद्ध अधिक थी।

5.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

दीर्घोत्तरीय प्रश्न

(1) फ्रांस की क्रांति के कारणों का वर्णन कीजिये।

(2) फ्रांस की क्रांति में दार्शनिकों के योगदान का वर्णन कीजिये।

(3) फ्रांस की क्रांति कैसे घटित हुई? समीक्षा कीजिये।

लघु उत्तरीय प्रश्न

(1) "चार अगस्त की रात्रि को इतिहास में वर्णित फ्रांस का स्थान प्रजातंत्रीय इतिहास ने ले लिया।" इस कथन की समीक्षा कीजिये।

(2) फ्रांस की क्रांति का तात्कालिक प्रभाव क्या हुआ। टिप्पणी कीजिये।

(3) विश्व में फ्रांसीसी क्रांति के महत्व पर टिप्पणी कीजिये।

विकल्प

अपनी प्रगति की जाँच करें
Test your Progress

1. राष्ट्रीय दिवस कब घोषित हुआ–

(अ) 14 जुलाई (ब) 14 अगस्त (स) 14 सितम्बर (द) 14 अक्टूबर

उत्तर 1. (अ)

5.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

विश्व इतिहास (18वीं, 19वीं सदी – डॉ. संजीव जैन, कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल)

●●●

अध्याय-6 राष्ट्रीय सभा और डाइरेक्ट्री
(NATIONAL ASSEMBLY & DIRECTORY) (1789 &1799)

NOTES

इकाई की रूपरेखा (इकाई–3)

6.0 उद्देश्य
6.1 परिचय
6.2 राष्ट्रीय संविधान सभा
6.3 संविधान सभा के कार्य
6.4 कार्यपालिका
6.5 स्थानीय शासन
6.6 न्याय व्यवस्था
6.7 संवैधानिक एकतंत्र का परीक्षण विधान सभा
6.8 गणतंत्र की स्थापना राष्ट्रीय संविधान परिषद
6.9 आतंक का राज्य : जून 1793 – जुलाई 1794
6.10 1795 का संविधान
6.11 निदेशक मंडल
6.12 सारांश
6.13 अभ्यास प्रश्न
6.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

6.0 उद्देश्य

इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे कि–

1 राष्ट्रीय सभा के उद्देश्य एवं कार्य जान सकेंगे।

2 कार्यपालिका स्थानीय शासन एवं न्याय व्यवस्था से परिचित हो सकेंगे।

3. लोकतं. एवं गणतंत्र के महत्व का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

4. राष्ट्रीय संविधान परिषद का महत्व जान सकेंगे।

6.1 परिचय

फ्रांस में जब राजतंत्र और कुलीनतंत्र का संघर्ष खुलकर सामने आ गया तो विशेषाधिकार युक्त वर्गों की माँग पर राजा ने 1789 में स्टेट्स जनरल का अधिवेशन बुलाने की घोषणा की। स्टेट्स जनरल को आमंत्रित करना कुलीन वर्ग की विजय थी, क्योंकि इस सभा का स्वरूप ही ऐसा था कि विशेषाधिकार युक्त वर्ग राजा पर नियंत्रण पा सकता था। तीनों श्रेणियों–पादरी, कुलीन तथा जनसाधारण के प्रतिनिधि तीन अलग–अलग सदनों में बैठते थे तथा एक सदन का एक मत होता था।

NOTES

6.2 राष्ट्रीय संविधान सभा (NATIONAL CONSTITUENT ASSEMBLY) (अक्टूबर 1789 से सितम्बर 1791)

राष्ट्रीय संविधान सभा के निर्माण ने फ्रांस के इतिहास में नयी हलचल पैदा की। इससे विश्व इतिहास ने प्रेरणा ली। राष्ट्रीय संविधान सभा पर देश में आन्तरिक व्यवस्था बनाये रखने के अतिरिक्त, जिसके लिए उसने अनेक महत्वपूर्ण कार्य किये थे, अनेकानेक कार्यों को पूर्ण करने का दायित्व था। स्मृति–पत्रों की शिकायतों पर विचार करने के साथ–साथ उसे टेनिस–कोर्ट की शपथ के अनुसार फ्रांस के लिए एक नया संविधान भी तैयार करना था। कार्य अत्यन्त कठिन था, परन्तु राजतन्त्र के अवशेषों पर प्रजातन्त्र का भवन खड़ा करने के लिए सभा ने बड़ा कठोर परिश्रम किया। उसने देश के लिए नवीन संविधान का निर्माण किया तथा शासन में अनेक सुधार किये।

स्टेट्स जनरल के चुनावों की घोषणा के बाद अप्रैल 1789 तक स्टेट्स जनरल के चुनाव पूरे हो गए। निर्वाचित सदस्यों की वास्तविक संख्या 1214 थी। इसमें 308 पादरी, 285 कुलीन तथा 621 जन साधारण के थे। जन साधारण में मध्यमवर्ग के लोगों की अधिकता थी। इसी वर्ग ने भविष्य में क्रांति का नेतृत्व किया।

5 मई, 1789 को सम्राट लुई सोलहवें ने स्टेट्स जनरल का अधिवेशन बहुत विवशता में बुलाया। राजा का निर्देश था तीनों सदन अलग–अलग अपने कक्षों में बैठकर अपना कार्य शुरू करें। परन्तु दूसरे ही दिन इस बात को लेकर विवाद पैदा हो गया। जन साधारण के प्रतिनिधि तीनों वर्गों की सम्मिलित बैठक एवं प्रति सदस्य मतदान के अधिकार की माँग पर अड़ गये। उन्हें मिराबो के रूप में एक योग्य नेता भी मिल गया। जन साधारण के प्रतिनिधियों ने कुलीनों और पादरियों के प्रतिनिधियों को एक साथ एक ही सभा में बैठने का निमंत्रण भी भेजा। 15 जून, 1789 तक पादरी तृतीय श्रेणी के सदन में आ मिले।

17 जून, 1789 तीसरी श्रेणी के प्रतिनिधियों ने स्वयं को राष्ट्र के वास्तविक एवं सच्चे प्रतिनिधि मानते हुए राष्ट्रीय महासभा घोषित कर दिया। यह एक क्रांतिकारी और सीधी चुनौती थी। इस सभा ने निम्न माँगें राजा लुई सोलहवें के समक्ष प्रस्तुत कीं–

(1) सामन्तों के विशेष अधिकार पूर्ण रूप से समाप्त हों;

(2) सामन्त भी साधारण लोगों की भाँति समान रूप से कर दें;

(3) इस सभा को संविधान बनाने का अधिकार दिया जाए;

(4) इस सभा का अधिवेशन नियमित रूप से हुआ करे।

19 जून, 1789 को पादरियों का बड़ा वर्ग साधारण वर्ग के प्रतिनिधियों के साथ आकर मिल गया। उच्च वर्ग के दरबारियों ने सम्राट लुई सोलहवें को भड़काया और कहा कि निम्न वर्ग के प्रतिनिधि विद्रोह के लिए उतारू हैं। 20 जून की बरसात से भीगी सुबह जब प्रतिनिधि सभा भवन के समक्ष पहुँचे तो उसमें ताले लगे थे और सैनिक पहरा दे रहे थे। प्रतिनिधियों ने हौसला दिखाया और पास ही टेनिस खेलने के मैदान पर अपना अधिवेशन किया। बेली की अध्यक्षता में प्रतिनिधियों ने एक शपथ ली जिसे हाथ उठाकर कहा कि– **"राष्ट्रीय सभा यह निश्चय करती है कि हम कभी अलग नहीं होंगे और जब तक संविधान का निर्माण नहीं हो जाता, तब तक जब भी और जहाँ भी परिस्थितियों के अनुसार संभव होगा, एकत्र होते रहेंगे।"** क्रांति के इतिहास में यह घटना टेनिस कोर्ट की शपथ के नाम से ख्यात है।

टेनिस कोर्ट की शपथ का समाचार सुनकर राजा के पैरों तले से जमीन खिसक गई। उसने 23 जून, 1789 ई. को तीनों वर्गों का एक शाही तथा संयुक्त अधिवेशन बुलाया। राजा ने 17 जून की टेनिस कोर्ट की शपथ के अवैध ठहराते हुए अगले दिन सदनों को अलग–अलग

सभा भवनों में बैठने के निर्देश दिये गये। राजा के जाने के बाद कुलीन और पादरी वर्ग चले गये, परन्तु साधारण वर्ग के प्रतिनिधि वहीं बैठे रहे। राष्ट्रीय सभा के प्रधान मिस्टर बैले ने सम्राट का आदेश मानने से इन्कार कर दिया और उसने कहा कि– **"हमने फ्रांस की जनता को उसके अधिकार दिलाने की शपथ ग्रहण की है। 24 और 25 जून को काफी संख्या में पादरी और कुलीन प्रतिनिधि तृतीय सदन में आ मिले। 27 जून को राजा ने प्रथम दोनों सदनों के अध्यक्षों को लिखित आदेश भेजे कि तीनों सदन मिलकर एक सभा में बैठें इस तरह राष्ट्रीय सभा को वैधानिक स्वीकृति मिल गई। 27 जून को क्रांति के पहले दौर में जनता की विजय हुई।"**

6.3 संविधान सभा के कार्य (WORK OF THE CONSTITUENT ASSEMBLY)

राष्ट्रीय महासभा को 27 जून, 1789 को राजा ने अपनी स्वीकृति दे दी। जुलाई से इस सभा ने अपना कार्य करना प्रारंभ किया। इसका मुख्य कार्य फ्रांस के लिए संविधान बनाना था। 9 जुलाई, 1789 ई. को राष्ट्रीय सभा को राष्ट्रीय संविधान सभा का नाम दे दिया गया।

राष्ट्रीय संविधान सभा के दो वर्ष के समय में पुरातन शासन व्यवस्था नष्ट हो गई और क्रांतिकारी शासन व्यवस्था स्थापित हुई। इसके मुख्य कार्य थे–सामंतीय विशेषाधिकारों की समाप्ति, मानव अधिकारों की घोषणा, संविधान और संवैधानिक राजतन्त्र की व्यवस्था चर्च की सम्पत्ति का राष्ट्रीयकरण, आंसिया का जारी होना, पादरियों का नागरिक संविधान तथा फ्रांस का प्रशासनिक विकेन्द्रीयकरण आदि।

(1) सामन्तों के विशेषाधिकारों का अन्त

राष्ट्रीय संविधान सभा ने 30 नवीन आदेश जारी करके फ्रांस में सामन्तों के विशेषाधिकारों का अन्त कर दिया। संविधान सभा ने सबसे पहले सामन्तीय व्यवस्था को समाप्त करने के लिए कदम उठाये। सबसे आश्चर्य की बात तो यह थी कि इस प्रयत्न में कुलीनों ने नेतृत्व किया। सामन्तवाद की प्रथाओं से जनता को जो कष्ट था उसे उन्होंने स्वीकार किया और जो कर तथा नजराने कृषक लोग जमींदारों को देते थे, उन्हें बन्द करने का प्रस्ताव किया। पादरियों ने भी अपने विशेषाधिकार छोड़ देने की घोषणा की। **गुडविन** का मत है कि सामन्तों व पादरियों ने स्वेच्छा से अपने विशेषाधिकारों का त्याग नहीं किया था, अपितु भय के कारण अपने अधिकारों को छोड़ा था। इसी प्रकार जिन–जिन लोगों के जो–जो विशेषाधिकार थे, उन–उन लोगों ने उन सबको त्याग देने की घोषणा की, हालाँकि ऐसा करने में उनकी जो क्षति पहले ही हो चुकी थी, उसे उन्होंने ऊपरी ओर से त्याग का रूप दे दिया। उनके समस्त अधिकार छिन चुके थे। यदि वे उन्हें फिर से प्राप्त करने का प्रयत्न करते तो भयंकर देशव्यापी गृहकलह आरम्भ हो जाती जिसका परिणाम उनके लिए अधिक अनिष्टकारी होता। इन आदेशों द्वारा जो कार्य हुए वे इस प्रकार हैं –

(i) सब व्यक्तियों पर समान रूप से कर लगाये जायेंगे,

(ii) सामन्तों से न्यायाधिकार छीन लिए गये,

(iii) किसानों को दास प्रथा से मुक्त किया गया,

(iv) ग्रामीण पादरियों के वजीफे बन्द कर दिये गये,

(v) सामन्तों और कुलीनों पर भी उनकी आय के अनुसार कर लगाये गये,

(vi) राजकीय पदों को टाइथ कर से मुक्त कर दिया गया,

(vii) राजकीय पदों का क्रय–विक्रय बन्द कर दिया गया,

(viii) अर्द्धदास–प्रथा,

(ix) बेगार,

(x) जितने प्रकार की सेवा कृषक लोग अपने भूमिपतियों की किया करते थे,

(xi) जितने प्रकार के कर तथा नजराने वे दिया करते थे,

(xii) भूमिपतियों का शिकार का एकाधिकार आदि जितनी कष्टप्रद बातें थीं, सब नष्ट हो गयीं,

(xiii) चर्च को जो कर दिये जाते थे, वे बन्द कर दिये गये,

(xiv) कानून के सामने सब लोगों की समानता स्थापित हो गयी,

(xv) सरकारी पद योग्यता के आधार पर सबके लिए खुल गये,

(xvi) निःशुल्क न्याय सबके लिए सुलभ हो गया,

इस प्रकार सामन्तवाद की अन्त्येष्टि हो गयी, समस्त वर्ग–भेद नष्ट हो गये और समानता का सिद्धान्त राज्य समाज का आधार बन गया। 4 अगस्त के इन प्रस्तावों पर टिप्पणी करते हुए **लॉर्ड एक्टन** ने लिखा है: **''4 अगस्त को इतिहास के फ्रांस का नाश हो गया और नव–प्रजातंत्र के फ्रांस ने उसका स्थान ले लिया था।''**

(2) मानवीय अधिकारों की घोषणा

कई सप्ताहों के वाद–विवाद के बाद 27 अगस्त, 1789 को रूसो के सामाजिक समझौते के आधार पर ''मानव और नागरिक के आधारभूत अधिकारों'' की 17 धाराओं में घोषणा की गयी। 27 अगस्त, 1789 को राष्ट्रीय संविधान सभा ने जिन मानवीय अधिकारों की घोषणा की थी उनमें प्रमुख इस प्रकार हैं –

(i) सभी मनुष्य स्वतंत्र पैदा हुए तथा रहते हैं और वे अधिकारों में समान हैं। सामाज़िक भेद का आधार केवल सार्वजनिक उपयोगिता ही हो सकती है।

(ii) बिना मुआवजा दिये हुए किसी भी सम्पत्ति का अपहरण अथवा अधिग्रहण नहीं किया जायेगा।

(iii) प्रत्येक राजनैतिक संगठन का उद्देश्य मानव के प्राकृतिक एवं जन्मसिद्ध अधिकारों की रक्षा करना है। ये अधिकार हैं– स्वतंत्रता, सम्पत्ति, सुरक्षा तथा दमन का विरोध।

(iv) न्याय की दृष्टि से सभी नागरिक समान हैं।

(v) प्रत्येक नागरिक को भाषण देने, लेख लिखने और छपवाने की स्वतंत्रता दी जाती है, यदि वह सार्वजनिक हितों के विरुद्ध नहीं है तो।

(vi) सभी को धार्मिक स्वतंत्रता प्रदान की गई।

(vii) कानून सामान्य इच्छा की अभिव्यक्ति है, अतः जनता के सभी प्रतिनिधियों को कानून बनाने में अधिकार दिया गया।

(viii) जनता के प्रतिनिधियों को राजकोष पर नियंत्रण रखने का अधिकार है।

(ix) राज्य की शक्ति का अन्तिम स्रोत जनता है। अतः प्रभुसत्ता संसद में न रहकर जनता में निवास करती है।

(x) कोई भी व्यक्ति दूसरे का शोषण नहीं कर सकता।

(3) मानवाधिकार घोषणा–पत्र की कमियाँ

मानव–अधिकारों के इस घोषणा–पत्र में कई कमियाँ थीं जिनकी आलोचना भी की गई थी, परन्तु इसकी तुलना इंग्लैण्ड के मेग्ना कार्टा तथा बिल ऑफ राइट्स से भी की गई और

इसके महत्व को प्रतिपादित किया गया। क्योंकि इससे तत्कालीन राजनीति पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा। इस घोषणा के महत्व को स्पष्ट करते हुए ग्रांट और टेम्परले ने लिखा है: **"फिर भी अधिकारों की घोषणा में क्रांति का श्रेष्ठ अंश था जिसके अभाव में फ्रांस की क्रांति को संसार के इतिहास में इतना ऊँचा स्थान नहीं मिलता।"**

NOTES

इसमें प्रमुख कमियाँ निम्नलिखित थीं जिनके फलस्वरूप इसका महत्व काफी कम हो गया–

(i) यह केवल मानव–अधिकारों की घोषणा थी, कर्तव्यों का इसमें कहीं भी वर्णन नहीं था।

(ii) इसमें व्यवसाय की स्वतंत्रता के सम्बन्ध में कोई उल्लेख नहीं किया गया था।

(iii) इसमें सार्वजनिक शिक्षा के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा गया था।

(iv) इसमें संघ बनाने के अधिकार के सम्बन्ध में कोई उल्लेख नहीं था।

(v) फ्रांस के विभिन्न उपनिविशों में काम करने वाले दासों के सम्बन्ध में इसमें कोई उल्लेख नहीं था।

(vi) व्यक्तिगत सम्पत्ति का अधिकार अत्यन्त सीमित कर दिया गया था।

(4) नई प्रशासनिक व्यवस्था

फ्रांस को नई शासन व्यवस्था के अधीन 83 प्रान्तों और 374 जिलों में बाँटा गया। सारे देश में प्रान्तीय और स्थानीय परिषदें स्थापित की गईं जिनमें जनता के चुने हुए प्रतिनिधि शामिल होते थे।

(5) नयी न्याय पद्धति

न्याय विभाग में भी क्रांतिकारी परिवर्तन लागू किये गये। अब न्यायाधीशों की नियुक्ति का अधिकार सम्राट या न्यायपालिका को नही रहा। न्यायाधीशों के चुनाव की व्यवस्था की गई और उनका कार्यकाल 2 वर्ष से 5 वर्ष तक रखा गया। न्याय पूर्णतया निःशुल्क करने की व्यवस्था की गई। पुरानी दण्ड व्यवस्था का अन्त कर दिया, परन्तु मृत्यु दण्ड बरकरार रखा गया।

(6) आर्थिक सुधार

आर्थिक क्षेत्र में निम्न सुधार किए गए –

(i) गिरजाघरों की सम्पत्ति का राष्ट्रीयकरण :– चर्च के पास फ्रांस की कुल भूमि का पाँचवाँ भाग था। राष्ट्रीय सभा ने चर्च की सारी सम्पत्ति तथा अन्य धार्मिक संस्थाओं की सम्पत्ति को 2 नवम्बर, 1789 को चर्च के कड़े विरोध के बावजूद जब्त कर लिया। यह सम्पत्ति 15 करोड रुपये से अधिक की थी। राष्ट्रीय सभा ने इस सम्पत्ति की जमानत पर नोट चलाए।

(ii) रजिस्ट्रेशन कर के अतिरिक्त सभी कर समाप्त कर दिये गये। किसानों पर एक मात्र भूमिकर लगाया गया। स्थानीय चुंगी तथा श्रेणियाँ समाप्त कर दिए गए। अनाज के व्यापार को करों से मुक्त कर दिया गया।

(iii) देश में कई नए कारखानों की स्थापना की गई। व्यापार को पर्याप्त प्रोत्साहन दिया गया परन्तु अनेक प्रयासो के बावजूद भी राष्ट्रीय सभा बेकारी की समस्या हल नहीं कर सकी।

(7) पादरियों के लिए नया संविधान

चर्च की सम्पत्ति के राष्ट्रीयकरण से पादरियों के भरण–पोषण की समस्या उत्पन्न हुई। इसके समाधान के लिए **'पादरियों का लौकिक संविधान'** पारित किया गया। इसके अनुसार चर्च को राज्य के अधीन कर दिया गया तथा रोम पोप से उसका सम्बन्ध तोड दिया जाना निश्चित

NOTES

हुआ। तत्कालीन फ्रांस की धार्मिक व्यवस्था में अनेक दोष थे। बिशप नियुक्त होते थे, उन सब पर पोप का नियन्त्रण होता था। अतः जब कभी राज्य और चर्च के मध्य संघर्ष होता था तो सब पोप का पक्ष ग्रहण करते थे। पादरियों पर उचित नियन्त्रण बनाये रखने के लिए और पोप की शक्ति को कम करने के उद्देश्य से राष्ट्रीय सभा ने जुलाई, 1790 में पादरियों के नागरिक संगठन नामक अधिनियम को पारित करके उनके लिए निम्नलिखित व्यवस्था की–

(i) फ्रांस में कुल 83 प्रान्त थे। प्रत्येक प्रान्त में एक बिशप की नियुक्ति करना निश्चित किया गया।

(ii) समस्त पादरियों एवं धर्माधिकारियों को राज्य से वेतन मिलने लगा। इस प्रकार बिशप तथा चर्च के अन्य अधिकारी राज्य के कर्मचारी हो गये।

(iii) धर्माधिकारी अब पोप के अधीन न होकर राज्य के अधीन हो गये।

(iv) प्रत्येक पादरी को इस नवीन व्यवस्था और राज्य के प्रति निष्ठा की शपथ लेना आवश्यक हो गया।

(v) पादरियों व बिशपों का चुनाव जनता द्वारा होने लगा और उनकी नियुक्ति के लिए पोप की स्वीकृति की आवश्यकता न रही।

पादरियों की नयी व्यवस्था के परिणाम

(i) इस नवीन व्यवस्था के कारण क्रान्ति के शत्रुओं की संख्या में वृद्धि हुई। सम्राज स्वयं कट्टर कैथोलिक था। वह इस व्यवस्था से सहमत नहीं था, परन्तु विवश होकर उसे उसको स्वीकार करना पड़ा।

(ii) अनेक पादरी राज्य के विरोधी हो गये। जो वर्ग अब तक क्रांति का प्रबल समर्थक था और जिसने क्रान्ति को सफल बनाने में अत्यधिक सहायता की थी, वह इस नई व्यवस्था के कारण क्रांति का विरोधी हो गया।

(iii) पोप के आदेश पर उसके अनुयायियों ने चर्च की सम्पत्ति को खरीदने से इन्कार कर दिया। फलतः मुद्रा का अवमूल्यन हुआ।

(iv) इस नई व्यवस्था के अनुसार कट्टर कैथोलिक पादरियों के चुनाव में प्रोटेस्टेण्ट लोगों को भी भाग लेने का अधिकार था। इस कारण कैथोलिक लोग बड़े दुःखी हुए।

(8) मठों का विनाश

संविधान सभा ने मठों में निवास करने वाले भिक्षुओं और भिक्षुणियों पर भी प्रतिबंध लगाया क्योंकि फ्रांस में 18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भिक्षुओं और भिक्षुणियों की संख्या अत्यधिक बढ़ गयी थी। ये मठों में निवास करते थे। 6 फरवरी, 1791 को संविधान सभा ने घोषित किया कि भविष्य में कोई व्यक्ति भिक्षु अथवा भिक्षुणी के रूप में दीक्षित न हो सकेगा और यदि पुराने भिक्षु और भिक्षुणियाँ चाहें तो वे भी विवाह करके सांसारिक जीवन व्यतीत कर सकते हैं। इसके परिणामस्वरूप भिक्षुओं और भिक्षुणियों द्वारा संचालित मठों का विनाश हो गया।

(9) नए संविधान की रचना 1791

फ्रांस के इतिहास का पहला लिखित संविधान इस सभा का एक क्रांतिकारी कार्य था। संविधान के निर्माण के लिए सभा ने 6 जुलाई को एक समिति नियुक्त की थी जिसने दो सिद्धान्तों के आधार पर नया संविधान तैयार किया। यह दो सिद्धान्त थे–

(i) जनता की प्रभुता,

(ii) शक्ति–पार्थक्य (कार्यपालिका, विधायिका तथा न्यायपालिका को पृथक रखने का सिद्धान्त)।

संविधान में सांविधानिक राजतन्त्र की व्यवस्था की गयी तथा फ्रांस के राजा को **'फ्रांस का राजा'** का वैधानिक दर्जा दिया गया। इसमें विधानपालिका, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका के अलग-अलग कार्य निर्धारित किए गए। यह संविधान 30 सितम्बर, 1791 ई. को तैयार हुआ।

इस प्रकार संविधान में मांतेस्क्यू के विचारों का प्रभाव स्पष्ट था। **मादेलाँ** ने इसकी आलोचना करते हुए लिखा है – **''1791 का संविधान जनतंत्रात्मक क्रान्ति की अपेक्षा निरंकुशवाद के विरुद्ध प्रतिक्रिया का परिणाम था।''**

विधायिका

नये संविधान ने एक सदन वाली विधायिका-विधानसभा की स्थापना की। इस विधानसभा की निम्न विशेषतायें थीं –

(i) इसमें दो वर्ष के लिए परोक्ष रूप से निर्वाचित 745 सदस्य रखे गये।

(ii) निर्वाचन के लिए नागरिक दो भागों में विभक्त किये गये। वे नागरिक जिनकी अवस्था कम से कम 25 वर्ष की थी, जो कम से कम 3 दिन की आय कर के रूप में देते थे और जिनके नाम नगरपालिका के रजिस्टरों में तथा राष्ट्रीय रक्षक दल में दर्ज थे, वे **'सक्रिय'** नागरिकों की कोटि में रखे गये, शेष **'निष्क्रिय'** नागरिक रहे।

(iii) सक्रिय नागरिक प्रति सौ नागरिकों के लिए एक निर्वाचक चुनते थे और इन निर्वाचकों को 'निर्वाचक-मण्डल' प्रतिनिधि चुनता था।

(iv) निर्वाचन के लिए यह आवश्यक था कि वह सम्पत्ति का स्वामी या आसामी हो और वर्ष के 10 दिन की आय कर के रूप देता हो।

(v) प्रतिनिधि कोई भी सक्रिय नागरिक चुना जा सकता था। इसके लिए भूमि का स्वामी होना और 54 फ्रेंक कर के रूप में देना आवश्यक था।

(vi) न्यायिक अथवा प्रशासनिक अथवा अप्रशासनिक पद पर कार्यरत कोई भी व्यक्ति विधान-सभा का सदस्य नियुक्त नहीं हो सकता था।

(vii) इस विधान-सभा को कानून-निर्माण के पूर्ण अधिकार थे।

(viii) उस पर एकमात्र नियन्त्रण राजा के 'स्थगनकारी निषेध' का था। राजा किसी भी कानून को सत्रों के लिए स्वीकार करने से इन्कार कर सकता था, परन्तु उसका यह अधिकार आर्थिक बातों में लागू नहीं होता था।

(ix) अन्य देशों के साथ शान्ति, व्यापार तथा मित्रता सम्बन्धी सन्धियों के लिए विधान-सभा की स्वीकृति रखी गयी।

6.4 कार्यपालिका

देश का कार्यपालिका प्रमुख राजा था और वही शासन का प्रमुख बना रहा। उसे निम्न अधिकार थे –

(i) अपने मन्त्रियों की नियुक्ति,

(ii) सेना के नेतृत्व,

(iii) परराष्ट्र-सम्बन्ध व संचालन के अधिकार मिले,

(iv) विधान-सभा संबंधी कुछ अधिकार छीन लिए गए जो इस प्रकार थे –

1. वह विधान सभा के अधिवेशन आमन्त्रित नहीं कर सकता था।
2. उसे केवल स्थगनकारी निषेध का अधिकार मिला।

3. न्यायालयों तथा न्यायाधीशों पर भी उसका कोई अधिकार नहीं रहा।
4. उसके मन्त्री विधान–सभा के सदस्य नहीं हो सकते थे और इस तरह उन पर सभा का कोई नियन्त्रण नहीं था।

NOTES

इस प्रकार राष्ट्रीय सभा ने इंग्लैण्ड का अनुकरण करके सांविधानिक एकतन्त्र स्थापित किया, परन्तु इसके साथ मोंतेस्क्यू के सिद्धान्त तथा अमेरिका के उदाहरण के अनुसार कार्यपालिका और विधायिका का परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं रखा गया।

6.5 स्थानीय शासन

स्थानीय शासन की पुरानी परंपरा के स्थान पर जनता के प्रभुत्व, एकरूपता तथा विकेन्द्रीकरण के सिद्धांतों के आधार पर नवीन व्यवस्था की स्थापना की। इस नई व्यवस्था के द्वारा सम्पूर्ण देश को 83 प्रान्तों में विभक्त किया गया जो 374 जिलों में बाँटे गये। इनके उपविभाग कम्यून थे जिनकी संख्या 44,000 थी। इन विभागों एवं उपविभागों के लिए सर्वत्र स्थानीय तथा प्रान्तीय कौंसिलों की योजना की गयी जिनके सदस्य सक्रिय नागरिकों के द्वारा निर्वाचित होने लगे। इस नई व्यवस्था के द्वारा सभा ने स्थानीय शासन पर राजा के प्रत्यक्ष अधिकार को समाप्त कर दिया और सारे देश में समान शासन–व्यवस्था स्थापित करके एकरूपता ला दी।

6.6 न्याय–व्यवस्था

न्याय–व्यवस्था के क्षेत्र में भी पुराने कानूनों को समाप्त करके नये केन्द्रीय तथा स्थानीय न्यायालयों का निर्माण किया। इन न्यायालयों के न्यायाधीशों के लिए भी सक्रिय नागरिकों द्वारा निर्वाचन की व्यवस्था की गयी। मुद्रायुक्त पत्रों का चलन बन्द कर दिया गया और जूरी द्वारा मुकदमों पर विचार करने की व्यवस्था भी की गयी।

राष्ट्रीय सभा के कार्यों की समीक्षा

राष्ट्रीय सभा ने फ्रांस में पुरानी व्यवस्था को समाप्त कर नयी व्यवस्था का निर्माण किया। यद्यपि उसका यह कार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण था, क्योंकि उसके फलस्वरूप फ्रांस अपने सामाजिक विकास के नये युग में प्रविष्ट हुआ, तथापि कार्य की महत्ता को स्वीकार करते हुए भी कुछ इतिहासकार कई आधारों पर उसकी तीव्र आलोचना करते हैं। इतिहासकारों द्वारा की गई इस आलोचना के विभिन्न पहलू थे –

(i) **आधारभूत अधिकारों की घोषणा** – इतिहासकारों ने सबसे पहले संविधान सभा द्वारा घोषित मानवाधिकारों को अलोचना का विषय बनाया। इस संबंध में मिराबो ने कहा था कि "तत्कालीन स्थिति में जनता को उसके अधिकारों की जगह उसके नागरिक कर्तव्यों की याद दिलानी चाहिए थी। उसमें कई त्रुटियाँ थीं और कई बड़े अधिकार अस्पष्ट थे। यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि यह घोषणा मात्र थी।" उसका आशय यह नहीं था कि नागरिकों को वे सब अधिकार तत्काल मिल जायेंगे। उसने जनता के सामने एक आदर्श प्रस्तुत किया था, परन्तु ऐसा करने में उसने जनता में ऐसी आशाएँ उत्पन्न कर दीं, जिनको संविधान में वह स्वयं पूरी नहीं कर सकी। उसे नागरिकों को सक्रिय तथा निष्क्रिय बनने के लिए सम्पत्ति का स्वामी होना आवश्यक था। इस शर्त के अनुसार कुल 43,000 नागरिक निर्वाचक बन सकते थे। इस प्रकार न केवल नागरिकों से समानता का अधिकार छीन लिया गया, वरन् पुराने विशेषाधिकारों की जगह नये विशेषाधिकार स्थापित कर दिये गये। वास्तव में संविधान–सभा की भूल यह नहीं थी कि उसने आधारभूत अधिकारों की घोषणा की। उसकी भूल यह भी कि उसने संविधान–निर्माण से पूर्व यह घोषणा की। यदि संविधान का निर्माण पहले कर लिया जाता तो संविधान–सभा घोषणा की रचनात्मक क्षेत्र की असंगतियों से बच सकती थी।

(ii) **संविधान की आलोचना** – जहाँ तक संविधान का प्रश्न था, राजा की शक्ति कम करने के उत्साह में उसने केवल उसके अधिकार ही कम नहीं किये, वरन् उसका विधान–सभा से कोई सम्बन्ध ही नहीं रखा। उसके मन्त्री विधान–सभा के सदस्य नहीं हो सकते थे। इस प्रकार शासन की आवश्यकता बतलाने वाला तथा शासन के प्रति शंकाओं का निवारण करने वाला कोई व्यक्ति विधान–सभा में नहीं हो सकता था। अतः दोनों में मतभेद की सम्भावना बनी रही। मतभेद के निराकरण के लिए विधान–सभा को भंग करके मतभेद के मामले का निर्णय जनता पर छोड़ देने का अधिकार भी उसके हाथ में नहीं था।

(iii) **कार्यपालिका संबंधी आलोचना** – संविधान सभा ने इस भय से कि कहीं राजा अपने पुराने अधिकार फिर से प्राप्त न कर ले, उसने शासन का विकेन्द्रीकरण करके उसे बिलकुल निर्बल कर दिया। स्थानीय कर्मचारी तथा न्यायाधीश सब चुने हुए होने लगे जिन्हें शासन का कोई अनुभव नहीं था। इसका परिणाम यह निकला कि शासन अस्त–व्यस्त हो गया और देश में अराजकता व्याप्त हो गयी।

(iv) **चर्च का नया संगठन** – संविधान सभा द्वारा चर्च का नया संगठन बनाना भी एक भूल थी। इसमें कैथोलिक पादरियों का चुनाव प्रोटेस्टेण्ट लोगों तथा नास्तिकों के द्वारा भी हो सकता था। इस बात से धार्मिक प्रवृत्ति के लोगों की भावनाओं को बड़ी चोट पहुँची। पादरियों ने शपथ लेने से इन्कार कर दिया। उनमें वे छोटे पादरी भी थे जिन्होंने आरम्भ से ही सर्वसाधारण–वर्ग तथा क्रान्ति का साथ दिया था। वे रुष्ट होकर अलग हो गये और क्रांति–विरोधी दल की जनता अधिकांश में कैथोलिक थी और पादरियों के प्रभाव में थी। इस प्रकार सारे राष्ट्र में फूट पड़ गयी, क्रांति का पक्ष निर्बल हो गया और क्रान्ति–विरोधी दल की शक्ति एवं उसके हौसले बढ़े।

(v) **स्थानीय शासन की आलोचना** – संविधान सभा ने प्रान्तीय एवं स्थानीय प्रशासन के संबंध भी बहुत परिवर्तन किए थे। वे कार्य अधिक महत्त्वपूर्ण और स्थायी सिद्ध हुए। उसके द्वारा स्थापित संस्थाएँ आज की फ्रांस में विद्यमान हैं। स्थानीय स्तर पर अपनाये गये जन–शासन के सिद्धान्त ने जनता को प्रजातान्त्रिक शासन के क्षेत्र में प्रशिक्षण और अनुभव दोनों ही प्रदान किये तथापि यह व्यवस्था भी पूर्णतः निर्दोष न थी। प्रान्तीय और स्थानीय शासन का नया संगठन बूर्बो–काल की निरंकुशता एवं केन्द्रीयकरण के विरुद्ध पूर्ण प्रतिक्रिया का नतीजा था और इसलिए इसमें स्थानीय संस्थाओं को उस सीमा तक स्वतंत्रता प्रदान कर दी गयी जो राष्ट्रीय एकता के मार्ग में बाधक सिद्ध हुई ।

संविधान सभा का वास्तविक महत्व

संविधान सभा ने पुरानी अत्याचारपूर्ण व्यवस्था का पहली बार विरोध किया। यह कोई कम महत्वपूर्ण बात नहीं थी। उसने बड़ी निर्भीकता और अदम्य साहस के साथ पुरानी व्यवस्था का विरोध किया। शताब्दियो से दलित, पीड़ित तथा निराश जनता में उसने उत्साह फूँका और असमानता एवं विशेषाधिकार का नाश कर तथा कानून की सामान्य प्रणाली स्थापित करके और सब के लिए करों का भार बराबर करके उसने एक विभाजित राष्ट्र का एकीकरण किया। इन संदर्भों में उसने एक सामाजिक क्रान्ति की थी। इसके अलावा उसने पुरानी व्यवस्था को नष्ट करके प्रजातन्त्रीय शासन स्थापित करने तथा जनता की इच्छा को राज्य की नीति की कसौटी बनाकर एक महान राजनीतिक क्रांति भी की। संविधान सभा का सर्वाधिक महत्व का काम था, समस्त संसार के लिए तथा सदा के लिए व्यक्ति के गौरव की युगान्तरकारी घोषणा।

संविधान–सभा की समाप्ति

21 सितम्बर को राजा ने नये संविधान पर अपनी स्वीकृति दे दी और उसका पालन करने का वचन दिया। सभा ने उसको पुनः सिंहासन पर आसीन कर दिया। 30 सितम्बर, 1791 को सभा विसर्जित हो गयी, परन्तु विसर्जित होने से पहले वह एक कानून बना गयी जिसके अनुसार उसका कोई भी सदस्य नई विधानसभा का सदस्य नहीं हो सकता था।

NOTES

बोध प्रश्न

1. संविधान सभा के कार्य लिखिए?

....

....

....

2. कार्यपालिका का वर्णन कीजिए?

....

....

....

6.7 संवैधानिक एकतंत्र का परीक्षण–विधानसभा (अक्टूबर, 1791–21 सितम्बर, 1792)

संविधान में विधानसभा का कार्यकाल दो वर्ष निश्चित किया गया था, परन्तु वह एक वर्ष में ही समाप्त हो गई। नई विधान–सभा का प्रथम अधिवेशन 1 अक्टूबर, 1791 को हुआ। इसमें कुल 745 सदस्य थे। वे मध्यम वर्ग के थे और वकीलों की संख्या सर्वाधिक थी। यह सभा भी राष्ट्रीय सभा के समान कार्य करता था। ऐसी दशा में भविष्य में प्रजातंत्र में शांतिपूर्वक विकास की आशा सहज ही हो सकती थी, परंतु यह बात राजा के ऊपर निर्भर थी। यदि राजा ने नये संविधान की सच्चाई के साथ स्वींकार कर लिया होता है वह हृदय से उसे कार्यान्वित करने के लिए तैयार होता तो देश शांतिपूर्वक आगे बढ़ सकता था, परंतु यदि उसके आचरण से उसकी सच्चाई में शंका हुई तो इस संविधान के लिए खतरा अवश्य था क्योंकि ऐसी दशा में जनता का उसके विरुद्ध होने का डर था। यह खतरा काफी गंभीर था क्योंकि विधान–सभा के सदस्य नये एवं अनुभवहीन थे और उनमें से कई उग्र गणतंत्रीय विचारों से प्रेरित थे। इन विचारों का प्रचार देश में बड़े जोरों से हो रहा था।

विधान–सभा के दल

(1) **दक्षिणीपक्षीय दल** – दक्षिणपक्षीय संविधानवादियों का था। इस दल के सदस्य फेइयाँ के गिरजे में एकत्रित हुआ करते थे। अतः वे इस नाम से भी पुकारे जाते थे। वे नये संविधान के पक्ष में थे और सांविधानिक एकतंत्र के समर्थक थे। उनकी संख्या सभा में काफी अधिक थी और उन्हें मध्यम–वर्ग का समर्थन प्राप्त था। लाफायेत तथा राष्ट्रीय रक्षक–दल भी इनके समर्थक थे। नये संविधान का भविष्य राजा के दल के साथ सहयोग पर निर्भर था, परन्तु उसने भूल की और उसके साथ सहयोग नहीं किया।

(2) **वामपक्षीय** – वामपक्षीय दल में वे लोग थे जो समझते थे कि अभी क्रांति का दौर पूरा नहीं हुआ है। वे राजसत्ता का अंत कर गणतंत्र की स्थापना करना चाहते थे। उनकी संख्या दक्षिण पक्षीय दल से कम थी। वे दो गुटों में विभक्त थे – **जिरोंदीस्ती दल तथा जेकोबें दल।**

(3) **जेकोबें दल** : जेकोबें दल छोटा था, परन्तु उसे पेरिस तथा दो बड़े शक्तिशाली क्लबों – जेकोबें तथा कोर्देलिये, का समर्थन प्राप्त था। जेकोबें क्लब का आरंभ क्रांति के आरंभ–काल में ही हो चुका था। आरंभ में उसकी नीति नरम थी और उसमें सब प्रकार के सुधारवादी लोग एक–जैसे नरम विचार वाले सदस्य उससे अलग हो गये तथा क्लब का नेतृत्व रोब्सपियर जैसे उग्र विचार वाले लोगों के हाथों में पहुँच गया। इस क्लब का प्रधान स्थान पेरिस था। उसकी 400 के लगभग शाखायें थीं जो सारे देश में फैली हुई थीं। धीरे–धीरे यह क्लब अधिक शक्तिशाली हो गया और उसका प्रभाव इतना बढ़ गया कि वह विधान–सभा का प्रतिद्वंद्वी बन गया।

(4) **कोर्देलिये क्लब** – कोर्देलिये क्लब की नीति आरंभ से ही उग्र थी। उसके नेता मारा, दाँतों तथा केमिल देसमोलाँ थे। इन क्लबों में राजनीतिक प्रश्नों पर गरमागरम बहस होती थी और उनका लोकमत पर बड़ा प्रभाव पड़ता था। जेकोबें दल के सदस्य किसी भी प्रकार से राजसत्ता का अंत कर गणतंत्र की स्थापना करना चाहते थे। सभा में ये लोग ऊँचे स्थान पर बैठा करते थे, इसलिए वे 'पर्वत' के नाम से पुकारे जाते थे।

(5) **जिरोंदीस्ती दल** – विधान–सभा के आरंभ में जिरोंदीस्ती दल की संख्या जेकोबें दल से अधिक थी और उसका प्रभाव भी अच्छा था। उसके नेताओं में मुख्य वेरियो, ब्रिसो, कोन्दोर्से तथा मादाम रोलाँ थे। उनमें से प्रथम तीन विधान–सभा के सदस्य थे। उनको पूर्ण विश्वास था कि क्रांति अपने विरोधियों का समूल नाश करके ही सफल हो सकेगी और इसके लिए रक्तपात अनिवार्य है मादाम रोलाँ की प्रसिद्ध उक्ति थी **"शान्ति हमको पीछे हटा देगी। हम रक्त द्वारा पुनर्जीवित हो सकते हैं।"**

(6) **केन्द्रीय दल** – इन दोनों – दक्षिणपक्षीय तथा वामपक्षीय – दलों के बीच में 'केन्द्रीय' दल था। वे लोग राजसत्ता के समर्थक थे और उनकी सहानुभूति दक्षिणपक्षीय थी, परंतु वे नये राजनीतिक सिद्धांतों के समर्थक थे और इसी कारण दक्षिणपक्षीय दल उनकी उपेक्षा करता था। इस व्यवहार से वे धीरे–धीरे वामपक्षीय दल में शामिल होते गये।

शपथ न लेने वाले पदाधिकारियों के विरुद्ध आदेश

जिरोंदिस्ती दल का प्रभाव विधान–सभा में अधिक था। यह दल क्रांति के लिए कुछ करना चाहता था। पुरानी व्यवस्था की सभी बातें नष्ट हो चुकी थीं, केवल राजा का पद बचा था। वे राजा के पद को भी समाप्त करना चाहते थे, इसीलिए उन्होंने उकसाने वाली नीति से काम करना शुरू किया ताकि राजा कुछ गलती करे और वे उसे देशद्रोही प्रमाणित करके हटा सकें। अतः नवम्बर, 1791 में एक आदेश जारी करवाया कि जिन पादरियों ने शपथ नहीं ली थी, वे सब हटा दिये जायें, परन्तु राजा ने इस आदेश को अपने विशेषाधिकार से रद्द कर दिया। राजा का यह कार्य असंवैधानिक नहीं था, परंतु इससे वह क्रांति के शत्रुओं का पक्षपाती प्रकट होता था। जिरोंदिस्ती फ्रांस को दूसरे देशों के साथ युद्ध में उलझा देना भी चाहते थे, जिससे राजा स्पष्टतया देशद्रोही प्रमाणित हो सके और राजपद का अंत किया जा सके।

(1) **युद्ध की संभावना** – संविधान सभा का अधिकांश समय युद्ध लड़ने में व्यतीत हुआ अतः वह प्रशासकीय व्यवस्था को सुधारने की ओर अधिक ध्यान नहीं दे सकी। इस समय युद्ध अवश्यम्भावी नजर आ रहा था, क्योंकि फ्रांस के क्रांतिकारी लोग अधिकाधिक प्रचारक बनते जा रहे थे। उन्होंने क्रांति को एक सीमित राष्ट्रीय आंदोलन नहीं समझा था। जिन सिद्धांतों और मानव के जिन आधारभूत अधिकारों की घोषणा राष्ट्रीय सभा ने की थी, फ्रांस तक ही सीमित नहीं थे, वरन् मानव मात्र के लिए थे। ऐसे विस्फोटक सिद्धांत किसी भी राज्य की सीमा के अंदर बंद नहीं किये जा सकते।

इन सिद्धांतों और क्रांति की भावना की बाढ को रोकने के लिए कोई मजबूत रुकावटें भी नहीं थीं, परन्तु यूरोप के स्वेच्छाचारी राजाओं का क्रांति के विचारों से भयभीत होना स्वाभाविक था। केवल इंग्लैण्ड में उससे कोई भय उत्पन्न नहीं हुआ। पिट ने उसे अपने देश की 1688 की 'शानदार क्रांति' का अनुकरण मानकर गर्व की अनुभूति की। क्रांतिकारी विचार एवं प्रचार से तो यूरोप के विभिन्न राजाओं का डर था ही, कई राजाओं की क्रांति के विरुद्ध कुछ विशिष्ट शिकायतें भी थीं। जर्मनी के कई राजाओं की फ्रांस के अल्सास प्रान्त में जो भूमि थी, वह छीन ली गयी थी। पवित्र रोमन साम्राज्य की पार्लियामेंट ने इसके मुआवजा देने से इंकार कर दिया। आस्ट्रिया के सम्राट द्वितीय लियोपोल्ड को तो क्रांति से अत्यधिक भय था। एक तो वह पवित्र रोमन साम्राज्य का सम्राट था और दूसरे फ्रांस की उत्तरी–पूर्वी सीमाओं पर आस्ट्रियन नीदरलैण्ड्स उसका निजी प्रदेश था। इसके अतिरिक्त रानी मेरी ऑत्वानेत उसकी बहन थी और वह उसकी सुरक्षा के प्रति चिन्तित था।

NOTES

(2) पिलनित्स की घोषणा– फ्रांस के प्रवासी कुलीन सम्राट तथा अन्य जर्मन राजाओं से लगातार सहायता के लिए अनुरोध कर रहे थे, परंतु सम्राट द्वितीय लियोपोल्ड बड़ा समझदार था। वह समझता था कि यदि फ्रांस में हस्तक्षेप किया गया तो जोश भड़केगा और स्थिति अधिक बिगड़ती जायेगी। अगस्त, 1791 में उसने प्रशा के राजा द्वितीय फ्रेडरिक विलियम से पिलनित्स नामक स्थान पर भेंट कर प्रवासी कुलीनों की प्रार्थना अस्वीकार कर दी और जर्मनी की भूमि पर फ्रांस के विरुद्ध शस्त्र तैयार करने से उन्हें मना कर दिया। यहाँ तक तो उन्होंने बुद्धिमानी का कार्य किया, परंतु इसके बाद उन्होंने एक बड़ी भूल की। 27 अगस्त, 1791 को उन्होंने पिलनित्स से एक घोषणा प्रकाशित की कि फ्रांस के राजा का मामला यूरोप के समस्त राजाओं का मामला है। सब राजाओं को परस्पर सहयोग करके उसका कठिनाइयों से उद्धार करना चाहिए। फ्रांस की सरकार को चाहिए कि जर्मन राजाओं के जो अधिकार उनसे छीन लिये हैं, उन्हें वह वापस कर दे। उसमें यह भी कहा गया था कि यदि यूरोप के अन्य राजा सहमत हुए तो जर्मन राजा अपने उद्देश्य की पूर्ति बल से करेंगे। सम्राट समझता था कि इस धमकी से काम चल जायेगा, परन्तु इसका प्रभाव उल्टा हुआ।

इस घोषणा से सारे फ्रांस में सनसनी फैल गयी। विधान–सभा ने दो आदेश जारी किये। प्रथम आदेश के द्वारा प्रॉवेन्स काउण्ट के दो मास के अंदर स्वदेश लौट आने के लिए कहा गया और न आने पर उसे अपने सिंहासन के उत्तराधिकार से वंचित करने की धमकी दी गयी। राजा ने इसे तो स्वीकार कर लिया, परन्तु दूसरे आदेश को जिनके द्वारा यह घोषणा की गयी कि यदि प्रवासी कुलीन 1 जनवरी, 1792 तक अपने शस्त्र नहीं डाल देंगे तो वे देशद्रोही ठहराये जायेंगे, उन्हें मृत्यु–दंड दिया जायेगा और उनकी संपत्ति जब्त कर ली जायेगी, निषिद्ध ठहरा दिया। इस आदेश को राजा ने रद्द तो कर दिया, परंतु उसने प्रवासी कुलीनों से स्वदेश लौट आने का अनुरोध किया। राजा के इस कार्य से उसके प्रति शंका बढ़ी और जिरोंदीस्ती दल का पक्ष अधिक मजबूत हो गया।

(3) युद्ध की घोषणा– 10 अप्रैल, 1792 को आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी गयी। विधान–सभा के सभी दल भिन्न–भिन्न कारणों से इस युद्ध का समर्थन कर रहे थे। केवल रोब्सपियर तथा उसके कुछ साथी उसके विरुद्ध थे, क्योंकि उनके विचार में युद्ध से केवल धनिकों तथा प्रभावशाली व्यक्तियों को ही लाभ हो सकता था, गरीबों को तो उससे हानि ही होनी थी। जिरोंदीस्ती समझते थे कि युद्ध से राजा की शत्रुओं से गुप्त साँठ–गाँठ तथा उसका देशद्रोह प्रमाणित हो सकेगा और इस प्रकार उसे हटाकर गणतंत्र स्थापित करना सरल हो जायेगा।

यह युद्ध क्रांति के इतिहास में बड़ा महत्वपूर्ण है। उसने क्रांति की दिशा बदल दी। उसके कई ऐसे परिणाम हुए जिनकी पहले कल्पना तक नहीं की जा सकती थी। उनका फ्रांसवासियों पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ा। इसके फलस्वरूप उनकी आंतरिक स्वतंत्रता खटाई में पड़ गयी और युद्ध समाप्त होने के पहले ही फ्रांस में बूर्बो–वंश के स्वेच्छाचारी शासन से भी अधिक कठोर एवं निपुण सैनिक निरंकुश शासन की स्थापना हो गयी। यूरोप के राज्यों से फ्रांस का जो संघर्ष इस प्रकार आरंभ हुआ, वह 25 वर्षों तक चलता रहा और क्रांति ने जो कुछ कार्य किया था, उसका आधा उसने नष्ट कर दिया।

(4) युद्ध का आरंभ – युद्ध आरंभ हो गया, परंतु फ्रांस इसके लिए तैयार नहीं था। सेना में अनुशासनहीनता और अव्यवस्था पहले से ही व्याप्त थी। इस कारण आरंभ में फ्रांस की सेनाओं को हार खानी पड़ी। जो सेना आस्ट्रियन नीदरलैण्ड पर आक्रमण करने भेजी गयी थी, वह हारकर लौट पड़ी और उसने अपने ही अफसरों की हत्या कर डाली।

उधर तो फ्रेंच सेनाएँ पीछे हट रही थीं, इधर देश के अंदर चर्च की फूट के कारण गृह–कलह का भय बढ़ रहा था। इस पर विधान–सभा ने दो आदेश निकाले। एक के अनुसार जिन पादरियों ने शपथ नहीं ली थी, उन्हें देश से निकालने का आदेश दिया गया और दूसरे के द्वारा पेरिस की रक्षा के लिए 20,000 प्रान्तीय स्वयंसेवक नियुक्त करने की योजना की गयी।

NOTES

(5) **राजमहल पर भीड़ का आक्रमण–** जब राजा ने विधान सभा के दोनों आदेश रद्द कर दिए तब पेरिस की भीड़ काबू से बाहर हो गयी और गणतंत्रीय दल ने उसे और भी भड़काया। उसने राजमहल को घेर लिया, कुछ गुण्डे महल में घुस गये और उन्होंने राजा तथा रानी का अपमान किया, परन्तु इसके आगे भीड़ ने कुछ नहीं किया। राजा ने भी क्रांतिकारियों की लाल टोपी, जो भीड़ में से किसी ने उसे दी थी, पहन ली और उसका दिया हुआ मदिरा का प्याला भी पी लिया।

(6) **ब्रुन्स्विक की घोषणा–** 25 जुलाई को प्रशा ने युद्ध की घोषणा कर दी। उनका सेनापति ब्रुन्स्विक अपनी तथा आस्ट्रिया की सम्मिलित सेना के साथ आगे बढ़ा और फ्रांस की सीमा पार कर उसने घोषणा की कि फ्रांसवादी अपने राजा को स्वतंत्र कर दें तथा उसकी आज्ञा मानें। यदि आस्ट्रिया और प्रशा की सेना का विरोध किया गया तो संपूर्ण फ्रेंच राष्ट्र उसके लिए उत्तरदायी होगा और यदि राजपरिवार का अपमान किया गया तो पेरिस को उसका दंड भुगतना पड़ेगा।

(7) **घोषणा का परिणाम :** ब्रुन्स्विक की इस घोषणा से पेरिस की भीड़ अत्यंत उत्तेजित हो गयी। अब उसे पूर्ण विश्वास हो गया कि राजा शत्रुओं से मिला हुआ है। जेकोबें नेताओं ने पेरिस के लिए नई क्रान्तिकारी कम्यून स्थापित की और नगर–भर में विद्रोह का ढिंढोरा पीट दिया। भीड़ ने राजमहल पर हमला बोल दिया तथा उसके स्विस रक्षकों को मार डाला और राजा को अपने परिवार सहित विधान–सभा भवन में जाकर शरण लेनी पड़ी।

इन तमाम तरह की परिस्थितियों और उठापटक के बावजूद विधान सभा की कुछ महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ थीं जिन्हें नजर अंदाज नहीं किया जा सकता। इनमें दो प्रमुख उपलब्धियाँ थीं –

(i) **शिक्षा के क्षेत्र में** – विधानसभा ने शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किए। इस संबंध में कंडोर्से की रिपोर्ट, जिसने कुछ आधारभूत समस्याओं का विवेचन किया जैसे कि पाठ्यक्रम में विज्ञान का महत्व, प्रौढ़ शिक्षा, योग्यता के आधार पर नियुक्ति का विचार और इनमें भी सबसे बढ़कर महत्वपूर्ण वक्तव्य यह था कि **"फ्रांसीसी राष्ट्र के लिए शिक्षा की आवश्यकता है जो 18 वीं शती के फ्रांस की मनोभावना के अनुरूप हो।"**

(ii) इस विधानसभा द्वारा दूसरा कार्य था विवाह संबंधी संशोधित कानून जिनमें तलाक की अनुमति प्रदान की गई थी।

कुल मिलाकर विधानसभा फ्रांस के लिए बहुत अधिक कुछ नहीं कर सकी। उसका अधिकांश समय युद्धों में व्यतीत हो गया और वह राज्य की आन्तरिक व्यवस्था में सुधार के लिए प्रयत्न नहीं कर सकी। उसका समय भी बहुत कम था सिर्फ एक वर्ष का।

6.8 गणतंत्र की स्थापना राष्ट्रीय संविधान–परिषद (NATIONAL CONVENTION) (1 सितम्बर, 1792–26 अक्टूबर, 1795)

राष्ट्रीय संविधान–परिषद्

विधानसभा के बाद फ्रास की सत्ता राष्ट्रीय संविधान–परिषद् के हाथों में रही। इसके निर्वाचित सदस्यों की कुल संख्या 782 थी। इसके चुनावों में मत देने का अधिकार पूर्व की अपेक्षा अधिक लोगों को प्राप्त था, परन्तु इसका सामाजिक आधार पूर्ववत ही था। निर्वाचन में 200 स्थान जिरोंदिस्त दल को तथा 100 स्थान जेकोबे दल को प्राप्त हुए थे। शेष सदस्य स्वतंत्र थे, परन्तु स्वतंत्र सदस्यों की कोई नीति नहीं थी। संख्या में 482 होते हुए भी उनका कोई महत्व नहीं था। प्रारंभ में वे सब जिरोंदिस्त दल के साथ रहे किंतु कालान्तर में उन्होंने पेरिस की जनता के भय के कारण जेकोबे दल का साथ देना प्रारंभ कर दिया था।

NOTES

राष्ट्रीय संविधान परिषद् की समस्याएँ –

राष्ट्रीय संविधान परिषद् के समक्ष अनेक समस्याएँ थीं, जिनमें से निम्न मुख्य थीं–

(1) पदच्युत राजा के साथ क्या व्यवहार किया जाए ?

(2) विदेशी शत्रुओं से देश को कैसे बचाया जाए ?

(3) आंतरिक व्यवस्था कैसे स्थापित की जाए ?

(4) उसे सेना का पुनः संगठन करना था।

(5) भ्रष्टाचार का निराकरण करना था।

(6) देश के लिए एक नवीन संविधान बनाना था।

गणतंत्र की स्थापना

राष्ट्रीय संविधान परिषद का प्रथम अधिवेशन 21 सितम्बर, 1792 को हुआ। इसने प्रारंभ में ही जो कार्य किए वे इस प्रकार हैं –

(i) उसका सबसे पहला काम राजसत्ता के अंत की घोषणा करके गणतंत्र की स्थापना करना था।

(ii) उसी दिन से गणतंत्र के संवत् का प्रथम वर्ष आरंभ हुआ।

(iii) उसने प्रवासी कुलीनों को सदा के लिए देश से निर्वासित करने का आदेश निकाला।

(iv) राजा के ऊपर अभियोग चलाने का प्रस्ताव स्वीकार किया।

(v) नवीन संविधान बनाने के लिए एक समिति की नियुक्ति भी की।

राजा को मृत्यु–दण्ड

राजा के विरुद्ध अभियोग के विषय में संविधान–परिषद् में आरंभ से ही जिरोंदिस्त तथा जेकोबें लोगों में संघर्ष छिड़ गया। दोनों दलों के विचार भिन्न थे। जेकोबें लोगों की इच्छा थी कि उस राजा को अभियोग चलाये विना ही मृत्यु दण्ड दिया जाए।

दाँतें का कहना था . **"यूरोप के राजाओं ने हमें चेतावनी दी है। उसके उत्तर में हम राजा का सिर काट कर उनके सामने फेंक देंगे।"**

सेंट ज्यून्त ने राय प्रकट की– **"राजा कभी निर्दोष नहीं होता। अतः निःसंकोच सोलहवें लुई को मृत्यु–दण्ड दिया जाना चाहिए।"**

रोब्सपियर का मानना था कि **"राजा ने क्रांति के विरुद्ध गद्दारी की है अतः मृत्यु–दण्ड का पात्र है।"**

जिरोंदिस्त दल राजा के प्रश्न को समस्त जनता के निर्णय पर छोड़ना चाहता था। राजा को दण्ड देने के प्रश्न पर मतदान हुआ जिसमें 721 मतों में 387 मत मृत्यु–दण्ड के पक्ष में प्राप्त हुए। 21 जनवरी, 1793 को पेरिस के राजमहल के सामने उसका सिर धड़ से अलग कर दिया गया।

राजा की हत्या का परिणाम बनाम गणतंत्र का अंत

संविधान परिषद् द्वारा राजा को प्राण–दण्ड देना एक भयंकर भूल साबित हुई। यह हत्या क्रांति की सफलता के लिए की गयी थी, परन्तु यह उद्देश्य सिद्ध नहीं हुआ। देश के बहुत से लोग गणतंत्र से असंतुष्ट थे और वे उसे चर्च का शत्रु समझते थे। इस हत्या के कुछ दुष्परिणाम सामने आए जैसे कि –

(i) राजा की हत्या हुई तो प्रांतों में गणतंत्र के विरुद्ध विद्रोह खड़ा हो गया और गणतंत्र के लिए देश के अंदर ही एक भयंकर स्थिति पैदा हो गयी।

(ii) देश के बाहर राजा की हत्या से फ्रांस के शत्रुओं की संख्या बढ़ गयी। आस्ट्रिया तथा प्रशा से तो युद्ध चल ही रहा था। अब इंग्लैण्ड, रूस, स्पेन, हॉलैण्ड तथा जर्मनी और इटली के राज्य भी अर्थात् समस्त यूरोप फ्रांस के विरुद्ध हो गया।

(iii) इस प्रकार देश के अंदर और बाहर गणतंत्र के सामने जीवन–मरण का प्रश्न उपस्थित हो गया।

(iv) ऐसी कठिन परिस्थिति में संविधान–परिषद् को देश के अंदर **'आतंक–राज्य'** स्थापित करना पड़ा, जिसके परिणामस्वरूप गणतंत्र का अंत हो गया और फ्रांस में एक कठोर सैनिक शासन स्थापित हो गया।

6.9 आतंक का राज्य : जून 1793– जुलाई 1794 (REIGN OF TERROR)

फ्रांस की राज्य क्रांति के दौरान लोकतांत्रिक क्रांति के तीन कार्य हुये :

(1) राजतंत्र की समाप्ति,

(2) कम्यून की स्थापना, तथा

(3) कम्यून द्वारा एसेम्बली को भंग करके कन्वेंशन की स्थापना।

कन्वेन्शन ने शासन चलाने के लिए जो कार्य (उपाय) किये उनमें एक कार्य था **''आतंक का राज्य''** कन्वेंशन ने घोषणा की कि **'आतंक समयानुकूल आदेश है।'** यह घोषणा फ्रांस में 1793–94 में और उसके बाद के समय में **''आतंक के राज्य''** नाम से जानी जाती है।

इस घोषणा के साथ फ्रांस में बहुत कष्ट का समय प्रारंभ हुआ। इस घटना ने पूरे इतिहास को बदल कर रख दिया। सबसे पहले कन्वेंशन ने जिरोंदिस्त दल के नेताओं को बंदी बनाया, जो सदस्य विरोधी प्रचार करते थे उन्हें कन्वेंशन की सदस्यता से हटाया तथा संघवाद के समर्थकों तथा क्रांति के विरोधियों के विरुद्ध सख्त कार्यवाही की। 1794 में एक कानून पारित किया गया जिसके द्वारा बंदियों को अपनी सफाई पेश करने के अधिकार से वंचित होना पड़ा। इस कानून के परिणामस्वरूप मार्च, 1793 से जून, 1794 तक के समय में 1200 व्यक्तियों तथा 10 जून के कानून के बाद 1300 से अधिक व्यक्तियों को अपनी जान से हाथ धोना पड़ा। इस तरह **''आतंक का राज्य''** के काल में फ्रांस में आम आदमी का जीवन अत्यन्त कठोर और यातनामय हो गया था। आर्थिक परेशानियों ने इन कठिनाइयों को और अधिक बढ़ावा दिया।

आतंक के राज्य का अर्थ :– नेशनल कन्वेंशन का काल 1792 से 1795 तक रहा। क्रांति की उपलब्धियों को सुरक्षित रखने तथा फ्रांसीसी राष्ट्र को घोर विदेशी संकट से बचाने के लिये नेशनल कन्वेंशन ने कुछ समय के लिये एक अस्थायी किन्तु एक अत्यन्त शक्तिशाली सरकार की स्थापना की थी। आतंक इस अस्थायी सरकार का प्रमुख हथकण्डा था इसलिये क्रांति के इतिहास में इसे **'आतंक का राज्य'** के नाम से पुकारा गया है। **जून** 1793 से 1794 तक आतंक का राज्य कायम रहा। निम्नलिखित बिन्दु के आधार पर आतंक के राज्य का स्वरूप तथा उसकी आवश्यकता की व्याख्या की जा सकती है–

(1) आतंक के राज्य की परिस्थितियाँ

गंभीर राष्ट्रीय संकट :– सार्वभौमिक मताधिकार के आधार पर सितम्बर 1792 में गठित नेशनल कन्वेंशन के समक्ष उपस्थित गम्भीर समस्याओं की चर्चा करते हुए **प्रो. हैज** ने लिखा है कि ''संसार की किसी भी प्रतिनिधि सभा के समक्ष इतनी गम्भीर समस्याएँ कभी भी नहीं रहीं जितनी कि नेशनल कन्वेंशन के प्रथम अधिवेशन के समय उपस्थित थी–

NOTES

- राजा लुई सोलहवें के भाग्य का निर्णय करना,
- आंतरिक सिद्धान्त की रचना करना,
- आंतरिक विद्रोह का दमन करना,
- शत्रु सेना के बढ़ाव को रोकना, तथा
- आर्थिक समस्याओं से निपटना।

इन समस्याओं को हल करने के पहले ही कदम से क्रांतिकारी फ्रांस के लिये गंभीर राष्ट्रीय संकट उत्पन्न हो गये। पहला कदम था– सितम्बर 1792 में फ्रांस में राजतंत्र की समाप्ति तथा गणतंत्र की घोषणा एवं जनवरी, 1793 में राजा को मृत्युदण्ड देना। राजा को मृत्युदण्ड देने के अप्रत्याशित परिणाम सामने आये।

- गृह युद्ध का विस्तार
- विदेशी युद्ध का विस्तार– पितृ भूमि खतरे में।

गृह युद्ध का विस्तार :– राजतंत्र के पतन के साथ ही पूर्व में चल रहे क्रांति विरोधी गतिविधियों ने एक भीषण गृहयुद्ध का रूप धारण कर लिया इसमें क्रांति विरोधी पादरी, कुलीन तथा राजसत्तावादी सम्मिलित थे। दक्षिणी प्रांत लावेंदी में एक लाख व्यक्तियों ने विद्रोह कर दिया तथा गणतंत्रवादियों की हत्यायें करना शुरू कर दिया।

विदेशी युद्ध का विस्तार–पितृ भूमि खतरे में :– अभी तक क्रांतिकारी फ्रांस का युद्ध आस्ट्रिया और प्रशा से ही चला था किन्तु राजा को मृत्युदण्ड देने के बाद प्रमुख यूरोपीय देश युद्ध में शामिल हो गये। फ्रांस विरोधी इस प्रथम यूरोपीय गुट में इंग्लैण्ड, आस्ट्रिया, प्रशा, हॉलैण्ड तथा सार्डिनिया सम्मिलित थे। सारे देश में बैनर लग गये **'पितृ भूमि खतरे'** में है।

(2) आतंक समय की आवश्यकता

फ्रांस के आंतरिक और विदेशी संकट को देखते हुये कन्वेंशन ने 1793 के प्रस्तावित संविधान को फिलहाल स्थगित करते हुये एक संकटकालीन अस्थायी किन्तु शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार का गठन किया तथा आतंक को एक तात्कालिक आवश्यकता घोषित किया गया।

(3) आतंक की मशीनरी का विकास

आतंक का राज्य प्रमुख रूप से जाकोर्व का प्रभाव वाला था। मई–जून 1793 में जिरोंदे के पतन के पश्चात जाकोर्व की तानाशाही स्थापित हो गयी। जाकोर्व की नीति के फलस्वरूप मार्च से सितम्बर 93 तक आतंक की जिस मशीनरी का गठन हुआ उसके प्रमुख अंग निम्न हैं:

'आतंक–राज्य की संस्थाएँ'

इस प्रकार स्थापित 'आतंक–राज्य' में सबसे पहला कार्य जो हाथ में लिया गया वह था देश–रक्षा के लिए सेना की भर्ती का। कार्नो ने इस कार्य को सफलता के साथ किया और कुछ ही समय में 7,50,000 फ्रेंच सेना तैयार हो गयी। सेना के साथ ही विभिन्न कार्यों को देखने के लिए निम्नलिखित संस्थाओं का विकास किया गया –

(1) **सार्वजनिक व्यवस्था समिति** – सार्वजनिक व्यवस्था समिति की नियुक्ति अप्रैल में हो चुकी थी। आरंभ में उसमें 9 सदस्य थे, परंतु बाद में यह संख्या बढ़ाकर 12 कर दी गयी। इस समिति को अपरिमित अधिकार प्राप्त थे। वह गणतंत्र के शत्रुओं को नष्ट करने के लिए अपनी इच्छानुसार कोई भी कार्य कर सकती थी। यह समिति आतंक की वास्तविक कार्यपालिका

थी इसकी स्थापना शुरू में जिरायें सदस्य के प्रस्ताव पर हुई थी। संकट के साथ ही इस समिति की शान्ति और अधिकारों में भी वृद्धि होती गई। धीरे–धीरे यह समिति कन्वेंशन, पेरिस, कम्यून तथा क्रांतिकारी न्यायालय आदि पर हावी होकर फ्रांस की सर्वेसर्वा हो गयी। रोब्सपियर, दाँते, मारासे, जुब्स तथा कार्नो आदि प्रसिद्ध जाकोर्व नेता सदस्य रहे।

(2) सामान्य सुरक्षा समिति . पुलिस कार्य तथा शांति एवं व्यवस्था के कार्य का निर्देश करना इस समिति का कार्य था इसकी सदस्य संख्या 21 थी। वह समस्त देश में व्यवस्था कायम रखती थी और जिन लोगों पर राजा के समर्थक होने का और गणतंत्र के विरुद्ध होने की जरा भी शंका हो, उन्हें गिरफ्तार करके जेल भेज देती थी। इस प्रकार की गिरतारियों को वैध बनाने के लिए एक कानून बना दिया गया था जिसके अनुसार कोई व्यक्ति शंका पर ही गिरफ्तार किया जा सकता था।

(3) प्रतिनिधि विशेष मिशन पर :– कन्वेंशन ने विद्रोही प्रांतों में अभिमत अधिकार प्रदान कर अपने विशेष प्रतिनिधि भेजे। देशद्रोह के अपराध में ये प्रतिनिधि किसी व्यक्ति समूह को कोई भी दण्ड दे सकते थे। संविधान–परिषद प्रत्येक प्रान्त को अपने दो–दो प्रतिनिधि असीमित अधिकारों के साथ भेजती थी। वे किसी को गिरफ्तार तो नहीं कर सकते थे, परन्तु उनका एक शब्द भी किसी को क्रांतिकारी न्यायालय के सामने भेज देने के लिए काफी था।

(4) क्रांतिकारी न्यायालय – इसकी स्थापना दाँते के प्रस्ताव पर 1793 में हुई थी। राष्ट्र विरोधियों को दण्ड देना इसका प्रमुख कार्य था। जो लोग इस प्रकार शंका के कारण जेल भेज दिये जाते थे, उनका न्याय करने के लिए एक क्रांतिकारी न्यायालय स्थापित किया गया था, जिसमें आरंभ में तो कुछ न्याय होता भी था, परन्तु बाद में केवल न्याय का ढोंग रह गया था और मृत्यु दंड दे दिया जाता था। जिन लोगों को मृत्यु–दंड दिया जाता था, वे 'क्रांति चौक' में ले जाए जाते थे। वहाँ गिलेटिन नाम की सैकड़ों टिकटियाँ खड़ी रहती थीं। उन पर उनका सर धड़ से अलग कर दिया जाता था।

क्रांतिकारी न्यायालय ने हजारों को इस प्रकार मृत्यु के घाट उतार दिया। अनुमान किया जाता है कि अकेले पेरिस में लगभग 5,000 व्यक्ति इस प्रकार मारे गये जिनमें रानी मेरी आंत्वानेत (16 अक्टूबर, 1793) , ओर्लिआँ का ड्यूक, मादाम रोलाँ तथा जिरोंदिस्त दल के कई प्रमुख नेता भी थे।

(5) गृह–कलह का दमन– इस तरह देश में राजसत्ता के समर्थकों तथा गणतंत्र के शत्रुओं को निर्मूल किया जा रहा था। देश के अंदर प्रांतों में विरोध फैल रहा था। उसका भी दमन किया जा रहा था। पेरिस की कम्यून की प्रधानता और जिरोंदिस्त दल के साथ किये गये अत्याचार के विरुद्ध लियो, मार्सेइय, बोर्दो आदि अनेक नगर भी विद्रोह कर बैठे थे। इन विद्रोहों की बड़ी निर्दयता के साथ दमन कर दिया गया।

(6) शत्रुओं की पराजय– इसके साथ ही शत्रुओं के साथ युद्ध चल रहा था। देश–भक्ति के जोश में तथा कार्नो के कुशल संगठन के फलस्वरूप फ्रेंच सेना धीरे–धीरे सभी मोर्चों पर शत्रुओं को परास्त करने लगी। अंग्रेज लोग हारे और उन्होंने डंकर्क का घेरा उठा लिया। बेल्जियन और आस्ट्रियन सेना भी हारी और बेल्जियम आस्ट्रिया से छीन लिया गया। उसका नाम बेटावियन गणतंत्र रखा गया और उसके साथ मैत्री कर ली गयी। अल्सास प्रान्त शत्रु से खाली हो गया और शत्रु की जितनी सेनायें नदी को पार कर आयी थीं वे सब खदेड़ दी गयीं। दक्षिण की ओर अंग्रेजों से तूलों भी छीन लिया गया।

(7) बासिल की संधि (4 अप्रैल, 1795) – इस प्रकार फ्रांस ने 'प्रथम गुट' को तोड़कर परास्त कर दिया। हॉलैण्ड मित्र बन ही चुका था। प्रशा तथा स्पेन ने फ्रांस के साथ बासिल

की संधि कर ली। इसके बाद 13 अप्रैल को यूरोप के समस्त राज्यों की फ्रांस की ओर आशंका को दूर करने के लिए संविधान–परिषद ने दूसरे राज्यों के शासन में हस्तक्षेप बंद कर देने की घोषणा भी कर दी। वास्तव में फ्रांस के विरुद्ध गुट तो बड़ा शक्तिशाली बन गया था, परन्तु धीरे–धीरे उसके सदस्यों में फूट पड़ गयी।

(8) क्रांतिकारियों में मतभेद – इस समय क्रांतिकारियों में ही 'आतंक के राज्य' के संबंध में मतभेद होता जा रहा था। 'आतंक का राज्य' केवल फ्रांस की रक्षा के लिए था। उसकी स्थापना सामान्य शासन–प्रणाली की तरह नहीं की गयी थी, वह केवल आपत्तिकाल व्यवस्था थी। कई लोगों को अब उसकी आवश्यकता नहीं मालूम होती थी और वे उसे बंद करना चाहते थे।

(9) नियंत्रण–समितियाँ :– युद्ध के मोर्चों पर व्यक्तियों एवं गतिविधियों पर नजर रखते हुए देशद्रोहियों को पकड़वाकर क्रांतिकारी न्यायालय तक पहुँचाना इन समितियों का प्रमुख कार्य था।

(4) आंतरिक विद्रोह का दमन

कन्वेंशन की स्वीकृति से निर्मित संकटकालीन सरकार ने देश में शांति और व्यवस्था स्थापित करने के लिये आंतरिक विद्रोहों का कठोरतापूर्वक दमन किया। इसके कुछ संक्षिप्त उदाहरण इस प्रकार हैं।

(i) पेरिस में आतंक :– 17 सितम्बर को 'संदिग्ध व्यक्तियों का कानून' पारित हुआ। इसके अंतर्गत फ्रांस की विवाद पर महारानी मारी आंत्वोनत को फाँसी की सजा दी गई। पेरिस में भूतपूर्व मेयर पेटियन बैली, 1789 का सज्जन व्यक्ति बासरव, मादाम एलिजा आदि आतंक के शिकार हुए। पेरिस में लगभग 5000 व्यक्ति आतंक के शिकार हुये।

(ii) जिरोंदे नेताओं को फाँसी :– लंबे मुकदमे के बाद 30 अक्टूबर, 1793 को 29 जिरोंदिस्त नेताओं को गिलोटिन की भेंट कर दिया गया।

(5) प्रान्तों में आतंक–संघवाद का दमन

(i) लियो का दमन :– लियो में क्रांति के विरुद्ध भीषण विद्रोह हुआ लियो का नामोनिशान मिटाने के आदेश हुये। 5000 व्यक्ति गिलोटिन तथा फाँसी के शिकार हुये।

(ii) वेंदी के विद्रोह का दमन :– क्रांति विद्रोह गृह युद्ध का सबसे बड़ा प्रांत था। लगभग 15000 वेरियन इस युद्ध में मारे गये।

कारी ने अमानवीय नृशंसता का परिचय दिया। प्रतिदिन 200 व्यक्ति सूली पर चढ़ाये जाने लगे। बाद में कारी को भी गिलोटिन पर चढ़ा दिया गया वहीं दूसरी ओर क्रांति के प्रसिद्ध व्यक्ति कासो ने सामान्य नागरिकों को गणतन्त्र की महान क्रांतिकारी सेना में परिणत कर दिया।

(6) आतंक के राज्य की आर्थिक नीति

- राष्ट्रीय ऋण
- अधिकतम मूल्य निर्धारित
- नाप–तौल में दशमलव पद्धति
- राष्ट्रीय आत्मनिर्भरता
- ब्रिटिश माल पर प्रतिबन्ध
- क्रांति का नया कैलेण्डर।

6.10 1795 का संविधान (C0NSTITUTION OF THE YEAR 1795)

NOTES

व्यवस्थापिका

नये संविधान के अनुसार एक द्वि–सदनीय व्यवस्था की गयी –

(1) एक सदन तो बड़ों का सदन था, जिसमें कम से कम 40 वर्ष की अवस्था वाले 250 सदस्य रखे गये।

(2) दूसरे सदन में 500 सदस्य रखे गये जिनकी अवस्था कम से कम 30 वर्ष की निश्चित की गयी।

इन सदनों को कुछ अलग–अलग अधिकार एवं विशेषतायें थीं, जो इस प्रकार हैं–

(i) कानून के प्रस्ताव प्रस्तुत करने का अधिकार दूसरे सदन को दिया गया, परन्तु उसे कार्यान्वित करने के लिए बड़े सदन की अनुमति आवश्यक रही।

(ii) दोनों सदनों के दो–तिहाई सदस्य प्रथम बार संविधान–परिषद् के सदस्यों में से अवकाश ग्रहण करने और उनके रिक्त स्थानों की निर्वाचन द्वारा पूर्ति की व्यवस्था की गयी।

(iii) इन सदनों के सदस्यों के निर्वाचन के लिए मत देने का अधिकार उन्हीं लोगों को मिला जिनके पास सम्पत्ति थी और जो राज्य को कर देते थे।

कार्यपालिका

नए संविधान द्वारा कार्यपालिका–सत्ता पाँच डायरेक्टरों की एक समिति (Directory) को सौंपी गयी, जिनकी नियुक्ति **'पाँच सौ के सदन'** द्वारा प्रस्तावित 10 व्यक्तियों में से बड़ों का सदन करता था। उसमे से एक के लिए प्रतिवर्ष अलग हो जाना आवश्यक था। वे न तो विधायिका के प्रति उत्तरदायी थे और न ही जनता के। यह समिति अपने मंत्रियों की नियुक्ति स्वयं करती थी।

संविधान–परिषद का मूल्यांकन

गणतंत्र पर मध्यमवर्गीय लोगों का कब्जा – नये संविधान के अनुसार फ्रांस में गणतंत्र की स्थापना हुई। पिछले दिनों फ्रांस में जो रक्त की नदियाँ बही थीं, वे 1789 के आदर्शवाद को बहा ले गयी थीं। जो लोग उस 'आतंक के राज्य' में बच रहे थे, वे आदर्शवादी नहीं वरन् भ्रष्ट, स्वार्थी, षड्यंत्रकारी थे। इन लोगों ने जो गणतंत्र स्थापित किया, वह प्रजातंत्रीय नहीं था। 1792 के संविधान के अनुसार मध्यम–वर्गीय एकतंत्र की स्थापना हुई थी। अब संविधान ने मध्यम–वर्गीय गणतंत्र मध्यम–वर्ग वालों के हाथों में सौंप दिया। इसमें सर्वसाधारण–जनता के लिए उसमें कोई स्थान नहीं था।

उत्तरदायित्व का अभाव – इस संविधान का एक दोष तो यह था कार्यपालिका और डायरेक्टरों का जनता के प्रति उत्तरदायित्व नहीं था और कार्यपालिका तथा विधायिका के मतभेद को दूर करने का उसमें कोई उपाय नहीं था। इनके सदस्यों को केवल महाभियोग को छोड़कर हटाने का कोई अन्य उपाय नहीं था जिसके द्वारा जनता की इच्छा का उन पर दबाव पड़ सकता था।

बोध प्रश्न

1. आतंक के राज्य का अर्थ समझाइये?

....

....

....

2. राष्ट्रीय संविधान परिषद की समस्याएँ लिखिए?

....

....

NOTES

....

6.11 निदेशक मंडल (DIRECTORY)
(27 अक्टूबर, 1795–19 नवम्बर, 1799)

संविधान–परिषद् के पश्चात् 27 अक्टूबर, 1995 को फ्रांस में निदेशक मंडल (डायरेक्टरी) का शासन आरम्भ हुआ। निदेशक मंडल के शासन के समय ही नेपोलियन बोनापार्ट के उत्थान का प्रथम चरण था। डायरेक्टरी की स्थापना के साथ विशुद्ध क्रांति का अंत हो गया। 1795 में बेबूफ के नेतृत्व में **'सोसाइटी आफ ईक्वल्स'** नामक संस्था ने तत्कालीन प्रशासन में मध्य वर्ग के प्रभाव के खिलाफ विद्रोह किया। इसके बाद निदेशक मंडल (डायरेक्टरी) सेना पर अत्यधिक निर्भर होता गया और इन्हीं परिस्थितियों में नेपोलियन फ्रांस के क्षितिज पर उभर कर सामने आया।

नेपोलियन का फ्रांस के क्षितिज पर उभरना

फ्रांस में यह वह समय था जब नेपोलियन धीरे–धीरे अपनी प्रतिभा को सामने ला रहा था और वह इटली पर आक्रमण करने वाली सेना का प्रमुख बना दिया गया और इटली पर आक्रमण करने का निर्णय उसने स्वयं ही ले लिया। इस निर्णय के पीछे उसका उद्देश्य आस्ट्रिया से युद्ध करना था क्योंकि इटली इस समय आस्ट्रिया के अधीन था। अप्रैल, 1795 में प्रशा, स्पेन तथा हॉलैण्ड फ्रांस से सन्धि कर चुके थे, परन्तु आस्ट्रिया, इंग्लैण्ड तथा सार्डीनिया ने सन्धि नहीं की थी। फ्रांस ने आस्ट्रियन नीदरलैण्ड्स को छीनकर अपनी भूमि में शामिल कर लिया था, परन्तु आस्ट्रिया से इसकी स्वीकृति लेने हेतु उसे पराजित करना आवश्यक था। अतः डायरेक्टरी को इन देशों के विरुद्ध युद्ध की तैयारी करनी पड़ी। इंग्लैण्ड पर तो एक अच्छे बेड़े के बिना आक्रमण असम्भव था। इस कारण डायरेक्टरी ने अपना सारा ध्यान आस्ट्रिया पर केन्द्रित कर दिया। कार्नो ने आस्ट्रिया पर दो तरफ से – जर्मनी तथा इटली में से होकर–आक्रमण करने की योजना बनायी। जर्मनी में होकर आक्रमण करने के लिए जूर्दा तथा मोरो की कमाण्ड में दो सेनाएँ भेजी गयीं और इटली की सेना की कमाण्ड नेपोलियन को मिली।

जर्मनी की ओर से आक्रमण करने जाने वाले जूर्दा तथा मोरो को आस्ट्रिया के प्रख्यात कमाण्डर आर्चड्यूक चार्ल्स का मुकाबला करना पड़ा। उसके समक्ष दोनों ही कुछ न कर सके और परास्त हो गए।

इटली में नेपोलियन की सफलता – इटली पर आक्रमण के लिए भेजी गई सेना जो कि नेपोलियन के नेतृत्व में थी अपनी योजना में सफल रही। नेपोलियन ने बड़ी कुशलता के साथ युद्ध का संचालन किया। सर्वप्रथम, उसने आस्ट्रिया और सार्डीनिया की सेनाओं को अलग कर दिया। इसके बाद अचानक सार्डीनिया पर आक्रमण करके वह ट्यूरिन जा पहुँचा। पन्द्रह दिन के अन्दर ही सार्डीनिया के राजा को सन्धि करनी पड़ी और सेवॉय तथा नीस के प्रदेश फ्रांस के सुपुर्द करने पड़े। इसके बाद वह आस्ट्रिया की सेना की ओर मुड़ा। आस्ट्रिया की सेनाएँ लोम्बार्डी के मैदान से खदेड़ दी गयीं और सारा लोम्बार्डी नेपोलियन के हाथ में आ गया। केवल माण्टुआ में आस्ट्रिया की सेना बनी रही और नेपोलियन ने उसका घेरा डाल दिया। आस्ट्रिया ने माण्टुआ को लेने के बहुत प्रयत्न किये, परन्तु आठ महीने के निरन्तर प्रयत्न करने पर भी उसे सफलता नहीं मिली और 2 फरवरी, 1797 को नेपोलियन ने उस पर अधिकार कर लिया। अब नेपोलियन के लिए आस्ट्रिया की राजधानी वियना की ओर बढ़ने का मार्ग खुल गया।

यह देखकर आस्ट्रिया के सम्राट द्वितीय फ्रांसिस ने सन्धि करने का प्रार्थना की। इसके बाद आस्ट्रिया से युद्ध बंद हो गया।

इटली का नया संगठन – नेपोलियन इटली में सफल होता गया यह देखकर मई में पार्मा तथा मोडीना के ड्यूकों ने तथा जून में नेपिल्स के राजा और पोप ने उससे संधि कर ली। इन सन्धियों के बाद उसने उत्तरी इटली का नये सिरे से संगठन किया। लोम्बार्डी का जो भाग आस्ट्रिया के अधिकार में था, उसे उसने एक गणतंत्र–ट्रांसपेडेन रिपब्लिक बना दिया और बोलोन्या, फेरारा, मोडीना तथा रेगिया को मिलाकर एक नया गणतंत्र–सिस्पेडन रिपब्लिक बनाया।

आस्ट्रिया से सन्धि – 17 अक्टूबर, 1797 को फ्रांस और आस्ट्रिया के बीच केम्पो फॉमियो के स्थान पर सन्धि हुई। इस संधि में निम्न बातें तय हुई –

(i) आस्ट्रिया ने आस्ट्रियन नीदरलैण्ड फ्रांस को सौंप दिया और राइन नदी के बायें किनारे का समस्त प्रदेश भी दे दियां। वह प्रदेश जर्मन राजाओं का था, परंतु उसने इस परिवर्तन के लिए जर्मन राजाओं की एक सभा करके उनसे स्वीकृति ले लेने का वचन दिया।

(ii) आस्ट्रिया को लोम्बार्डी पर से भी अपना अधिकार उठा लेना पड़ा और नेपोलियन द्वारा निर्मित सिसएल्पाइन तथा लिंगरियन रिपब्लिकों को स्वीकार करना पड़ा।

(iii) इसके बदले में फ्रांस ने वेनिस के गणतंत्र के टुकड़े करके उसका अदिगे नदी के पूर्व का भाग–इरिट्रिया तथा डेल्मेशिया–आस्ट्रिया का सौंप दिये।

(iv) वेनिस का पश्चिमी भाग सिसएल्पाइन रिपब्लिक में सम्मिलित हो चुका था। उसके राज्य का बचा हुआ भाग–आयोनियन द्वीप–फ्रांस के अधिकार में आ गया।

समुद्र पर युद्ध

जब हॉलैण्ड फ्रांस का मित्र बन गया तो इंग्लैण्ड ने हॉलैण्ड के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। स्पेन ने फ्रांस से मिलकर इंग्लैण्ड के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी थी। उसे भी हानि उठानी पड़ी। इंग्लैण्ड के बेड़े ने दक्षिणी अमेरिका के उत्तरी तट के निकट उससे त्रिनिदाद द्वीप छीन लिया और सेंट विन्सेन्ट अन्तरीप के युद्ध में उसका बेड़ा नष्ट कर दिया । इस प्रकार इंग्लैण्ड समुद्र पर सर्वत्र विजयी हो रहा था, परन्तु इस समय उसके सामने अनेक संकट उपस्थित थे। फ्रांस से लड़ते–लड़ते वह अकेला ही रह गया था। उधर पिट भी शांति चाहता था। 1796 तथा 1797 में उसने संधि के प्रस्ताव भी किये, परन्तु डायरेक्टरी ने यूरोप में प्राप्त होने वाली विजय के मद में उन पर ध्यान नहीं दिया और सन्धि न हो सकी।

नवजात गणतंत्र का संकट

फ्रांस में नवजात गणतंत्र पर संकट के बादल घिर रहे थे। विधायिका–सभा के दोनों सदनों में नये चुनावों के फलस्वरूप राजसत्ता के कई समर्थक आ गये थे। उन्हीं में से एक पाँच सौ के सदन का सभापति बन गया था। डायरेक्टरी में एक सदस्य बार्थेलेमी राजसत्ता का समर्थक आ गया था। ऐसी दशा में बारा तथा अन्य गणतंत्रीय डायरेक्टरों ने नेपोलियन को बुलाया, परन्तु नेपोलियन समझता था कि अभी अवसर नहीं आया है। उसने अपने एक विश्वासपत्र अफसर औजरो को भेज दिया जिसने 4 सितम्बर, 1797 को विधायिका–सभा के 53 सदस्यों को गिरफ्तार कर देश से निकाल दिया। बार्थेलेमी तथा कार्नो बचकर निकल भागे और गणतंत्र की रक्षा हो गयी। इस प्रकार अब फ्रांस का गणतंत्र नेपोलियन के बाहुबल पर आश्रित था। नेपोलियन इटली से उसे धन की भी सहायता कर रहा था, जिन राजाओं को उसने परास्त किया था, उनसे उसने बहुत सा धन वसूल किया और फ्रांस भेज दिया। इतना ही नहीं, उसने बड़ी निर्लज्जतापूर्वक इटली के बहुत से सुन्दर चित्र तथा मूर्तियाँ भी फ्रास के म्यूजियम को सजाने के लिए भेजीं।

NOTES

नेपोलियन का फ्रांस को लौटना

आस्ट्रिया से सन्धि करने के बाद नेपोलियन फ्रांस लौट आया। जनता ने उसका बड़े उत्साह से स्वागत किया। बारा ने नेपोलियन का स्वागत करते हुए कहा, **"जाओ, समुद्र के स्वामी, इंग्लैण्ड पर विजय प्राप्त करो ताकि उन्हें दण्ड दिया जा सके जो बहुत समय से दण्ड से बचते चले आ रहे हैं।"** नेपोलियन भी देख रहा था कि फ्रांस में अपनी सत्ता स्थापित करने के लिए अभी उपयुक्त अवसर नहीं आया है।

इंग्लैण्ड से युद्ध

नेपोलियन की उत्तरी इटली की विजय के फलस्वरूप यूरोपीय राज्यों का प्रथम गुट टूट गया। इसका परिणाम यह हुआ कि नेपोलियन का यश सारे यूरोप में फैल गया। अभी तक सम्पूर्ण यूरोप में फ्रांस के विरुद्ध इंग्लैण्ड ही ऐसा देश था जो टिका हुआ था। इसका कारण था फ्रांस की कमजोर नौसेना। इसलिए जब उसे इंग्लैण्ड पर आक्रमण करने का आदेश दिया गया तो उसने इसके लिए तैयारी आरंभ कर दी। नेपोलियन के विचार में इंग्लैण्ड के साथ संघर्ष करने की तीन योजनाओं में से किसी एक को अपनाया जा सकता था : (i) इंग्लैण्ड पर सीधा आक्रमण; (ii) जर्मनी में स्थित हेनोवर पर अधिकार; तथा (iii) इजिप्ट पर आक्रमण।

नेपोलियन का इजिप्ट पर आक्रमण

नेपोलियन 19 मई, 1798 को तुलों के बन्दरगाह से कोई 38000 सैनिकों के साथ रवाना हो गया और रास्ते में माल्टा लेता हुआ 1 जुलाई को इजिप्ट पहुँच गया। दूसरे दिन ही वह एलेक्जेण्ड्रिया विजय कर काहिरा की ओर बढ़ा। 21 जुलाई को पिरामिडों के पास इजिप्ट की सेना को उसने फिर परास्त किया और 22 जुलाई को काहिरा में प्रवेश किया। इस प्रकार इजिप्ट पर उसका अधिकार हो गया।

नील नदी का युद्ध

नेपोलियन इंग्लैण्ड को भारत में पराजित करने की योजना बनाकर भारत के लिए रवाना हुआ, परन्तु अंग्रेजों को इसकी खबर लग गई और एडमिरल नेलसन को उसके विरुद्ध भेजा गया। नील नदी के मुहाने पर इन दोनों में युद्ध हुआ। इस युद्ध में नेपोलियन पराजित हुआ। उसकी तमाम आकांक्षाओं पर पानी फिर गया। अब नेपोलियन का फ्रांस से सम्बंध टूट गया और वह ऐसे देश में बन्द हो गया जहाँ की जनता उसकी शत्रु थी और जलवायु अत्यंत कष्टप्रद थी, परंतु नेपोलियन हिम्मत हारने वाला जीव नहीं था। वह वहीं जमा रहा और फ्रांस से समाचारों की प्रतीक्षा करता रहा। इजिप्ट एक इस्लामी देश था। वहाँ विजय प्राप्त करना सरल था, परन्तु स्थायी शासन स्थापित करना अत्यंत कठिन था। यहाँ आने पर नेपोलियन के सम्मुख अनेक कठिनाइयाँ उठ खड़ी हुई। धार्मिक जोश में उत्तेजित मुसलमान नेपोलियन की शक्ति के विरुद्ध संगठित हो गये। अतः उसे कूटनीति का सहारा लेना पड़ा क्योंकि शक्ति के द्वारा वहाँ नियंत्रण बनाये रखना सम्भव नहीं था। इजिप्टवासियों की सहानुभूति और सहयोग प्राप्त करने के लिए उसने वहाँ अपने आपको मुसलमान घोषित किया और वहाँ एक मस्जिद का निर्माण कराया, परन्तु वास्तव में उसे किसी धर्म से कोई लगाव नहीं था। इजिप्ट–अभियान के पश्चात फ्रांस लौटने पर उसने कहा था: **"इजिप्ट में मैं मुसलमान था, परन्तु फ्रांस में जनहित के लिए कैथोलिक बनकर रहूँगा।"** इसी बीच यूरोप के राजाओं ने फ्रांस के विरुद्ध 'द्वितीय गुट' बना लिया था और उसमें तुर्की भी सम्मिलित हो गया था। जब नेपोलियन को यह समाचार मिला और उसे मालूम हुआ कि तुर्की इजिप्ट को पुनः विजय करने के लिए सीरिया से होकर सेना भेज रहा है तो उसने सीरिया पर आक्रमण कर दिया। उसने गाजा तथा जाफा ले लिये और आगे बढ़कर एकर का घेरा डाला, परन्तु दो महीने के घेरे के बाद भी वह उसे न ले सका क्योंकि समुद्र की ओर उसे अंग्रेजी बेड़ा सहायता दे रहा था। उसने निराश होकर कहा: **"यह**

एक दुर्भाग्यपूर्ण बाधा है जो मेरे तथा मेरे भाग्य के बीच उत्पन्न हो गयी है।" कुछ समय बाद अबूकिर में एक टर्की सेना उतरी, परन्तु नेपोलियन ने उसे बुरी तरह परास्त कर दिया और इजिप्ट पर अपना प्राधान्य स्थापित कर लिया।

डायरेक्टरी का जनता पर प्रभाव घटता जा रहा था। डाइरेक्टरों की अलोकप्रियता व उसकी गृह–नीति से भी सभी वर्ग असंतुष्ट थे। पूँजीपतियों से उसने जबरदस्ती ऋण लेकर नाराज कर दिया था। कैथोलिक मत के दमन के परिणामस्वरूप जनता की धार्मिक भावनाओं को चोट पहुँच रही थी। इसके साथ ही उसके शासन में क्षमता बिलकुल नहीं थी। उसके अयोग्य, भ्रष्टाचारपूर्ण एवं अकुशल शासन से देश में कठिनाइयाँ बहुत बढ़ गयी थीं। वस्तुओं के मूल्य बहुत बढ़ गये थे, बेकारी बढ़ रही थी, मुद्रा का अभाव था, व्यापार ठप्प हो रहा था और चोरी–डकैती मामूली बात हो गयी थी। वह बिलकुल निकम्मी साबित हो चुकी थी और अप्रिय होती चली जा रही थी। उसकी विदेश–नीति उतनी ही सिद्धांतहीन एवं आक्रामक थी जितनी उसकी गृह–नीति निर्बल और अप्रिय थी। वह शांति नहीं चाहती थी। उसकी नीति यह थी कि युद्ध चलता रहे, सेना तथा उसके योग्य सेनापति, जिनसे उसे सदा भय लगा रहता था, बाहर बने रहें और विजित प्रदेशों से लूट की धनराशि आती रहे, जिससे शासन का काम चलता रहे। अतः उसने पड़ोसी–देशों में हस्तक्षेप जारी रखा था। इटली से नेपोलियन के लौटने के बाद फ्रेंच सेनाओं ने स्विट्जरलैण्ड पर आक्रमण करके उसे जीत लिया था और फ्रांस की अधीनता में वहाँ गणतंत्र स्थापित कर दिया था। जिनोआ फ्रांस में सम्मिलित कर लिया गया था और पायडमॉण्ट पर फ्रेंच सेना ने अधिकार जमा लिया था। हॉलैण्ड में भी हस्तक्षेप करके उसका संविधान बदलकर फ्रांस के संविधान के अनुसार कर दिया गया था।

डायरेक्टरी की इन ज्यादतियों को देखकर और नेल्सन की विजय से प्रोत्साहित होकर इंग्लैण्ड ने आस्ट्रिया और रूस के साथ मिलकर फ्रांस के विरुद्ध एक दूसरा गुट तैयार कर लिया था और टर्की, नेपिल्स तथा पुर्तगाल भी उसमें शामिल हो गये थे। सामान्यतः यह माना जाता है कि फ्रांस के विरुद्ध स्थापित होने वाले गुटों के मूल में इंग्लैण्ड से प्राप्त होने वाली आर्थिक सहायता थी किन्तु हॉलैण्ड रोज के अनुसार यह आर्थिक सहायता तो एक गौण कारण मात्र थी। गुट–निर्माण का वास्तविक कारण फ्रेंच आक्रामक नीति और यूरोप में फ्रेंच आधिपत्य की स्थापना का भय था। इस गुट ने इटली से फ्रांस की सेनाओं को खदेड़ कर निकाल दिया था और इस समय स्वयं फ्रांस पर भी आक्रमण का डर था।

डायरेक्टरी का अन्त

डायरेक्टरी का शासन फ्रांस की जनता के लिए असह्य हो रहा था। डायरेक्टरी का शासन अयोग्य, अकुशल एवं भ्रष्ट था जिससे तमाम फ्रांसीसी जनता तंग आ चुकी थी और एक नये नायक की तलाश में थी। इसके अलावा डायरेक्टरी शासन यूरोपीय राज्यों का मुकाबला करने में भी अक्षम था। नेपोलियन फ्रांस की इस स्थिति से फायदा उठाना चाहता था। उसने कुछ सैनिक अधिकारियों से मिलकर डायरेक्टरी के शासन को समाप्त करने की योजना बनाई। व्यवस्थापन विभाग के कई अधिकारी नेपोलियन के साथ मिल गये। यह योजना बनाई गई नेपोलियन के नेतृत्व में 'पाँच सौ की सभा' (डायरेक्टरी) पर हमला किया जाए। 9 नवम्बर, 1799 के दिन जब डायरेक्टरी का अधिवेशन हो रहा था, नेपोलियन ने अपने विश्वासपात्र सिपाहियों के साथ सभा भवन को घेर लिया। विरोधियों को बाहर निकाल दिया गया। इसके बाद डायरेक्टरी के शेष सदस्यों ने अधिवेशन किया तथा एक प्रस्ताव पास करके डायरेक्टरी को समाप्त कर दिया तथा फ्रांस के शासन की बागडोर कौन्सिल को सौंप दी। नेपोलियन को प्रथम कौंसिल के पद पर नियुक्त किया गया। दो और कौन्सिल नियुक्त हुए। तीन कौंसिलों के नाम थेः **सीघे, डयूक** और **बोनापार्ट**। तीन कौंसिलों की यह **'कान्स्यूलेट'** फ्रांस की नई कार्यकारिणी बन गई। इस कान्स्यूलेट का प्रथम कार्य फ्रांस के लिए संविधान बनाना था। दूसरा कार्य था यूरोपीय संगठन के विरुद्ध युद्ध जारी रखना। नेपोलियन ने शासन के समस्त सूत्र अपने हाथों में लिए और निरंकुश,

स्वेच्छाचारी शासन स्थापित किया। उसने अपने शासन–विधान को जनमत संग्रह द्वारा फरवरी 1800 में जनता से स्वीकृत करवा लिया।

इस तरह नेपोलियन का उदय क्रांति की परिस्थितियों से प्रारंभ होकर क्रांति के अन्त में पूर्ण रूप से हुआ। नेपोलियन ने क्रांति के उद्देश्यों के विरुद्ध निरंकुश और स्वेच्छाचारी शासन स्थापित किया। वह एक साधारण वकील के गरीब महत्वहीन युवक से फ्रांस का सम्राट बन गया।

NOTES

6.12 सारांश

शताब्दियों से दलित, पीड़ित तथा निराश जनता ने उसमें उत्साह फूँका और असमानता एवं विश्वपिधिकार का नाश कर तथा कानून की सामान्य प्रणाली स्थापित करके और सब के लिए करों का भार बराबर करके उसी एक उसे एक विभाजित राष्ट्र का एकीकरण किया। इन संदर्भों में उसने एक सामाजिक क्रांति की थी। इसके अलावा उसने पुरानी व्यवस्था को नष्ट करके प्रजातंत्रीय शासन स्थापित करने तथा जनता की इच्छा ही राज्य की नीति को कसौटी बनाकर एक महान राजनीतिक क्रांति भी की। संविधान सभा का सर्वाधिक महत्व काम था, समस्त संसार के लिए तथा सदा के लिए व्यक्ति के गौरव की युगान्तकारी घोषणा।

6.13 अभ्यासार्थ प्रश्न

दीर्घोत्तरीय प्रश्न

(1) राष्ट्रीय संविधान सभा की स्थापना और उसके कार्यों का वर्णन कीजिए।

(2) राष्ट्रीय संविधान सभा के द्वारा निर्मित संविधान की विशेषताएँ बताईये।

(3) विधानसभा के स्वरूप और कार्यो का वर्णन कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

(4) राष्ट्रीय संविधान परिषद के कार्यों का वर्णन कीजिए।

(5) आतंक के राज्य का वर्णन कीजिए।

(6) डायरेक्टरी के कार्यकाल की घटनाओं का वर्णन कीजिए।

विकल्प

अपनी प्रगति की जाँच करें
Test your Progress

1. आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कब की गई–

(अ) 1762 (ब) 1792 (स) 1772 (द) 1782

उत्तर 1. (ब)

6.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

विश्व इतिहास (18वीं, 19वीं सदी – डॉ. संजीव जैन, कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल)

●●●

अध्याय-7 नेपोलियन बोनापार्ट का युग

(THE AGE OF NAPOLEAN BONA PARTE) (1799 - 1814)

NOTES

इकाई की रूपरेखा (इकाई–4)

7.0 उद्देश्य

7.1 परिचय

7.2 नेपोलियन का उदय

7.3 संचालक मण्डल

7.4 नेपोलियन के सुधार

7.5 नेपोलियन के युद्ध

7.6 नेपोलियन के प्रमुख युद्ध

7.7 नेपोलियन प्रथम की महाद्वीपीय प्रणाली

7.8 नेपोलियन का पतन

7.9 सारांश

7.10 अभ्यास प्रश्न

7.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

7.0 उद्देश्य

इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे कि–

1. नेपोलियन के उदय की पृष्ठभूमि का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
2. नेपोलियन के सुधारों का मूल्यांकन कर सकेंगे।
3. नेपोलियन के प्रमुख युद्धों का अध्ययन कर सकेंगे।
4. विश्व इतिहास के समसामयिक घटनाक्रम से परिचित हो सकेंगे।

7.1 परिचय

नेपोलियन का प्रारंभिक जीवन

15 अगस्त, सन् 1769 में कोर्सिका द्वीप में विश्व के महान सम्राट नेपोलियन बोनापार्ट का जन्म हुआ था। नेपोलियन ने माता--पिता इटालियन मूल के थे। उसके पिता का नाम कार्लो बोनापार्ट था। कुलीन श्रेणी का परिवार होते हुए भी उसके पास जमीन–जायदाद का अभाव था। नेपोलियन के पिता वकील थे। परिवार में आठ सन्तानें थीं और आय के साधन सीमित थे। इस कारण कार्लो बोनापार्ट ने अपने दो बड़े लड़कों को फ्रांस में शिक्षा दिलाने का निश्चय किया। बड़े लड़के जोसफ को पुरोहिताई की शिक्षा दी गई और नेपोलियन को ब्रीएन के सैनिक स्कूल में भर्ती करा दिया।

7.2 नेपोलियन का उदय (RISE OF NAPOLEAN)

सैनिक शिक्षा

सैनिक शिक्षा प्राप्त करते हुए उसने ऊपरी सैनिक योग्यता बढ़ा ली। इसी समय उसे अपनी गरीबी का भी अहसास हुआ। उसके साथी विद्यार्थी अक्सर उसका मजाक उड़ाया करते थे। यहीं फ्रेंच छात्रों के साथ पढ़ते हुए उसे अपनी मातृ–भूमि को स्वतंत्र कराने की इच्छा हुई। सैनिक शिक्षा समाप्त होने पर उसे सेना में लेफ्टिनेन्ट के पद पर नौकरी दी गई। इसी समय उसके पिता की मृत्यु हो गई, पारिवारिक स्थिति ठीक न होने से वह अपने घर वापस आ गया। अपने गृहनगर से ही उसने फ्रांस के शासन के विरुद्ध अनेक षड्यन्त्र किये। फ्रांस सरकार ने षड्यन्त्रकारियों के दमन का कार्य किया तो नेपोलियन को कोर्सिका दीप छोड़ना पड़ा।

फ्रांस की क्रांति और नेपोलियन

जब फ्रांस में क्रांति हुई तो वह कोर्सिका से पेरिस आ गया और जेकोबिन दल का सदस्य बन गया। जेकोबिन दल के साथ–साथ नेपोलियन का महत्व भी बढ़ने लगा। उसे जो भी कार्य दिया जाता वह सफलतापूर्वक सम्पन्न कर देता। आतंक के राज्य के समय उसने विद्रोहों को शान्त किया। पेरिस की उग्र भीड़ को दबाने में उसे सफलता मिली। इस सफलता से उसकी ख्याति बढ़ गई और उसे गृह–सेना का सेनापति नियुक्त कर दिया गया।

नेपोलियन का विवाह

नेपोलियन को विशेष महत्व तब मिला जबकि डायरेक्टरी का एक सदस्य जनरल बरा ने उसकी योग्यता को महत्व दिया। इसी की सहायता से नेपोलियन ने क्रांति के नेताओं से परिचय प्राप्त किया और पेरिस के उच्च वर्गों में उसका आना–जाना होने लगा। इसी परिचय के चलते उसने सेनापति बोआर्ने की विधवा श्रीमती बोआर्ने से विवाह कर लिया। इस विवाह के परिणामस्वरूप नेपोलियन को आगे का रास्ता मिल गया। अब वह फ्रांस के महत्वपूर्ण व्यक्तियों में गिना जाने लगा। उस समय आस्ट्रिया से युद्ध चल रहा था। फ्रांस ने आस्ट्रिया पर आक्रमण की योजना बनाई तो श्रीमती बोआर्ने के प्रयत्नों से इटली होकर आस्ट्रिया पर आक्रमण करने वाली सेना का सेनापति नेपोलियन को बनाया गया।

इटालियन आक्रमण में सफलता

1795 से 1799 ई. के बीच का समय फ्रांस में डायरेक्टरी के शासन का समय था। इसी समय में नेपोलियन का वास्तविक उत्कर्ष हुआ। यह शासन इतिहासकारों के अनुसार लज्जाजनक पराभवों और असफलताओं का काल था। डायरेक्टरी सभी क्षेत्रों में असफल रही थी। इसी डायरेक्टरी के काल में 1797 में नेपोलियन ने अपना प्रथम सैनिक अभियान प्रारंभ किया। नेपोलियन के नेतृत्व में फ्रांसीसी सेना ने आस्ट्रिया के विरुद्ध इटली में अनेक सफलतायें अर्जित कीं। आस्ट्रिया पराजित हुआ और नेपोलियन ने इटली के एक बड़े भू–भाग पर अधिकार कर लिया। उत्तरी इटली की विजय और आस्ट्रिया से विजय सन्धि करने के बाद वह वापस फ्रांस आ गया।

इंग्लैण्ड से युद्ध

नेपोलियन की उत्तरी इटली की विजय के फलस्वरूप यूरोपीय राज्यों का प्रथम गुट टूट गया। इसका परिणाम यह हुआ कि नेपोलियन का यश सारे यूरोप में फैल गया। अभी तक सम्पूर्ण यूरोप में फ्रांस के विरुद्ध इंग्लैण्ड ही ऐसा देश था जो टिका हुआ था। इसका कारण था फ्रांस की कमजोर नौसेना। नेपोलियन इंग्लैण्ड को भारत में पराजित करने की योजना बनाकर भारत के लिए रवाना हुआ, परन्तु अंग्रेजों को इसकी खबर लग गई और एडमिरल नेलसन को उसके विरुद्ध भेजा गया। नील नदी के मुहाने पर इन दोनों में युद्ध हुआ। इस युद्ध में नेपोलियन पराजित हुआ। उसकी तमाम आकांक्षाओं पर पानी फिर गया।

डायरेक्टरी का अन्त

डायरेक्टरी का शासन फ्रांस की जनता के लिए असह्य हो रहा था। डायरेक्टरी का शासन अयोग्य, अकुशल एवं भ्रष्ट था जिससे तमाम फ्रांसीसी जनता तंग आ चुकी थी और एक नये नायक की तलाश में थी। इसके अलावा डायरेक्टरी शासन यूरोपीय राज्यों का मुकाबला करने में भी अक्षम था। नेपोलियन फ्रांस की इस स्थिति से फायदा उठाना चाहता था। उसने कुछ सैनिक अधिकारियों से मिलकर डायरेक्टरी के शासन को समाप्त करने की योजना बनाई। व्यवस्थापन विभाग के कई अधिकारी नेपोलियन के साथ मिल गये। यह योजना बनाई गई कि नेपोलियन के नेतृत्व में 'पाँच सौ की सभा' (डायरेक्टरी) पर हमला किया जाए। 9 नवम्बर, 1799 के दिन जब डायरेक्टरी का अधिवेशन हो रहा था, नेपोलियन ने अपने विश्वासपात्र सिपाहियों के साथ सभा भवन को घेर लिया। विरोधियों को बाहर निकाल दिया गया। इसके बाद डायरेक्टरी के शेष सदस्यों ने अधिवेशन किया तथा एक प्रस्ताव पास करके डायरेक्टरी को समाप्त कर दिया तथा फ्रांस के शासन की बागडोर कौन्सिल को सौंप दी। नेपोलियन को प्रथम कौंसिल के पद पर नियुक्त किया गया। दो और कौन्सिल नियुक्त हुए। तीन कौंसिलों के नाम थे: **सीये, डयूक** और **बोनापार्ट** । तीन कौंसिलों की यह **'कान्स्युलेट'** फ्रांस की नई कार्यकारिणी बन गई। इस कान्स्युलेट का प्रथम कार्य फ्रांस के लिए संविधान बनाना था। दूसरा कार्य था यूरोपीय संगठन के विरुद्ध युद्ध जारी रखना। नेपोलियन ने शासन के समस्त सूत्र अपने हाथों में लिए और निरंकुश, स्वेच्छाचारी शासन स्थापित किया। उसने अपने शासन–विधान को जनमत संग्रह द्वारा फरवरी 1800 में जनता से स्वीकृत करवा लिया।

इस तरह नेपोलियन का उदय क्रांति की परिस्थितियों से प्रारंभ होकर क्रांति के अन्त में पूर्णरूप से हुआ। नेपोलियन ने क्रांति के उद्देश्यों के विरुद्ध निरंकुश और स्वेच्छाचारी शासन स्थापित किया। वह एक साधारण वकील के गरीब महत्वहीन युवक से फ्रांस का सम्राट बन गया।

7.3 संचालक मण्डल (THE CONSULATE)

फ्रांस में 1795 से 1799 तक **'संचालक मण्डल'** जिसे **डायरेक्टरी** कहा जाता था, का शासन रहा। संचालक मण्डल का शासन अयोग्य तथा अकुशल था। वह सेना पर अधिक से अधिक निर्भर होता गया। इसी कारण नेपोलियन को सेनानायक के रूप में सफलता मिली। इस सफलता से राजनीतिक क्षेत्र में उसका महत्व बढ़ गया। संचालक मण्डल के सदस्य विलासी और सुविधाजीवी थे। सम्पूर्ण फ्रांस आन्तरिक और विदेश नीति के स्तर पर संकट से गुजर रहा था। जनता संचालक मण्डल के शासन से असन्तुष्ट थी। नेपोलियन की इटली की सफलता से यह जनता की नजरों में लोकप्रिय हो गया था। उसकी प्रसिद्धि के कारण सीये और उसके षड्यन्त्रकारियों ने नेपालियन को अपनी सहायता के लिए बुलाया और नवम्बर 1799 में सशस्त्र षड्यन्त्र द्वारा संचालक मण्डल का शासन समाप्त करके नयी कार्यकारिणी की स्थापना हुई। पुराने पाँच संचालकों के स्थान पर तीन कौंसिलों की स्थापना हुई।

तीन कौंसिलों में **सीये कौंसिल, ड्यूको कौंसिल** और **बोनापार्ट कौंसिल** थीं। तीन कौंसलों की यह **'कान्स्युलोट'** फ्रांस की नयी कार्यकारिणी थी। षड्यन्त्रकारी सारी राजनैतिक शक्ति अपने हाथों में केन्द्रित रखना चाहते थे। उनका लक्ष्य एक ऐसा सैनिक तानाशाही शासन स्थापित करना था जो उनकी इच्छा के अनुसार चले, फ्रांस की विदेशियों के आक्रमण से रक्षा कर सके और फ्रांस में जेकोबिन और सान्ज क्यूलोत का दमन कर सके। परन्तु नेपोलियन ने एक ऐसी व्यवस्था की जिससे उसकी व्यक्तिगत सत्ता स्थापित हो गई। उसे प्रथम कौंसिल के रूप में नियुक्त किया गया और शासन की सम्पूर्ण डोर उसके हाथों में केन्द्रित हो गई।

कान्स्युलेट के दो प्रमुख कार्य थे : प्रथम फ्रांस के लिए नए संविधान का निर्माण और द्वितीय यूरोपीय संगठन के विरुद्ध युद्ध जारी रखना।

NOTES

(1) नवीन संविधान का निर्माण

नया संविधान **'सातवें–वर्ष 1799 के संविधान'** के नाम से प्रसिद्ध है। फ्रांसीसी क्रांति के बाद यह चौथा संविधान था। इसके पूर्व 1792, 1793 और 1795 में संविधान बन चुके थे। नया संविधान बनाने की रूपरेखा नेपोलियन बोनापार्ट ने ही बनाई और इस प्रकार बनाई कि सर्वोच्च शक्ति उसी के हाथ में केन्द्रित रहे। संविधान का प्रारूप बनाने के लिए चार समितियाँ बनाई गई थीं। एक समिति का कार्य कानून प्रस्तावित करना था, दूसरी समिति उस पर बहस करती थी, तीसरी समिति वोट देती थी और चौथी समिति यह निर्णय लेती थी कि कानून शासन–विधान के अनुकूल है या नहीं। इन समितियों में सबसे प्रमुख स्थान प्रथम समिति को था, जिसे राज्य परिषद कहते थे। राज्य परिषद कानून प्रस्तावित करने के साथ–साथ कानून का प्रयोग करना, शासन करना, विदेशी मामलों तथा सेना का प्रबंध करने का कार्य भी करती थी।

नेपोलियन ने नया संविधान सीये की इस शक्ति के अनुरूप बनाया था कि **"संविधान में जनसामान्य के विश्वासों का प्रतिफलन हो जबकि सत्ता पर उच्च वर्ग का प्रभुत्व हो।"** नेपोलियन ने नए विधान द्वारा प्रेस पर और राजनीतिक विचार–विमर्श पर अंकुश लगाया, राजनैतिक हित के लिए वैधानिक बंधनों को समाप्त किया और न्याय तथा प्रजा की स्वतंत्रता से संबंधित अधिकारों में हस्तक्षेप किया, परन्तु नेपोलियन ने संचालक मण्डल के शासन की अराजकता के स्थान पर एक नियमित, वैज्ञानिक तथा सभ्य प्रशासन की स्थापना की।

कार्यपालिका शक्ति तीन कौंसिलों की **'कान्स्युलेट'** में निहित हो गई, किन्तु केन्द्रीय शासन का मुख्य स्रोत प्रथम कौंसिल थी। नेपोलियन प्रथम परामर्शदाता था उसने दो अन्य कौंसिलों–सीये और ड्यूक को पद से हटा दिया तथा अपने कट्टर समर्थक अन्य दो कौंसिल नियुक्त किये। प्रथम कौंसल की सहायता एक राज्य परिषद करती थी। सौ सदस्यों की एक ट्रिब्युनेट राज्य परिषद के विधेयकों पर वाद–विवाद कर सकती थी। विधेयक पुनः व्यवस्थापिका के समक्ष आते थे। इनके ऊपर एक और संस्था थी सीनेट, जो प्रथम कौंसिल द्वारा नियुक्त की जाती थी।

जनमत संग्रह – सीनेट ने बाद में प्रथम कौंसिल की अवधि दस वर्ष तक के लिए बढ़ानी चाही, परन्तु नेपोलियन ने जनमत संग्रह द्वारा 1802 में जीवन भर के लिए प्रथम कौंसिल बनाना स्वीकार करा लिया। उसने इससे पहले 1800 में अपने संविधान को स्वीकृत कराने के लिए जनमत संग्रह किया था। तीसरा जनमत संग्रह 1804 में उसने सम्राट बनने के लिए किया और वह जनमत संग्रह द्वारा सम्राट बन गया तथा एकतंत्रीय राज्य की स्थापना कर सका।

नेपोलियन ने तत्कालीन आवश्यकताओं के अनुसार और अपनी महत्वाकांक्षाओं के अनुरूप कान्स्युलेट के संविधान में परिवर्तन भी किया और फ्रांस में पूर्णतः केन्द्रीय तथा अत्यन्त स्वेच्छाचारी शासन–प्रणाली स्थापित की। धीरे–धीरे ट्रिब्युनेट को भंग कर दिया गया। व्यवस्थापिका का महत्व कम होता गया। इरा तरह तमाम शारान के सूत्र नेपोलियन के हाथ में आ गये।

7.4 नेपोलियन के सुधार (THE REFORMS OF NAPOLEAN)

आन्तरिक विषयों के मंत्री **शैपल** के अनुसार "नेपोलियन में सैनिक प्रतिभा के अतिरिक्त एक असाधारण गुण और था, और वह यह था कि वह प्रशासन संबंधी साधारण बातों की जानकारी करने में भी नहीं शर्माता था। वह अपने अधिकारियों से प्रश्न पर प्रश्न पूछता जाता जब तक वह स्वयं किसी ठोस निष्कर्ष पर नहीं पहुँच जाता। कौंसिल पद के चार साल के कार्यकाल में उसने कई परिषदों की बैठकें बुलाई और उनमें सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक प्रश्नों व सुधारों पर चर्चा होती थी। उन चर्चाओं का परिणाम यह निकला कि नेपोलियन को प्रशासनिक बातों का भी अच्छा ज्ञान हो गया और उसे अपने देश में जिन बातों का अभाव प्रतीत हुआ उनकी पूर्ति उसने अपने शासन सुधारों से की, इसलिए उसके इस कार्यकाल को सुधारों का काल कहते

हैं।" उसने राष्ट्रीय संस्थाओं के रूप निर्धारण करने व राष्ट्रीय जीवन को सुन्दर रूप में ढालने हेतु कई सुधार किये। उनमें कुछ का विवरण इस प्रकार है–

(1) स्थानीय शासन व्यवस्था :– नेपोलियन की धारणा थी कि फ्रांस की जनता समानता की इच्छुक है स्वतंत्रता की नहीं। अतः अपने शासनकाल में उसने केन्द्रीयकरण को अपनाया। उसने प्रांतों व जिलों से निर्वाचित सदस्यों को हटा दिया और उनके स्थान पर प्रीफेक्ट नियुक्त किये।

प्रान्त का अधिकारी प्रीफेक्ट कहलाता था, जबकि जिले का उप प्रीफेक्ट। उसको उसने वे सब अधिकार दे दिए जो संविधान सभा द्वारा वहाँ की निर्वाचन समितियों को प्राप्त थे। छोटे कम्यून का अधिकारी मेयर होता था और उसकी नियुक्ति प्रीफेक्ट करता था। जिन कस्बों की जनसंख्या पाँच हजार से अधिक होती थी, उनका मेयर स्वयं नेपोलियन नियुक्त करता था। पेरिस नगर का प्रबंध प्रीफेक्ट ऑफ पुलिस के अधीन था। कुछ इतिहासकारों ने नेपोलियन बोनापार्ट की इस व्यवस्था को अत्याचारपूर्ण एवं कठोर बनाया है परन्तु यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि शांति तथा व्यवस्था बनाये रखने की दृष्टि से ये सुधार समयानुकूल तथा उचित थे।

(2) भूमि का प्रबंध :– क्रांति के उग्र रूप के समय फ्रांस के सैकड़ों सामन्त व धर्माधिकारी अपनी जमीन व जायदाद छोड़कर फ्रांस के बाहर चले गये थे। सरकार ने उनकी भूमि जब्त कर कृषकों में वितरित कर दी। अब तक फ्रांस की सरकार ने उनके वापस लौटने पर प्रतिबंध लगा रखा था। नेपोलियन ने उनके लिए प्रचलित कानून नर्म कर दिये। उसने सामन्त व धर्माधिकार पर से फ्रांस में प्रवेश का प्रतिबंध हटा दिया। वापस आने वालों को उनकी भूमि वापस कर दी, जिन्होंने लौटने में आनाकानी की उनके लिए फ्रांस के द्वार सदैव के लिए दृढ़ता से बंद कर दिये गए। जिन सामन्तों व धर्माधिकारियों की भूमि बिक चुकी थी, उन्हें भूमि दिलवाने की कोई व्यवस्था नहीं की गई। उसने इस प्रकार का प्रबंध केवल चर्च की स्वीकृति प्राप्त करने के लिए किया था। इस व्यवस्था से सामन्तों का विशेष हित न होकर कृषकों को हुआ, इसीलिए फ्रांस के कृषक नेपोलियन को अपना **"संरक्षक"** समझते हैं।

(3) धर्म संबंधी सुधार :– 1799 में फ्रांस के लोग दो धार्मिक गुटों में विभक्त थे। अधिकांश लोग कैथोलिक थे। वे क्रांति के फलस्वरूप लगाये विभिन्न प्रतिबंधों के विरोधी थे। चर्च सम्बन्धी जो कानून क्रांति के समय बनाये गये थे, उनके भी वे विरोधी थे। दूसरा वर्ग उदार व क्रांतिकारियों का था। उनकी धारणा थी कि फ्रांस की चर्च व्यवस्था पोप से स्वतंत्र होनी चाहिए। प्रतिभासम्पन्न नेपोलियन ने यह शीघ्र ही जाँच लिया कि बोर्बा वंश को समर्थन प्रधानतः रोमन कैथोलिक समर्थकों से मिलता है। फ्रांस की अधिकांश जनता क्रांति के क्रांतिकारी परिवर्तनों के बावजूद भी कैथोलिक धर्म व धर्माधिकारियों की परमभक्त है। उन्होंने चाहे देश छोड़ दिया हो, पर अपनी धार्मिक विचारधारा नहीं छोड़ी है। इंग्लैण्ड व जर्मनी में निवास करते हुए भी वे लोग पोप से नियंत्रित होते थे। पोप ने लुई 16वें के भाई लुई अठारहवें को फ्रांस का वैधानिक शासक मान लिया था। नेपोलियन बोर्बा वंश का प्रभुत्व फ्रांस से सदैव के लिए समाप्त करना चाहता था। वह कैथोलिक धर्म के अनुयायियों में यह विश्वास उत्पन्न करना चाहता था कि अब फ्रांस में वे निर्भीक हो अपने धर्म पर आचरण कर सकते हैं। इसलिए उसने पोप पायस सातवें से 15 जुलाई, 1801 में धार्मिक समझौता किया। इस समझौते के अंतर्गत नेपोलियन ने फ्रांस में निम्नलिखित धार्मिक कानून बनाये–

(i) कैथोलिक धर्म को बहुसंख्यक फ्रांसीसी लोगों का धर्म मान लिया गया। उन्हें धर्म पर आचरण करने की स्वतंत्रता प्रदान कर दी गई।

(ii) पोप ने चर्च की व्यवस्था को नवीन ढंग से संगठित करना स्वीकार कर लिया। बिशपों का औपचारिक रूप से पदारोहण संस्कार पोप करायेगा, परन्तु उनकी नियुक्ति प्रथम कौंसिल करेगा यह भी उनमें तय हो गया।

NOTES

(iii) बिशपों के स्थान कम कर दिये गये।

(iv) पादरियों की नियुक्ति सरकार की अनुमति से बिशप करेंगे।

(v) बिशपों को राज्य के प्रमुख के प्रति भक्ति की शपथ लेनी पड़ेगी।

(vi) धर्माधिकारियों का वेतन सरकारी कोष से मिलेगा।

(vii) क्रांति के समय धर्माधिकारियों की जो भूमि बेच दी गई थी उसको नियमित मान लिया गया।

(viii) धर्माधिकारियों को धार्मिक कर लेने का अधिकार नहीं रहा।

(ix) नेपोलियन ने पोप राज्य को मान्यता प्रदान की।

(x) पोप को फ्रांस में विशेष आज्ञाएँ प्रसारित करने का अधिकार नहीं रहा और बिना प्रथम कौंसिल की अनुमति के फ्रांस में अब धर्माधिकारियों का अधिवेशन भी नहीं हो सकता था। इस समझौते से फ्रांस के अधिकांश लोग प्रसन्न हुए। इसका कारण यह था कि उनको धार्मिक आचरण की स्वतंत्रता प्राप्त हो गई। धर्माधिकारी इसलिए प्रसन्न हुए कि उनकी अपहृत भूमि उन्हें वापस मिल गई। इसके अलावा उनके सन्तुष्ट होने का एक कारण यह भी था कि उनका पोप से संबंध पुनः स्थापित हो गया परन्तु इसका अर्थ यह नहीं था कि फ्रांस की सरकार के प्रभुत्व से स्वतंत्र हो गयी।

पोप अब स्वेच्छा से फ्रांस में बिशपों की नियुक्ति नहीं कर सकता था। वह फ्रांस के लोगों के लिए विशेष आज्ञाएँ जारी नहीं कर सकता था। नेपोलियन ने बिना पोप की अनुमति के कुछ धार्मिक नियम और बना दिए थे जिनका पालन फ्रांस के धर्माधिकारियों के लिए आवश्यक था। कैथोलिक लोग व उनके पादरी अब राजतंत्र के समर्थक न रह कर नेपोलियन के समर्थक बन गये, परन्तु उन्हें इस बात का भी पता शीघ्र ही चल गया कि यह समझौता नेपोलियन ने अपने शासन को सुदृढ़ करने व अपने प्रभाव को व्यापक बनाने की दृष्टि से किया है। इसका परिणाम यह हुआ कि नेपोलियन कैथोलिक लोगों की अधिक दिनों तक श्रद्धा का पात्र नहीं रहा। पोप व नेपोलियन में भी शीघ्र ही कई धार्मिक प्रश्नों को लेकर विवाद खड़ा हो गया। इस समझौते के पीछे उसका एक ही उद्देश्य था कि फ्रांस के लोग एक धर्म चाहते हैं और वह राज्य से नियंत्रित होना चाहिए। इसमें वह पूरी तरह सफल रहा।

(4) शिक्षा सम्बन्धी सुधार :– नेपोलियन के शक्ति में आने से पूर्व शिक्षा धर्माधिकारियों के नियंत्रण में थी। वह जानता था कि शिक्षा के क्षेत्र में धर्माधिकारियों का प्रभाव सर्वथा विनष्ट करना एक कठिन कार्य है। अतः प्राथमिक शिक्षा तो उसने चर्च के ही अधीन रहने दी। माध्यमिक शिक्षा के लिए उसने नवीन ढंग से **लाईसे** नामक स्कूल खोले। उनमें प्रशिक्षित अध्यापक नियुक्त किये जाने लगे। पाठ्यक्रम में विज्ञान और गणित को अधिक महत्व दिया गया। छात्रों में सैनिक अनुशासन प्रचलित किया गया। नेपोलियन ने उद्योग व व्यवसाय को भी पर्याप्त महत्व दिया। अतः शिक्षा का स्वरूप भी वैसा ही बनाया गया। व्यवसाय के लिए विशेष स्कूल खोले गये। उसने प्रयोगात्मक शिक्षा का प्रबंध किया। प्रशिक्षित अध्यापकों की उपलब्धियों के लिए उसने पेरिस में एक नार्मल स्कूल खोला। बड़े नगरों में उसने हाई स्कूल स्थापित किये। इन शिक्षा संस्थाओं के माध्यम से नवयुवकों में राज–भक्ति की भावना तथा सुनागरिक बनाने के लिए अच्छा अनुशासन उत्पन्न कर दिया जावे। इन सुधारों में भी उसे सफलता ही मिली।

(5) आर्थिक सुधार :– क्रांति की उग्र गति के साथ आर्थिक समस्या भी दिनोंदिन जटिल बनती गई। राष्ट्रीय ऋण व कागजी मुद्रा के प्रचार में फ्रांस की आर्थिक अवस्था निरन्तर दयनीय ही होती गई। सत्ता संभालते ही नेपोलियन ने इस ओर भी ध्यान दिया। उसने कर व्यवस्था में सुधार किया। कर नियमित रूप से सरकारी कर्मचारियों द्वारा वसूल होने लगे। राष्ट्रीय ऋण

चुकाने के लिए उसने एक निधि की स्थापना की। पुरानी सरकारी सिक्युरिटी (सरकारी कागज) को अदा करने के लिए उसने नवीन सिक्युरिटी जारी की। उसने सरकारी खर्च में कमी की। अपनी विशाल सेना को आर्थिक संकट से बचाने के लिए उसने एक नवीन विधि निकाली। वह अपनी सेना का खर्च विजित देशों से लेने लगा। इसके अलावा फ्रांस की आर्थिक अवस्था को स्थाई रूप से व्यवस्थित करने की दृष्टि से उसने 1880 में एक बैंक की स्थापना की। सरकार की आर्थिक नीति का संचालन इस बैंक के ही अधीन कर दिया। उसने भ्रष्ट कर्मचारियों को कठोर दण्ड देना आरंभ किया। इसका परिणाम यह हुआ कि अब सरकारी आय में चोरी होना बंद हो गयी। देश की आर्थिक अवस्था की दृष्टि से उसने देश के औद्योगिक विकास को भी प्रोत्साहित किया। उसने वाणिज्य सदन को पुनः गठित किया। राष्ट्रीय उद्योग संस्था स्थापित की। इसके माध्यम से राज्य के वैज्ञानिक व वस्तु निर्माता सामूहिक रूप से संगठित किये गये। रेशम, ऊन व कपास के व्यापार को पुनर्जीवित करने का भारी प्रयास किया गया। व्यावसायिक संघों को उसने भंग कर दिया। बेकार मनुष्यों को रोजी देने के लिए उसने निर्माणकारी कार्य भारी संख्या में आरंभ किये।

(6) सम्मानित व्यक्तियों को पुरस्कृत करने की प्रथा :– इस प्रथा को लीजियन आफ ऑनर कहते हैं। इसका प्रारंभ 1802 में किया गया। नेपोलियन की यह धारणा थी कि बिना किसी प्रकार के सार्वजनिक सत्कार वितरण के साधारण नागरिकों में राष्ट्र प्रेम की भावना उत्पन्न करना कठिन है। अतः यह प्रथा चालू की गई। यद्यपि यह उपाधि सैनिक व असैनिक दोनों ही प्रकार की सेवा करने वाले व्यक्तियों को दी जाती थी, किन्तु यह प्रधानतः सैनिक कर्मचारियों को दी जाती थी। नेपोलियन ने अपने समय में 48 हजार उपाधियाँ वितरित कीं। उनमें से असैनिक उपाधियाँ केवल 1400 व्यक्तियों को ही दी गईं। समकालीन समालोचकों ने इस संस्था की निन्दा की तथा इसे क्रांति के सिद्धान्तों के विरुद्ध बताया। वास्तव में यह समानता के सिद्धान्त के विपरीत भी थी, परन्तु इन उपाधियों के वितरण से नेपोलियन ने एक ऐसा वर्ग बना लिया जो उसके प्रति निष्ठावान रहा।

(7) नेपोलियन की विधि संहिता :– नेपोलियन ने एक बार हेलीना में कहा था "मेरा वास्तविक गौरव मेरी 40 युद्धों की विजयों में नहीं है। मेरी विधि संहिता ही ऐसी है जो कभी न मिट सकेगी और जो चिरस्थायी सिद्ध होगी, क्रांति से पूर्व फ्रांस में न्याय अवस्था बहुत शोचनीय थी। क्रांति के समय में कम से कम पाँच बार इसके हस्तलेख तैयार किये, किन्तु सफलता प्राप्त नहीं हुई। नेपोलियन ने यह कार्य काउन्सिल ऑफ स्टेट को सौंपा। उसके द्वारा विधि सुधार के निमित्त 113 बैठकें की गईं। उनमें से 70 में नेपोलियन स्वयं सम्मिलित हुआ। इसके बन जाने से समस्त फ्रांस में एक सी न्याय व्यवस्था स्थापित हुई तथा अभियोगों का निर्णय भी सुगमता एवं शीघ्रता से होने लगा। इस कानूनी ग्रन्थ ने क्रांति के विचारों एव कार्यो को निश्चित स्वरूप प्रदान किया। इस ग्रन्थ में समानता के आधार का पूरी तरह पालन किया गया है, परन्तु व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर समाज व सरकार का अंकुश लगाया गया। इसमें संगृहीत कानूनों द्वारा सामाजिक समानता, धार्मिक सहिष्णुता, उत्तराधिकार की समानता तथा जागीर प्रथा का उन्मूलन घोषित कर दिया। इस कानूनी ग्रन्थ के अन्तर्गत नेपोलियन ने परिवार के महत्व को बढ़ा दिया।" परिवार के सदस्यों को वयोवृद्ध व्यक्ति का कहना मानना पड़ता था। विवाह के लिये भी पिता की अनुमति लेना आवश्यक ठहराया था। विवाह के लिए लड़के की अवस्था 18 तथा लड़की की 15 वर्ष निर्धारित की गई। तलाक के प्रश्न को उसने जटिल बना दिया। इस विधि संग्रह से स्पष्ट है कि नेपोलियन सम्पत्ति के समान विभाजन के विरुद्ध था तथा फ्रांस की जनसंख्या में वृद्धि चाहता था। यह विधि संग्रह नेपोलियन की राजनीतिक क्षमता का एक महान स्मारक बन गया। कई इतिहासकारों ने इस क्षेत्र में उसकी क्षमता रोम के जस्टीनियन से की है।

(8) सार्वजनिक हित के कार्य :– नेपोलियन के अपने इस अल्प काल में सार्वजनिक हित के कार्यों की ओर भी ध्यान दिया। इस प्रकार के कार्यों से वह बेरोजगार व्यक्तियों को रोजगार

NOTES

देना तथा देश का व्यापार उन्नत करना चाहता था, इसलिए उसने फ्रांस में सड़कों का जाल बिछाना आरंभ कर दिया। सड़कों के निर्माण के साथ उसने कई पुल भी बनवाए। कृषि को उन्नत करने के लिये उसने कई नहरें भी बनवाईं। इनके अलावा उसने पेरिस का सौन्दर्य बढ़ाने की ओर पर्याप्त ध्यान दिया। अपने इस उद्देश्य को पूर्ण करने के उद्देश्य से उसने पेरिस को विशाल राजमार्गों से अलंकृत किया। पेरिस के अजायबघर को विजित देशों से प्राप्त कलाकृतियों से और दर्शनीय एवं सुन्दर बनाया। पेरिस के प्राचीन प्रासादों (रेम्बूलेट, सेंट क्लाउड तथा फाउन्टेनप ब्ल्यू) को वर्साय के प्रासाद की भाँति सुसज्जित किया।

(9) प्रेस पर नियंत्रण :– क्रांति के सिद्धान्तों का समर्थक होते हुए भी नेपोलियन स्वतंत्रता का महान शत्रु था। उसका कहना था कि यदि प्रेस पर नियंत्रण नहीं किया गया तो मैं सत्ता में तीन दिन नहीं रह सकता। इसलिए उसने अपने इस कार्यकाल में फ्रांस के 73 समाचार–पत्रों में से 60 को बंद कर दिया। केवल 13 समाचार–पत्र निकलते थे।

नेपोलियन के उपर्युक्त शासन–सुधारों से स्पष्ट है कि वह एक महान संगठनकर्ता तथा योग्य प्रशासक था। निःसन्देह नेपोलियन निरंकुश शासन पसन्द करता था। अतः उसने शासन व्यवस्था भी उसी प्रकार की स्थापित की, परन्तु फिर भी उसने क्रांति के अनेक सामाजिक एवं वैधानिक लाभों को सुरक्षित रखा और इसके साथ प्राचीन व्यवस्था की कई कुरीतियों को भी समाप्त कर दिया। राज्य के समस्त पद आम जनता के लिए खोल दिये। साधारण व्यक्ति भी राज्य में ऊँचे से ऊँचा पद प्राप्त कर सकता था। पद प्राप्ति के लिये शर्त केवल मानव की योग्यता थी। इस प्रकार उसने फ्रांस के तीनों वर्गों को समान कर दिया। उसकी विधि संहिता ने सामाजिक समानता स्थापित की। उसने फ्रांस की समृद्धि के लिये सभी वर्गों के मनुष्यों का सहयोग लेने का प्रयास किया। उसके साथ ही वह प्रतिक्रियावादी भी था। क्रांति के सिद्धान्त "समानता" का उसने समर्थन भी किया वरन् उसको अपने प्रशासनिक सुधारों द्वारा क्रियान्वित भी किया पर स्वतंत्रता के क्षेत्र में यह प्रतिक्रियावादी सिद्ध हुआ। वह व्यक्तिगत स्वतंत्रता का तो कटु शत्रु था वह अपने समय का एक माना हुआ प्रशासक था और जो उसने एक सेना के छोटे से पद लेकर सम्राट तक का पद प्राप्त किया उसमें उसकी प्रशासनिक दक्षता भी सहायक सिद्ध हुई।

7.5 नेपोलियन के युद्ध (NAPOLEAN'S WAR)

2 दिसम्बर, 1804 के दिन नेपोलियन का राज्याभिषेक हुआ और वह फ्रांस का सम्राट बन गया। सम्राट बनकर नेपोलियन अधिक से अधिक स्वेच्छाचारी तथा निरंकुश होता गया। उसने आस्ट्रिया की राजकुमारी से विवाह कर लिया तथा एक नए साम्राज्य की नींव डाली। साम्राज्य का इतिहास दस वर्ष के निरन्तर युद्धों का इतिहास है। फ्रांस के इस उत्कर्ष से अन्य यूरोपीय देशों को खतरा महसूस हुआ। नेपोलियन अपनी सैनिक शक्ति को प्रदर्शित करते रहना चाहता था। 1802 में उसने राज्य परिषद के समक्ष भाषण देते हुए कहा था– "यदि यूरोपीय देश फिर से युद्ध करना चाहते हैं, तो लड़ाई जितनी जल्दी शुरू हो उतना ही अच्छा है। जितना समय गुजरता जाता है, उनकी पराजयों की स्मृति मंद पड़ती जाती है और हमारा गौरव लोगों की दृष्टि से ओझल होता जाता है, फ्रांस को शानदार कृत्यों की आवश्यकता है– इसलिए युद्ध की भी जरूरत है।" वह बहुत महत्वाकांक्षी था। सम्पूर्ण यूरोप को विजित करने का स्वप्न वह सँजोये हुए था। इसी महत्वाकांक्षा को उसने इन शब्दों में व्यक्त किया था– **"यूरोप में तब तक शान्ति स्थापित नहीं हो सकती, जब तक कि सम्पूर्ण महाद्वीप एक शासन के अधीन न हो जाए। यूरोप के ऊपर शासन करने वाला एक ऐसा सम्राट होना चाहिये, जिसके अधीन विविध राजा कर्मचारी के रूप में कार्यरत हों। जो एक आदमी को इटली का शासक नियत करे, दूसरे को बबेरिया का, एक आदमी को स्विट्जरलैण्ड का शासक नियत करे, दूसरे को हॉलैण्ड का।"** नेपोलियन की इस महत्वाकांक्षा को क्रियान्वित

करने का अर्थ था यूरोप में निरंतर युद्धों का होना। परिणामस्वरूप यूरोप में उन भयंकर युद्धों की श्रृंखला बनी जो दस वर्ष तक चलती रही।

नेपोलियन के युद्धों के कारण

डॉ. पार्थसारथी गुप्ता के अनुसार नेपोलियन के युद्धों के निम्न कारण थे–

(1) **प्रचार के युद्ध** – क्रांति के सिद्धान्तों का विदेशों में प्रचार करना।

(2) **साम्राज्य विस्तार के युद्ध** – जो नेपोलियन की महत्वाकांक्षा और फ्रांस की सीमा को बढ़ाने के उद्देश्य से किए गए।

(3) **फ्रांस और इंग्लैण्ड के पारस्परिक समुद्री और स्थलीय युद्ध** – इंग्लैण्ड यूरोप के तट की नाकेबंदी कर रहा था और फ्रांस अपने को सागर की स्वतंत्रता का रक्षक घोषित कर रहा था।

(4) **नेपोलियन स्वयं को क्रांति का उत्तराधिकारी मानता था इसलिए क्रांति–युद्धों** द्वारा जीते गए प्रांतों की रक्षा करना अपना कर्त्तव्य समझता था।

(5) **नेपोलियन ऐतिहासिक स्मरणों** – जूलियस सीजर, डायोक्लीशियन, शार्ल मेन और सिकन्दर की विश्व विजयों से बहुत प्रभावित था। मिस्र और सीरिया के अभियानों में, भारत पर विजय की योजना में और तुर्की के विभाजन के इरादे में नेपोलियन पर सिकंदर का प्रभाव प्रत्यक्ष रूप से दिखता है। लेकिन जर्मनी की व्यवस्था और पश्चिमी यूरोप में ईसाई प्रजा का साम्राज्य स्थापित करना और लौह मुकुट का अंगीकरण शार्लमेन के विचारों से मिलते थे।

बोध प्रश्न

1. नेपोलियन के सुधार का वर्णन कीजिए?

....

....

....

2. नेपोलियन के उदय का वर्णन कीजिए?

....

....

....

7.6 नेपोलियन के प्रमुख युद्ध

(1) ब्रिटेन के साथ युद्ध

फ्रांस और ब्रिटेन परंपरागत प्रतिद्वंद्वी थे। इनमें प्रायः युद्ध हुआ करता था। 1802 के पश्चात् ब्रिटेन को फ्रांस से मजबूरन युद्ध करना पड़ा क्योंकि फ्रांस की भक्ति सम्पूर्ण यूरोप में बढ़ रही थी और फ्रांस अपनी प्राकृतिक सीमाओं से आगे बढ़ रहा था। फ्रांस की साम्राज्य विस्तार की नीति से इंग्लैण्ड के सामुद्रिक व्यापार को भी हानि हो रही थी। नेपोलियन ने यूरोप के एक बड़े समुद्री तट पर कब्जा कर लिया था। हैनोवर से लेकर इटली तक का सम्पूर्ण समुद्री तट नेपोलियन के कब्जे में था। इस स्थिति का फायदा उसने ब्रिटेन के व्यापार को नष्ट करके उठाया। उसने तमाम क्षेत्र में ब्रिटेन के माल का आना प्रतिबंधित कर दिया। इसके अतिरिक्त ब्रिटेन की भी अपनी औपनिवेशिक महत्वाकांक्षायें थीं जो फ्रांस से युद्ध करके ही पूरी की जा सकती थीं। एमिएँ की

संधि के पश्चात् नेपोलियन ने पीडमाँ, पारमा और एल्वा पर आधिपत्य कर लिया था और अब हॉलैण्ड को अपने अधीन करने की योजना बना रहा था। इस तरह यूरोप में फ्रांस की शक्ति और प्रभाव को बढ़ता हुआ देखकर ब्रिटेन ने माल्टा वापस देने से इन्कार कर दिया और इस तरह मई, 1803 में युद्ध आरंभ हो गया।

फ्रांस का ब्रिटेन से युद्ध प्रारंभ हुआ तो यूरोप के अन्य देशों ने फ्रांस का साथ नहीं दिया क्योंकि यह सामुद्रिक शक्तियों का युद्ध था और ब्रिटेन सामुद्रिक शक्ति में अपराजेय था। इसके अतिरिक्त फ्रांसीसी जल सेना क्रांति के बाद से कमजोर हो गई थी। आयरलैण्ड के विद्रोह के समर्थन में फ्रांसीसी सेना की असफलता और मिस्र के अभियान में भी फ्रांसीसी जल सेना की पराजय ब्रिटेन के हाथों हो चुकी थी। इस कारण यूरोप के अन्य देशों ने फ्रांस का साथ नहीं दिया। ब्रिटेन ने फ्रांसीसी बंदरगाहों की नाकाबन्दी कर दी और सेंट लूसिया, टोबैगो और डच गुयाना नामक कैरीबियन द्वीपों को अपने अधीन कर लिया।

नेपोलियन ने लंदन पर आक्रमण करने की योजना बनाई और कई सौ डोंगियों का बेड़ा बनवाया और बोलोन द्वीप में एक बड़ी सेना *'आर्मी ऑफ इंग्लैण्ड'* को तैयार रखा। ब्रिटेन की ओर से नेल्सन को भेजा गया। ट्रेफल्गर नामक स्थान पर युद्ध हुआ। इस युद्ध में नेपोलियन को पराजित होना पड़ा उसकी योजना को विफल कर दिया गया। इस पराजय के बाद नेपोलियन ने ब्रिटेन से समुद्री युद्ध का विचार हमेशा के लिए त्याग दिया।

(2) आस्ट्रिया के साथ युद्ध

आस्ट्रिया फ्रांस विरोधी गुट में शामिल हो गया। इस कारण नेपोलियन को आस्ट्रिया पर आक्रमण करना पड़ा। नेपोलियन ने 1805 में आस्ट्रिया पर आक्रमण कर दिया। आस्ट्रिया भी इस आक्रमण का अनुमान लगा चुका था परन्तु उसके सेनापति का यह अनुमान गलत साबित हुआ कि नेपोलियन का प्रमुख आक्रमण इटली की तरफ से होगा। नेपोलियन ने काले जंगल की तरफ सेना की कुछ टुकड़ियों को भेजा। फ्रांसीसी सेनाएँ डेन्यूब नदी की ओर गईं। 20 अक्टूबर, 1805 को उल्म नामक स्थान पर आस्ट्रिया की सेना को आत्मसमर्पण करने के लिए मजबूर कर दिया।

इसके बाद नेपोलियन विएना की ओर बढ़ा तथा आस्टरलिप्स के युद्ध में 2 दिसम्बर, 1805 के दिन फ्रांस ने आस्ट्रिया तथा रूस की संयुक्त सेना को पराजित किया। आस्ट्रिया को सन्धि करने के लिए मजबूर होना पड़ा।

प्रेस बर्ग की संधि (26 दिसम्बर, 1805)

आस्ट्रिया को पराजय के बाद नेपोलियन से संधि करनी पड़ी। यह संधि उसे बहुत महँगी पड़ी। आस्ट्रिया को बहुत सारे प्रदेशों पर से अपना आधिपत्य छोड़ना पड़ा और इसके शासक का महत्व कम हो गया। इसकी प्रमुख शर्तें इस प्रकार थीं –

- आस्ट्रिया को वेनीशिया फ्रांस को देना पड़ा।
- फ्रांस के मित्र बवेरिया को टाइटोल के प्रदेश देने पड़े।
- बवेरिया, बुर्टमबुर्ग तथा बाडन को आस–पास के प्रदेश दिए।
- डालमेशिया भी फ्रांस के आधिपत्य में आ गया।
- एंड्रेयांटिक के तट पर अब आस्ट्रिया का आधिपत्य समाप्त हो गया।

(3) रोमन साम्राज्य का अन्त और रहाइन संघ का निर्माण

उपर्युक्त संधि का एक परिणाम यह हुआ कि नेपोलियन ने अनेक जर्मन राज्यों को पवित्र रोमन साम्राज्य से पृथक करके अपनी अधीनता में रहाइन के राज्यसंघ का निर्माण किया। इस संघ में बवेरिया बुर्टमबुर्ग, बाडन तथा अन्य तेरह राज्य शामिल हुए। इस संघ के निर्माण के बाद

एक अगस्त, 1806 को रोमन साम्राज्य की महासभा के समक्ष नेपोलियन ने कहा कि मैंने रहाइन राज्यसंघ के संरक्षक के पद को स्वीकृत कर लिया है, अतः अब मैं रोमन साम्राज्य की सत्ता को स्वीकार नहीं कर सकता। इस घोषणा के परिणामस्वरूप रोमन साम्राज्य का अन्त हो गया। 6 अगस्त, 1806 को आस्ट्रिया के राजा ने इस पद का स्वयं परित्याग कर दिया। आस्ट्रिया का राजा अब पवित्र रोमन साम्राज्य का सम्राट नहीं रहा।

(4) प्रशा से युद्ध (1806)

जर्मनी में नेपोलियन का प्रभाव बढ़ रहा था। रहाइन के राज्यसंघ के निर्माण से यह प्रभाव और बढ़ गया। प्रशा बेसिल की संधि के बाद से तटस्थता की नीति अपना रहा था, परन्तु वह राज्य विस्तार की आकांक्षा भी रखता था। अपने साम्राज्य विस्तार की महत्वाकांक्षा में नेपोलियन द्वारा निर्मित रहाइन संघ बहुत बड़ी बाधा थी। हैनोवर पर आक्रमण करते समय नेपोलियन ने तटस्थ प्रशा राज्य में से अपनी सेनाओं को निकालने का आदेश दिया। प्रशा के सम्राट फ्रेडरिक विलियम को यह कार्य बर्दाश्त नहीं हुआ। उसने नेपोलियन से यह माँग की कि वह नेपल्स, जर्मनी, स्विट्जरलैण्ड और पीण्डमाण्ड को खाली कर दे तथा प्रशा को हैनोवर वापस कर दे। नेपोलियन ने उसकी इस माँग पर ध्यान नहीं दिया इसके कारण प्रशा ने फ्रांस के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। 14 अक्टूबर, 1806 को फ्रांस और प्रशा के बीच दो स्थानों – जेना और आवेरस्टार पर एक साथ युद्ध हुआ। इस भयंकर युद्ध में प्रशा की सेना बुरी तरह पराजित हो गई। 25 अक्टूबर, 1806 को फ्रांस की सेना ने बर्लिन में प्रवेश किया और नेपोलियन में प्रशा की शक्ति को समाप्त कर दिया।

(5) रूस के साथ युद्ध और टिलसिट की संधि

प्रशा की विजय के बाद उससे सन्धि किए बिना ही नेपोलियन ने रूस से युद्ध प्रारंभ कर दिया। रूस प्रशा–फ्रांस युद्ध में प्रशा के साथ था, इसलिए नेपोलियन ने रूस पर आक्रमण कर दिया। सबसे पहले नेपोलियन ने पोलैण्ड पर आक्रमण कर वार्सा में प्रवेश किया, इसके बाद आइलो नामक स्थान पर नेपोलियन तथा रूस की सेनाओं के बीच युद्ध हुआ जो कि अनिर्णायक सिद्ध हुआ। इस युद्ध में रूस को पीछे हटना पड़ा। इसके बाद 14 जून, 1807 को फ्रीडलैण्ड के मैदान में रूस और फ्रांस के बीच भयंकर युद्ध हुआ। इस युद्ध में रूस पराजित हुआ और दोनों के बीच टिलसिट की संधि हो गई।

टिलसिट की संधि – 8 जुलाई, 1807 को नेपोलियन तथा रूस सम्राट एलेक्जेण्डर प्रथम के मध्य जो सन्धि हुई उसे टिलसिट की सन्धि कहा जाता है। इसकी शर्तें इस प्रकार थीं–

- ➢ नेपोलियन और अलेक्जेण्डर के बीच गुप्त समझौता हो गया कि नेपोलियन पश्चिमी यूरोप में अपना विस्तार करे और अपनी इच्छानुसार कार्य करे तथा अलेक्जेण्डर पूर्वी यूरोप को सम्हाले। एक तरह से दोनों सम्राटों ने यूरोप को बाँट लिया।
- ➢ नेपोलियन द्वारा निर्मित राज्यों को जार ने स्वीकृत कर लिया।
- ➢ जार को युद्ध का हर्जाना नहीं देना पड़ा।
- ➢ जार अलेक्जेण्डर ने इंग्लैण्ड के विरुद्ध फ्रांस को सहायता देने का वचन दिया।

(6) पुर्तगाल और स्पेन से युद्ध

नेपोलियन और ब्रिटेन परंपरागत शत्रु थे और पुर्तगाल ब्रिटेन का व्यापारिक मित्र था। इस कारण नेपोलियन और पुर्तगाल के बीच युद्ध सम्भाव्य था। नेपोलियन ने जब पूर्व साइबेरियाई तट से अंग्रेजी व्यापार का निषेध करना चाहा तो पुर्तगाल ने नेपोलियन का साथ नहीं दिया।

इस कारण नेपोलियन ने पुर्तगाल पर आक्रमण किया। नेपोलियन ने जूनों के नेतृत्व में पुर्तगाल पर आक्रमण करने के लिए सेना भेजी और उसको अपने अधीन कर लिया।

पुर्तगाल पर आक्रमण के लिए जो सेना भेजी गई थी वह स्पेन को पार करके गई थी। इस समय स्पेन की स्थिति बहुत खराब थी। इसको देखकर नेपोलियन को अपने साम्राज्य विस्तार का रास्ता साफ दिखाई दिया। इसी समय स्पेन के युवराज ने गोदोय को हटाने के लिए नेपोलियन से सहायता माँगी। गोदोय के विरुद्ध स्पेन में विद्रोह हो गया अतः उसे बन्दी बना लिया गया। इसी बीच नेपोलियन ने युवराज फार्डेनेड को बेयोन में बुलाकर राजत्याग के लिए राजी कर लिया और अपने भाई जोजफ बोनापार्ट को 1808 में स्पेन का राजा घोषित कर दिया। मैड्रिड में जोजफ के खिलाफ विद्रोह हुआ और उसे स्पेन छोड़कर भागना पड़ा। नेपोलियन ने 1808 में स्पेन पर आक्रमण किया और प्रारंभ में स्पेन की सेना पराजित हुई, परन्तु जुलाई 1808 में स्पेन की सेना ने बेलेन नामक स्थान पर फ्रांसीसी सेना को पराजित कर दिया। स्पेन को इंग्लैण्ड की सैनिक सहायता भी मिल गई इस कारण विमरो के युद्ध में फ्रांसीसी सेना पराजित हो गई।

जब नेपोलियन ने रूस और जर्मनी से लड़ने के लिए स्पेन से सेना बुलाई तो वेलिंग्टन ने फ्रांसीसी सेनाओं को पराजित कर दिया। इस तरह फ्रांस को स्पेन छोड़ने के लिए विवश होना पड़ा।

(7) आस्ट्रिया के साथ युद्ध और विएना की संधि

जब नेपोलियन स्पेन के साथ युद्ध में व्यस्त था तब आस्ट्रिया ने अनुकूल अवसर पाकर फ्रांस के साथ युद्ध प्रारंभ कर दिया। अप्रैल 1809 में आस्ट्रिया ने फ्रांस के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। नेपोलियन एक बार पराजित हुआ, परन्तु उसने वाग्राम के युद्ध में आस्ट्रिया को पराजित कर दिया। आस्ट्रिया को विएना की संधि करनी पड़ी। इस संधि के अनुसार आस्ट्रिया को अपने राज्य का छठा हिस्सा नेपोलियन को देना पड़ा।

(8) मास्को अभियान

नेपोलियन और रूस के बीच टिलसिट की संधि द्वारा महाद्वीपीय व्यवस्था को सफल बनाने का समझौता हुआ था, परन्तु रूस बहुत दिनों तक इस संधि की शर्तों का पालन नहीं कर सका। इसके कई कारण थे– रूस की जनता इस संधि के पक्ष में नहीं थी। इसके अतिरिक्त रूस के लिए यह सम्भव नहीं था कि वह इंग्लैण्ड से व्यापार प्रतिरोध को पूर्णतः अपनाये। रूस ने ब्रिटेन से पुनः व्यापार प्रारंभ कर दिया। इससे नेपोलियन की महाद्वीपीय व्यवस्था टूटने लगी। नेपोलियन सम्पूर्ण यूरोप का विजेता बनना चाहता था इसके लिए रूस को विजित करना अनिवार्य था। रूस पर विजय भारत की विजय का रास्ता भी खोल देती ऐसा नेपोलियन का मानना था। इन सब कारणों से नेपोलियन ने रूस पर आक्रमण करने की योजना बनाई।

नेपोलियन जानता था कि रूस एक विशाल देश था इसे जीतने के लिए विशाल सेना की आवश्यकता थी। अतः उसने छः लाख सैनिकों की विशाल सेना एकत्र की और लगभग एक हजार तोपों को साथ लेकर जून 1812 में रूस पर आक्रमण किया। रूसी सेनाओं ने पीछे हटने की नीति अपनाई। पीछे हटते हुए वे समस्त खेतों, चारागारों एवं शहरों को नष्ट करते गए जिससे नेपोलियन की सेना को कोई मदद न मिले। 7 सितम्बर, 1812 को बोरोडिनो में दोनों सेनाओं के बीच भीषण युद्ध हुआ। इस युद्ध में 5 लाख सैनिकों ने भाग लिया। करीब 70 हजार सैनिक मारे गए। नेपोलियन युद्ध में विजयी हुआ।

14 सितम्बर को नेपोलियन ने मास्को में प्रवेश किया, परन्तु मास्को को रूसी सैनिकों ने जलाकर नष्ट कर दिया था। इसी समय रूस में भयंकर सर्दी पड़ने लगी, चारों तरफ बर्फ जम गयी। नेपोलियन के सैनिकों को कई दिनों तक भूखा रहना पड़ा। नेपोलियन को मास्को से वापस लौटना पड़ा। रास्ते में सैनिकों को बहुत कठिनाई का सामना करना पड़ा। लाखों सैनिक

बर्फ में दबकर मर गए। नेपोलियन जब दिसम्बर में फ्रांस पहुँचा तो उसके साथ सिर्फ बीस हजार सैनिक ही बचे थे। मास्को अभियान अत्यन्त दुःखद अभियान सिद्ध हुआ।

(9) राष्ट्रों का युद्ध

1813 में नेपोलियन के विरुद्ध चतुर्थ यूरोपियन गुट तैयार हो गया। इस गुट में– इंग्लैण्ड, आस्ट्रिया, रूस, प्रशा और स्वीडन सम्मिलित थे। इन सब देशों ने संयुक्त सेना का निर्माण करके नेपोलियन के विरुद्ध युद्ध आरंभ किया। 16 से 18 अक्टूबर तक लिपजिंग में युद्ध हुआ। इससे पहले नेपोलियन ने अगस्त 1813 में आस्ट्रिया की सेना को ड्रेसडन में परास्त किया। यह विजय नेपोलियन की अन्तिम प्रमुख विजय थी। लिपजिंग के युद्ध में नेपोलियन अन्तिम रूप से परास्त हुआ। इस युद्ध को **'राष्ट्रों का युद्ध'** कहा जाता है। इस युद्ध से नेपोलियन को बहुत हानि हुई और उसका साम्राज्य भी सीमित हो गया।

(10) वाटरलू का युद्ध

'राष्ट्रों के युद्ध' के बाद मित्र राष्ट्रों ने नेपोलियन को **'एल्बा'** द्वीप भेज दिया था। इस समय फ्रांस के सम्राट का पद लुई 18वें को सौंप दिया। यूरोप की पुनर्व्यवस्था के लिए यूरोपीय राष्ट्रों के प्रतिनिधि विएना में एकत्र हुए। यह खबर पाकर नेपोलियन एल्बा से भाग निकला। वह कैनेस बन्दरगाह से होता हुआ पेरिस पहुँचा। उसके पेरिस पहुँचने से पहले लुई 18वाँ वहाँ से बेल्जियम भाग गया था। अब नेपोलियन पुनः फ्रांस का राजा बन गया। मित्र राष्ट्रों को नेपोलियन के सम्राट बनने की खबर मिली तो उन्होंने नेपोलियन पर पुनः आक्रमण कर दिया। 18 जून, 1815 को बेल्जियम के वाटरलू नामक स्थान पर वेलिंगटन की सेना के साथ सात घण्टे तक भयंकर युद्ध हुआ। वाटरलू में नेपोलियन पराजित हुआ और उसे कैद कर लिया गया।

7.7 नेपोलियन प्रथम की महाद्वीपीय प्रणाली (NAPOLEAN'S CONTINENTAL SYSTEM)

महाद्वीपीय व्यवस्था से नेपोलियन का यह तात्पर्य था कि उसके सहयोगी राष्ट्र व्यापार के क्षेत्र में इंग्लैण्ड की नाकेबंदी करें। वे अपने यहाँ इंग्लैण्ड का किसी भी प्रकार का सामान न भेजें और इंग्लैण्ड के सामान का अपने यहाँ आयात न होने दें। एक इतिहासकार ने लिखा है कि नेपोलियन को वाटरलू के रणक्षेत्र में परास्त नहीं किया गया था। उसकी वास्तविक पराजय मेनचेस्टर में कपड़े के कारखानों तथा बर्मिंघम की लोहे की भट्टियों में हुई थी। इतिहासकार के इस कथन का आशय यही है कि इंग्लैण्ड अपने व्यापार व व्यवसाय के कारण ही नेपोलियन से इतने दीर्घकाल तक लोहा ले राका और अन्त में उसे परास्त कर सका। नेपोलियन यह भी समझ चुका था कि इंग्लैण्ड की जल सेना को परास्त करना एक टेढ़ी खीर है। इसकी पुष्टि 1805 में उसे ट्रेफल्गार के युद्ध से हो गई। अब वह इस निष्कर्ष पर पहुँच गया कि इंग्लैण्ड को समुद्र पर परास्त नहीं किया जा सकता। इसका दूसरा साधन यही है कि उसके प्रगतिशील व्यापार को नष्ट कर उसे हार मानने को विवश किया जावे। महाद्वीपीय व्यवस्था किसी एक ही समय पर स्थापित नहीं की गई थी। यह तो एक प्रकार के व्यापारिक युद्ध की व्यवस्था थी। नेपोलियन द्वारा इसके अंतर्गत चार घोषणाएँ की गईं।

(1) **बर्लिन राजाज्ञा** :– 21 नवम्बर, 1806 में बर्लिन की प्रसिद्ध राजाज्ञा द्वारा नेपोलियन ने इस योजना की शुरुआत की। बर्लिन आदेश के द्वारा ब्रिटिश द्वीप समूह के खिलाफ नाकेबंदी की घोषणा की तथा इंग्लैण्ड और उसके सभी उपनिवेशों के साथ यूरोप का व्यापार निषिद्ध कर दिया गया। इंग्लैण्ड के जहाजों के लिए यूरोप के सभी बन्दरगाह बंद कर दिए गए। उल्लंघन करने वाले जहाजों को माल सहित जब्त कर लेने को कहा गया।

NOTES

(2) वारसा आदेश :– 25 जनवरी, 1807 को नेपोलियन ने वारसा आदेश जारी कर प्रशा तथा हैनोवर के समुद्र तटों पर भी अंग्रेजी व्यापार के विरुद्ध प्रतिबंध लगा दिया। इन आदेशों को दृढ़तापूर्वक न मानने वाले देशों को युद्ध की धमकी दी।

(3) मिलान आदेश :– 17 दिसम्बर, 1807 में नेपोलियन ने मिलान आदेश जारी किये। यह आदेश बर्लिन आदेश से ज्यादा कठोर था। इसके अनुसार कोई भी जहाज चाहे वह किसी भी देश का हो यदि वह अंग्रेजी बंदरगाह से होकर आए या अंग्रेजों को अपनी तलाशी दे दे तो उसका माल जब्त कर लिया जाएगा।

(4) 18 अक्टूबर, 1810 को फाउन्टेब्लू का आदेश :– जो सबसे कठोर था, जारी किया। इसके अनुसार यह घोषित किया गया कि जो अंग्रेजी माल जब्त किया जाएगा व खुले आम जलाया जायेगा।

(5) इंग्लैण्ड द्वारा आर्डर इन कौंसिल जारी करना :– नेपोलियन के आदेशों के प्रत्युत्तर में इंग्लैण्ड ने आर्डर इन कौंसिल जारी किया। इसके अनुसार फ्रांस, उसके उपनिवेश या उसके मित्र राष्ट्रों का कोई भी जहाज इंग्लैण्ड के प्रभाव के क्षेत्र में एक स्थान से दूसरे स्थान नहीं जा सकेगा और उसका माल जब्त कर लिया जावेगा।

महाद्वीपीय व्यवस्था का क्रियान्वयन

नेपोलियन इस व्यवस्था को केवल अपने अधीनस्थ देशों के बंदरगाहों को बंद करके ही क्रियान्वित नहीं कर सकता था। इसकी सफलता के लिए उसे समुद्र तटवर्ती देशों का समर्थन पाना परम आवश्यक था। इसके लिए नेपोलियन ने हर प्रकार के प्रयत्न किये। टिलसिट की संधि से रूस उसका समर्थक बन गया था। प्रशा व आस्ट्रिया इससे पूर्व ही परास्त हो चुके थे और उन्होंने अपने यहाँ इस व्यवस्था को क्रियान्वित करने की अनुमति दे दी थी। डेनमार्क ने भी ऐसा ही किया था, परन्तु स्वीडन ने इसके विरुद्ध इंग्लैण्ड का साथ दिया। इस पर नेपोलियन ने रूस के जार से कहा कि वह स्वीडन के अधीनस्थ देश फिनलैण्ड पर धावा बोल दे और उसे अपने अधीन कर ले। इससे उसके भी बंदरगाह इंग्लैण्ड के प्रभाव से मुक्त हो जावें। हॉलैण्ड में उसके भाई लुई का ही प्रभुत्व था, परन्तु उसने इस व्यवस्था को अस्वीकार कर दिया क्योंकि इस व्यवस्था पर आचरण करने से हॉलैण्ड का सारा व्यापार नष्ट हो जाता। इसके परिणामस्वरूप लुई को हॉलैण्ड के राज्य से हाथ धोना पड़ा और हॉलैण्ड को फ्रांस में मिला लिया गया।

इसी प्रकार नेपोलियन ने लुबेक पर्यन्त जर्मनी के उत्तरी तट को भी जिसमें ब्रेमेन तथा हैम्बर्ग के महत्वपूर्ण बंदरगाह तथा केन्द्रीय जर्मनी की ओर बहने वाली नदियों के मुहाने थे, फ्रांस में मिला लिए। पोप अब तक तटस्थता की नीति पर आचरण कर रहा था। इंग्लैण्ड व फ्रांस दोनों को ही पोप की तटस्थता नीति पसन्द न थी। अतः वे उसे अपने–अपने पक्ष में मिलाने का प्रयास करने लगे, परन्तु पोप तटस्थ ही बना रहा। इसके परिणामस्वरूप उसे नेपोलियन का कोपभाजन बनना पड़ा। इसके प्रतिकार स्वरूप नेपोलियन ने पोप के कुछ प्रदेश अपने अधीनस्थ कर लिए। इस पर पोप बिगड़ गया और उसने नेपोलियन को ईसाई समाज से बाहर कर दिया। इसके अलावा उसने ईसाइयों को नेपोलियन के विरुद्ध धर्म–युद्ध करने को प्रोत्साहित किया। इसके बदले में पोप को बंदी होना पड़ा। पोप कई वर्षों तक नेपोलियन का बंदी रहा और इसके कई बुरे परिणाम भी हुए। इसके उपरांत उसका ध्यान पुर्तगाल पर गया। वह नेपोलियन का सहयोगी नहीं था। इसके इंग्लैण्ड के साथ घनिष्ठ संबंध थे। अतः उसने महाद्वीपीय व्यवस्था को मानने से इंकार कर दिया। इस पर नेपोलियन ने स्पेन की सहायता से पुर्तगाल पर आक्रमण कर दिया। वहाँ का राजा परास्त हो गया और ब्राजील चला गया। इस प्रकार पुर्तगाल भी उसके प्रभाव में आ गया। पुर्तगाल के विभाजन ने स्पेन व फ्रांस के मध्य वैमनस्य उत्पन्न कर दिया और नेपोलियन की साम्राज्यवादी क्षुधा और भी प्रखर हो जाने के कारण वह स्पेन को भी अधिकृत करने को तत्पर हो रहा था। इसका फल यह हुआ कि स्पेन उसके प्रभाव में अवश्य आ गया

और वहाँ का शासक उसका भाई जोजफ बन गया, परन्तु स्पेनवासी नेपोलियन के कट्टर विरोधी हो गये। अतः स्पष्ट है कि इस व्यवस्था को क्रियान्वित करने के लिए नेपोलियन को कितने ही युद्ध करने पड़े और फिर भी यह व्यवस्था अपने उद्देश्य में पूर्ण सफल नहीं रही।

महाद्वीपीय व्यवस्था की असफलता के कारण

महाद्वीपीय व्यवस्था की असफलता के कारण इस प्रकार बताये जा सकते हैं:—

(1) फ्रांस की जल सेना का शक्तिशाली न होना :– इसका परिणाम यह हुआ कि फ्रांस के जहाज सब बंदरगाहों पर कड़ी निगाह नहीं रख सके और माल चोरी से आता–जाता रहा।

(2) मित्र देशों का पूर्ण सहयोग न मिलना :– फ्रांस व उसके सहयोगी देशों में महाद्वीप व्यवस्था को क्रियान्वित करने के विषय में भारी मतभेद उत्पन्न हो गये। वे नेपोलियन की नाकेबंदी की नीति से सहमत नहीं थे। यहाँ तक कि उसके भाई लुई ने ही इस व्यवस्था को मानने से इंकार किया और हॉलैण्ड का राज्य छोड़ दिया।

(3) व्यवस्था का व्यावहारिक न होना :– यूरोप जैसे विशाल महाद्वीप में इस व्यवस्था को सख्ती से क्रियान्वित करना एक अत्यन्त कठिन कार्य था। जब इंग्लैण्ड से सामान आना बंद हो गया तो यूरोप के बाजार में वस्तुएँ महँगी हो गईं। इससे यूरोपवासी परेशान हो गये और वे महाद्वीप व्यवस्था का घोर विरोध करने लगे।

उपर्युक्त तथ्य इस बात के परिचायक हैं कि नेपोलियन इस व्यवस्था से अपने उद्देश्य में सफल नहीं हुआ। इसके विपरीत यही व्यवस्था उसके पतन का एक प्रमुख कारण बन गई। साथ में यह भी स्वीकार करना चाहिए कि इस व्यवस्था से फ्रांस का औद्योगिक विकास हुआ। फ्रांस ने उत्पादन बढ़ाकर यूरोप के देशों की माँग को पूरा करने का प्रयास किया। उत्पादन बढ़ाने के उद्देश्य से फ्रांस के वैज्ञानिकों ने कई वैज्ञानिक अनुसंधान किये और वे सफल रहे। वस्त्र–उद्योग में यूरोप इंग्लैण्ड के प्रभुत्व से बहुत कुछ मुक्त हो गया। इस प्रकार हम देखते हैं कि यह व्यवस्था फ्रांस के लिए हितकर एवं अहितकर दोनों सिद्ध हुई।

बोध प्रश्न

1. नेपोलियन के आस्ट्रिया पतन और युद्ध का वर्णन कीजिए?

   ....

   ....

   ....

2. मास्को अभियान का वर्णन कीजिए?

   ....

   ....

   ....

7.8 नेपोलियन का पतन (DOWNFALL OF NAPOLEAN)

नेपोलियन के पतन के प्रमुख कारण

(1) महत्वाकांक्षी होना :– रोजवरी की धारणा है कि उसने अपनी प्रतिभाओं को इतना असाधारण समझा कि उसके सामने अन्य प्रतिनिधि कुछ महत्व नहीं रखते थे। उसने 40 से

भी अधिक युद्ध किये और उनमें उसने असाधारण सैनिक योग्यता का प्रदर्शन किया। विजय की अभिलाषा उसमें इतनी थी कि उसकी कभी तुष्टि ही नहीं होती थी। परिणामतः वह निरन्तर विजयी होता गया, परन्तु साथ में यह देखने का प्रयास ही नहीं किया कि मैं जितने देश विजित कर रहा हूँ उतने ही मैं अपनें शत्रु भी उत्पन्न कर रहा हूँ।

NOTES

(2) नेपोलियन के साम्राज्य का शक्ति पर अवलम्बित होना :– निःसंदेह नेपोलियन ने यूरोप में एक विशाल साम्राज्य स्थापित किया, परन्तु उसका आधार उसकी एक मात्र शक्ति थी। शक्ति द्वारा प्राप्त वस्तु शक्ति के सहारे ही कायम रखी जा सकती थी। जब तक नेपोलियन में ताकत रही उसका साम्राज्य बढ़ता गया, परन्तु रूस के अभियान से उसकी शक्ति का ह्रास होना आरंभ हो गया और तभी से उसके साम्राज्य के विनाश के भी प्रबल शत्रु हो गये। उसकी सैनिक शक्ति ज्यों–ज्यों क्षीण होने लगी त्यों–त्यों उसका विशाल साम्राज्य विनाश के गर्त में निपातित होता ही चला गया। 1814 में ऐसी परिस्थिति आ गई कि उसके प्रमुख सहायक तेलेरों ने ही उसे गद्दी से उतारने का प्रस्ताव रखा। यही बात वाटरलू के युद्ध के बाद (1815) हुई। जब उसने वाटरलू से पेरिस भागकर अपने राजतंत्र को कायम रखने का प्रयास किया तो फुशे ने उसका विरोध किया। उनकी यह हिम्मत तभी तो हुई जबकि उन्होंने देख लिया कि अब यह शेर शक्तिहीन हो गया, हमें किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँचा सकता। यदि शक्ति के साथ–साथ नेपोलियन प्रजा में प्रेम व आस्था भी उत्पन्न करता तो सम्भव है कि उसका निर्मित साम्राज्य टिक सकता था।

(3) नेपोलियन की चारित्रिक दुर्बलताएँ :– यह सत्य है कि नेपोलियन में अदम्य उत्साह था। वह एक प्रतिभाशाली व्यक्ति व कूटनीतिज्ञ था किन्तु इनके साथ ही उसमें कुछ कमियाँ भी थीं। उसे क्रोध बहुत आता था, और जल्दी आता था। उसकी दृष्टि में घृणा उसका धर्म, प्रतिशोध उसका कर्तव्य तथा क्षमा–दान कलंक था। इसी कारण उसका व्यवहार विजित देशों के प्रति कभी अच्छा नहीं रहा। इस कारण वे उसके शत्रु हो गए। इनके अलावा वह जिद्दी था। प्रोफेसर हालैण्ड का कहना है कि नेपोलियन का स्वभाव जिद्दी बन गया था जो उसके पतन का खास कारण बना। वह समझता था कि मैं जो सोचता हूँ ठीक है। मेरे निर्णय सदैव ठीक रहते हैं अपने संबंधियों के प्रति अतिमोह होना भी उसके पतन का एक कारण था। उसने अपने सब भाइयों को राजा बना दिया। इससे वह बदनाम हो गया। यदि जोजफ को स्पेन का राजा नहीं बनाता तो प्रायद्वीप युद्ध क्यों होते और उसका पतन क्यों होता। इनके अलावा वह विलासी भी था। उसमें यह अवगुण उसके दूसरे विवाह के उपरांत अधिक प्रबल हो गया। आस्ट्रिया की राजकुमारी से विवाह कर वह प्रशासनिक कार्यों के प्रति दिन पर दिन उदासीन रहने लगा।

(4) नेपोलियन का कल्पनाशील होना :– नेपोलियन ने रूस अभियान में कल्पना का सर्वाधिक सहारा लिया। वह रूस में आगे बढ़ता गया और सोचता गया कि रूस की सेनाएँ अवश्य लड़ने आएँगी। इसके विपरीत रूस की सेनाएँ पीछे हटती गईं और यहाँ तक कि जार ने नेपोलियन को मास्को तक मार्ग खुला छोड़ दिया। वहाँ भी वह कल्पना ही करता रहा। चार दिन तक रूस अग्नि में जलता रहा तब भी उसने रूस से लौटने का इरादा नहीं किया और जब लौटा तो सर्दी में जबकि उसके लाखों सैनिक सर्दी व अन्य कठिनाइयों से मारे गए। स्पेन में भी उसने कल्पना का सहारा लिया। जब वह स्वयं शांति स्थापित कर व वहाँ के लोगों को भयभीत बनाकर पेरिस लौटा तो उसकी कल्पना थी कि स्पेन अब पूर्णतः उसके अधिकार में आ गया है और जबकि यही स्पेन आगे चलकर उसके पतन का प्रमुख कारण बन गया। एल्बा से वह जब भागकर पेरिस आया तब भी वह इस कल्पना के साथ आया था कि मित्र राष्ट्रों में अब वाद–विवाद आरम्भ हो गया है और वह चलता रहेगा। उनके इस वाद–विवाद में मैं पुनः सम्राट बन जाऊँगा। उसने इसके साथ ही यह सोचने का प्रयास नहीं किया कि जब मित्र राष्ट्रों ने मुझे परास्त करने के लिए चार–चार बार संघ बनाये और गत 15 वर्षों से यूरोप की शांति में बाधक बना हुआ हूँ तो वे मुझे किस प्रकार निश्चिन्त होकर छोड सकेंगे।

(5) समय व्यर्थ गँवाना :– उसने दो सैनिक अभियानों में रामय व्यर्थ नष्ट किया। उसमें प्रमुख रूस का अभियान था। यदि वह रूस में समय व्यर्थ नहीं खोता तो उसकी शक्ति का विनाश नहीं होता। दूसरी घटना है वाटरलू के युद्ध की। 18 जून, 1815 में युद्ध में नेपोलियन ने प्रातः काल के चार घण्टे व्यर्थ गँवा दिये। यदि यह युद्ध 11 बजे प्रारंभ न होकर प्रातः 6 बजे ही आरंभ कर देता तो उसके जीतने की बहुत कुछ संभावना थी क्योंकि ब्लूचर वहाँ सेना लेकर सायं 4 बजे पहुँचा था। उसके आने तक वेलिंगटन ने युद्ध केवल सुरक्षात्मक लड़ा था। यहाँ के चार घण्टे उसको सर्वदा के लिए ले बैठे। उसके भाग्य का सूर्य सदैव के लिए डूब गया।

(6) उसके धार्मिक सुधार व पोप के साथ उसका व्यवहार :– उसने अपने कौंसिल काल में जो धार्मिक नीति अपनाई वह वास्तव में प्रशंसनीय एवं देश के हित में थी, परन्तु इसके बाद उसने पोप से संबंध बिगाड़ लिए। राज्याभिषेक के अवसर पर उसके हाथ से ताज भी धारण नहीं किया। उसके राज्य को उसने अपने अधीन कर लिया। यहाँ तक कि रोम को भी उसने नहीं छोड़ा। उसकी इस नीति से पोप का नाराज होना स्वाभाविक था। पोप के नाराज होने से यूरोप के समस्त कैथोलिक उससे नाराज हो गये जो उसके पतन का एक बड़ा कारण बना।

(7) उसकी महाद्वीपीय व्यवस्था :– नेपोलियन का यह सोचना तो सर्वथा उचित है कि इंग्लैण्ड के घुटने टिकाने के लिए उसके व्यापार पर प्रहार करना चाहिए। उसके व्यापार के विनाश के लिए उसने इस व्यवस्था को जन्म दिया, परन्तु इस व्यवस्था के लागू करने से इंग्लैण्ड को उतनी आर्थिक हानि नहीं हुई, जितनी आर्थिक हानि नेपोलियन को इसे मनवाने के लिए दूसरे देशों से युद्ध करने में हुई। नेपोलियन ने इस व्यवस्था को कठोरता से यूरोप में लागू करना चाहा। इसका परिणाम यह हुआ कि उसे रूस से युद्ध करना पड़ा तथा पुर्तगाल के राजवंश को पदच्युत करना पड़ा। इन दोनों देशों से युद्ध करना ही उसे घातक सिद्ध हुआ। रूस के दूसरे युद्ध ने उसकी सारी शक्ति को मिट्टी में मिला दिया तथा पुर्तगाल ने प्रायद्वीप युद्धों को जन्म दिया। इन युद्धों से इंग्लैण्ड की सेना पुर्तगाल व स्पेन में उतर आई और इंग्लैण्ड की सेना ने फ्रांस की सेना को स्पेन से खदेड़ दिया। प्रशा भी चौथे संघ में इसीलिये मिला था क्योंकि वहाँ के लोग यूरोपीय व्यवस्था को पसन्द नहीं करते थे, इसीलिए उन लोगों ने अपने सम्राट को नेपोलियन के विरुद्ध युद्ध छेड़ने के लिए बाध्य किया।

(8) नेपोलियन का अधिनायकवाद :– वह ज्यों–ज्यों उत्कर्ष को प्राप्त होता गया उसमें निरंकुशता घर करती गई और इस निरंकुशता का अंतिम सोपान होता है **"अधिनायकवाद"**। निरंकुशता से भय उत्पन्न किया जा सकता है, भक्ति व निष्ठा नहीं।

(9) राष्ट्रीय भावना का प्रसार :– नेपोलियन के विजित देशों में जो राष्ट्रीयता का प्रसार हुआ वह भी उसके पतन का एक प्रमुख कारण था। ज्यों–ज्यों वह अपने साम्राज्य का विस्तार करता गया, फ्रांस की राज्य–क्रांति के सिद्धान्त (समानता, स्वतंत्रता व बंधुत्व की भावना) उन देशों में प्रसारित होते गये। इसका परिणाम यह निकला कि उन देशों में राष्ट्रीय भावना ज्यों–ज्यों प्रबल होती गई वहाँ के लोगों के दिलों में नेपोलियन के प्रशासन के विरुद्ध घृणा फैलती गई। इसके प्रतिकार में नेपोलियन ने जनसाधारण में बलवती हुई राष्ट्रीय भावना को कुचलने का प्रयास किया।

अपनी प्रगति की जाँच करें
Test your Progress

(10) नेपोलियन की युद्ध–कला :– नेपोलियन एक सफल सेनानायक ही नहीं था वरन् वह युद्ध कला में दक्ष भी था। उसने शत्रुओं को परास्त करने में युद्ध के नवीन साधनों का प्रयोग किया। जब यूरोप के देश लगातार नेपोलियन से परास्त होने लगे तो उन्होंने नेपोलियन के द्वारा प्रयुक्त किए जाने वाले ही युद्ध के साधनों व तरीकों को काम में लेना आरम्भ कर दिया। इसका फल यह निकला कि फ्रांस के अलावा अन्य देशों ने भी अपनी सैनिक शक्ति को सुधार लिया और नेपोलियन का सामना करने में समर्थ हो गये। इंग्लैण्ड के सेनानायक वेलिंगटन ने नेपोलियन की युद्ध चालों का प्रयोग उस पर ही वाटरलू के युद्ध में किया और उसे सदैव के लिए परास्त कर दिया।

NOTES

(12) समुद्र पर इंग्लैण्ड का प्रभुत्व – इंग्लैण्ड की प्रबल सामुद्रिक शक्ति नेपोलियन के पतन का प्रमुख कारण बनी। यदि फ्रांस व इंग्लैण्ड के बीच इंग्लिश चैनल नहीं होती तो नेपोलियन अन्य देशों की भाँति इंग्लैण्ड पर भी आक्रमण कर देता और अपनी विशाल थल सेना के सहारे उसे परास्त कर देता। इंग्लैण्ड की थल सेना फ्रांस की थल सेना से निर्बल थी, परन्तु उसकी नौ–सेना फ्रांस से कहीं अधिक प्रबल थी। इसी कारण फ्रांस इंग्लैण्ड को समुद्र पर कहीं भी परास्त नहीं कर सका। हॉलैण्ड उसके विरुद्ध संघ बनाता रहा और अंत में इंग्लैण्ड ने ही नेपोलियन के भाग्य के सूर्य को सदैव के लिए पश्चिम दिशा में लुप्त कर दिया। इसके अलावा फ्रांस की महाद्वीपीय व्यवस्था से नेपोलियन का पतन समीप आ गया था।

7.9 सारांश

आतंक के राज्य के समय नेपोलियन के विद्रोहों को शांत किया। मेरिल की उग्र भीड़ को दबाने में उसे सफलता मिली इस सफलता से उसकी ख्याति बढ़ गई और उसे गृह सेना का सेनापति नियुक्त कर दिया गया।

7.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

दीर्घोत्तरीय प्रश्न

(1) नेपोलियन का उदय किन परिस्थितियों में हुआ? वर्णन कीजिये।

(2) 'संचालक मण्डल' (कान्स्युलेट) के गठन एवं कार्यों का वर्णन कीजिये।

(3) प्रथम कॉन्सल के रूप में नेपोलियन के सुधारों का वर्णन कीजिये।

लघु उत्तरीय प्रश्न

(1) नेपोलियन के प्रसिद्ध युद्धों का वर्णन कीजिए।

(2) नेपालियन प्रथम की महाद्वीपीय व्यवस्था का विवेचन कीजिये।

(3) नेपोलियन के पतन के कारणों का विवेचन कीजिये।

विकल्प

1. प्रेस वर्ग की संधि कब हुई–

(अ) 1820 (ब) 1825 (स) 1805 (द) 1835

उत्तर 1. (स)

7.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

विश्व इतिहास (18वीं, 19वीं सदी – डॉ. संजीव जैन, कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल)

●●●

अध्याय-8 वियेना कांग्रेस, मेटरनिख युग और यूरोपीय संहति

(CONGRESS OF VIENNA, AGE OF METERNICH & THE CONCERT OF EUROPE) (1814 - 1848)

इकाई की रूपरेखा (इकाई–4)

8.0 उद्देश्य

8.1 परिचय

8.2 वियेना कांग्रेस

8.3 कांग्रेस की कार्यप्रणाली

8.4 प्रमुख समस्याएँ

8.5 वियेना कांग्रेस के प्रमुख फैसले

8.6 मेटरनिख का युग

8.7 मेटरनिख की गृह नीति

8.8 मेटरनिख की विदेश नीति

8.9 यूरोपीय संहति

8.10 पवित्र मैत्री

8.11 चतुर्राष्ट्र संधि

8.12 यूरोपीय संहति

8.13 एक्स–ला–शैपल

8.14 ट्रोपो सम्मेलन

8.15 लाइबेख सम्मेलन

8.16 यूरोपीय संहति की असफलता के कारण

8.17 मेटरनिख का पतन

8.18 सारांश

8.19 अभ्यास प्रश्न

8.20 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

8.0 उद्देश्य

इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे कि–

1. वियेना कांग्रेस का इतिहास जान पायेंगे।
2. मेटरनिख युग का अध्ययन कर पायेंगे।

3. यूरोपीय संहति का वर्णन कर सकेंगे।
4. तात्कालीन ऐतिहासिक घटना का वर्णन कर सकेंगे।

8.1 परिचय

NOTES

यूरोप में नेपोलियन की विजयों के बाद, अन्य यूरोपीय देशों ने संयुक्त रूप से **'राष्ट्रों के युद्ध'** में नेपोलियन को पराजित किया। 30 मई, 1814 को विजित राष्ट्रों ने फ्रांस के प्रतिनिधियों के साथ पेरिस की संधि पर हस्ताक्षर किये। इस संधि के अनुसार फ्रांस की सीमायें वही निर्धारित की गई जो 1792 में थीं, अर्थात् नेपोलियन को विजित बेल्जियम, इटली, जर्मनी, हॉलैण्ड आदि प्रदेशों पर से अपना अधिकार छोड़ना पड़ा। 1792 में जो उपनिवेश उसके पास थे वे उसे लौटा दिए गए। नेपोलियन के भग्न साम्राज्य से नीदरलैण्ड के नये राज्य की सृष्टि की गई। इसका निर्माण हॉलैण्ड और बेल्जियम को मिलाकर किया गया था। पेरिस की संधि में मोटी–मोटी बातों का निर्णय हो गया था, परन्तु यूरोप के समक्ष बहुत सी समस्यायें थीं जिन्हें सुलझाना आवश्यक था। इन सबको सुलझाने के लिए तथा यूरोप की पुनर्व्यवस्था करने के लिए वियेना में एक सम्मेलन बुलाये जाने का निर्णय किया गया। वियेना को सम्मेलन का केन्द्र इसलिए बनाया गया क्योंकि वह यूरोप के मध्य में स्थित था तथा आस्ट्रिया ने नेपोलियन के विरुद्ध बढ़–चढ़कर युद्ध में भाग लिया था।

8.2 वियेना कांग्रेस (CONGRESS OF VIENNA)

वियेना कांग्रेस (1814–1815) में भाग लेने वाले सदस्य

1814 में वियेना में कांग्रेस का अधिवेशन प्रारंभ हुआ। इस कांग्रेस में भाग लेने वाले सदस्य देश थे– इंग्लैण्ड, आस्ट्रिया, रूस एवं प्रशा – ये चार प्रमुख शक्तियाँ थीं. इनके अतिरिक्त स्पेन, पुर्तगाल और स्वीडन, डेनमार्क, बुर्टमबर्ग, बवेरिया इत्यादि टर्की को छोड़कर यूरोप के लगभग सभी देशों ने इसमें भाग लिया।

इसके सदस्य नेताओं में आस्ट्रिया के प्रधानमंत्री मेटरनिख को इसका अध्यक्ष बनाया गया तथा उसका सहयोगी गेंज सचिव बनाया गया। इसमें आस्ट्रिया, जो मेजबान था, का प्रतिनिधित्व शासन फ्रांसिस प्रथम तथा चांसलर मेटरनिख ने किया। इंग्लैण्ड की ओर से विदेश सचिव लार्ड कैसलर ने तथा रूस का प्रतिनिधित्व जार अलेक्जेंडर प्रथम एवं विदेश मंत्री और सलाहकार नैसलरोड तथा कैपोडिस्ट्रियाल ने किया। प्रशा की ओर से चांसलर हार्डनबर्ग और हमबोल्ट इस कांग्रेस में शामिल हुए। फ्रांस के विदेश मंत्री टेलीरोड़ ने सम्मेलन में भाग लिया।

प्रोफेसर देवेन्द्र सिंह चौहान ने लिखा है– "सदस्यों की संख्या, उनके विचारों की विषमता तथा विचारणीय समस्याओं की गंभीरता की दृष्टि से, यह कांग्रेस यूरोप के इतिहास का सबसे अधिक महत्वपूर्ण अधिवेशन था। कहा जाता है कि महाद्वीप में इसके पहले कभी भी इतने शक्तिशाली शासक एवं सुप्रसिद्ध कूटनीतिज्ञ सामूहिक महत्व के विषयों पर विचार करने के लिए एकत्र नहीं हुए थे।"

8.3 कांग्रेस की कार्यप्रणाली

वियेना सम्मेलन की प्रमुख निर्णायक शक्तियाँ चार बड़े राज्य थे–ब्रिटेन, आस्ट्रिया, प्रशा और रूस, बाद में फ्रांस भी इनमें शामिल हो गया था। इन चार प्रमुख शक्तियों ने आपस में गुप्त फैसला कर लिया था कि पहले आपस में निर्णय कर लेंगे फिर सम्मेलन के समक्ष प्रस्ताव रखा जाएगा। ये चार राज्य अपनी सुविधा और स्वार्थ के लिए सभी फैसले कर लेते थे। छोटे और कमजोर राज्यों की किसी को परवाह नहीं थी।

कांग्रेस की कोई निश्चित कार्यप्रणाली नहीं थी। कोई प्रस्ताव पेश नहीं होता था। फिर भी सम्मेलन का कार्य सुचारु रूप से चलाने के लिए छोटी–छोटी समितियों का निर्माण किया गया था। जैसे इटली विषय समिति, स्विस संबंधी समिति, दास व्यापार संबंधी समिति इत्यादि। इतिहासकारों ने व्यंग्य के तौर पर कहा है कि वियेना सम्मेलन औपचारिक रूप से केवल एक ही बार मिला था, जबकि निर्णयों के लेखों पर सदस्यों के अंतिम हस्ताक्षरों की आवश्यकता थी। फ्रांस के प्रतिनिधि तौलीशां ने छोटे राज्यों की ओर से चार बड़े राज्यों के निर्णय करने के अधिकार को चुनौती दी और बड़े राज्यों को समिति बनाने के लिए सहमत होना पड़ा था। आठ बड़े राज्यों की समिति तथा उपसमितियों के बन जाने के बाद भी पाँच बड़े राज्यों का प्राधान्य बना रहा। इन बड़े राज्यों में आपस में भी पोलैण्ड एवं सेक्सनी की समस्या के सम्बन्ध में ऐसे तीव्र मतभेद हो गए जिससे कांग्रेस के भंग होने की आशंका उत्पन्न हो गई थी। 9 जून, 1815 को कांग्रेस के अन्तिम निर्णय पर सात बड़े राज्यों के हस्ताक्षर हो गए, किन्तु फ्रांस के विषय में मतभेदों के कारण 20 नवम्बर, 1815 को **'पेरिस की द्वितीय संधि'** पर हस्ताक्षर हो सके।

8.4 प्रमुख समस्याएँ

(1) यूरोप के राज्यों का पुनर्निर्माण एवं पुनर्गठन पर विचार करना था। इसके अन्तर्गत बेल्जियम, हॉलैण्ड, रहाइन का राज्य संघ, इटली के विविध राज्य, वारसा का राज्य और स्विट्जरलैण्ड की सीमाओं को निश्चित किया जाना था। यह भी निर्णय होना था कि इन राज्यों को पृथक राज्य के रूप रखा जाए या नहीं।

(2) फ्रांस के सम्बन्ध में ऐसा निर्णय करना था कि जिससे वह पुनः यूरोप की शान्ति भंग न कर सके।

(3) सम्मेलन को विजयी राज्यों की आकांक्षाओं की पूर्ति करना थी।

(4) डेनमार्क को मित्र राज्यों के विरोध करने का दण्ड देना था और स्वीडन को उसकी सहायता का पुरस्कार भी देना था।

(5) यूरोप में भविष्य में युद्ध न हो इसकी भी व्यवस्था करनी थी।

कांग्रेस के निर्णय करने के सिद्धांत

वियेना कांग्रेस ने यूरोपीय व्यवस्था को पुनर्निर्मित करने के लिए तीन सिद्धांतों को आधार बनाया। ये तीन सिद्धांत इस प्रकार थे –

(1) वैधता का सिद्धान्त,

(2) शक्ति संतुलन का सिद्धान्त,

(3) विजयी राष्ट्रों की क्षतिपूर्ति का सिद्धांत।

प्रथम सिद्धांत का अर्थ था कि नेपोलियन ने शक्ति के आधार पर जिन राजाओं को पदच्युत करके नए शासकों को नियुक्त किया था, उन पुराने शासकों को न्याय के आधार पर उनका राज्य एवं अधिकार वापस दिला दिए गए। इस सिद्धांत के आधार पर फ्रांस के शासक लुई अठारहवें को मान्यता दिलाई गई। इसके अतिरिक्त स्पेन, सिसली एवं नेपिल्स में पूर्ववंशीय शासकों को पुनः प्रतिष्ठित किया गया। दूसरे सिद्धान्त का अर्थ था कि नवीन प्रादेशिक राज्यों की व्यवस्था इस तरह से की जाए कि कभी कोई राज्य इतना शक्तिशाली न हो सके जो दूसरों के लिए खतरा बन जाए। इसी सिद्धान्त के आधार पर फ्रांस के आस–पास बेल्जियम, हॉलैण्ड, प्रशा और सार्डीनिया के राज्यों का निर्माण किया गया। जर्मन राज्य संघ का पुनर्गठन इस तरह से किया गया कि प्रशा अधिक शक्तिशाली न बन सके और आस्ट्रिया का भी प्रभाव कायम रहे।

विजयी राष्ट्रों की क्षतिपूर्ति के सिद्धान्त का अर्थ था कि जिन राज्यों ने नेपोलियन के विरुद्ध मित्र राष्ट्रों का सहयोग किया था, उनको तथा मित्र राष्ट्रों को युद्ध में हुये नुकसान की क्षतिपूर्ति की जाए तथा सहयोग न देने वाले राज्यों को दण्ड दिया जाए। इस सिद्धान्त के आधार पर नेपोलियन के विजित साम्राज्य को मित्र राष्ट्रों ने बाँट लिया।

NOTES

8.5 वियेना कांग्रेस के प्रमुख फैसले

वियेना कांग्रेस ने उपर्युक्त सिद्धान्तों के आधार पर निम्नलिखित व्यवस्था द्वारा यूरोप को पुनर्निर्मित किया।

(1) फ्रांस के संबंध में निर्णय :– फ्रांस को पुनः शक्तिशाली न होने देने के सिद्धांत के आधार पर फ्रांस के सम्बन्ध में निम्नलिखित निर्णय लिए गए –

(i) फ्रांस की प्राकृतिक सीमायें 1790 के आधार पर नियत की गईं। इस तरह फ्रांस की सीमाओं को और अधिक संकुचित कर दिया गया।

(ii) युद्धों के हर्जाने के रूप में 70 करोड़ फ्रेंक (700 मिलियन फ्रेंक) देने के लिए कहा गया।

(iii) हर्जाने का जब तक भुगतान न हो तब तक मित्र राष्ट्रों के 1,50,000 सैनिक उसे अपने यहाँ रखने थे और उनका खर्च भी वहन करना था।

(iv) फ्रांस में पुराने बूर्बों वंश को पुनः स्थापित किया गया इसमें वैधता के सिद्धांत को आधार बनाया गया।

क्षेत्रीय पुनर्वितरण : यूरोप के राजनीतिक मानचित्र की पुनर्व्यवस्था

वियेना कांग्रेस का प्रमुख कार्य था यूरोप में शान्ति व्यवस्था बनाये रखना। इसके लिए यूरोप का क्षेत्रीय पुनर्वितरण इस तरह किया जाना था जिससे कोई राज्य अधिक शक्तिशाली न हो सके। यूरोप में शक्ति संतुलन बनाये रखने के लिए आवश्यक था कि नेपोलियन द्वारा विजित क्षेत्रों का वितरण समझदारीपूर्वक किया जाए। यही मुख्य समस्या थी जिसके कारण कई बार वियेना कांग्रेस के चतुर्गुट संधि का अस्तित्व बिखरता नजर आने लगा।

वियेना कांग्रेस द्वारा की गई क्षेत्रीय व्यवस्था

(1) फ्रांस के चारों ओर स्वतंत्र राज्यों का निर्माण – वियेना कांग्रेस ने फ्रांस के चारों स्वतंत्र और शक्तिशाली राज्यों का निर्माण किया जिससे वह भविष्य में अधिक शक्तिशाली होकर यूरोप के लिए खतरा न बन जाए। बेल्जियम और हॉलेण्ड को मिलाकर नीदरलेंड के नए प्रदेश की स्थापना की गई जिससे फ्रांस रहाइन प्रदेश और इटली में साम्राज्य विस्तार न कर सके।

(2) आस्ट्रिया को नए राज्यों का पुरस्कार – आस्ट्रिया ने नेपोलियन के विरुद्ध युद्ध में सर्वाधिक सहयोग दिया था इसलिए उसे सर्वाधिक इनाम दिया जाना था। आस्ट्रिया को निम्नलिखित क्षेत्रों का लाभ मिला –

(i) इटली से वेनेशिया, लोम्बार्डी, इलीरिया का प्रदेश।

(ii) बवेरिया से टाइराल और साल्जबर्ग मिला।

(iii) पोलैण्ड में पूर्वी गेलेसिया।

(iv) डालमेशिया तथा केट्टोरो के बन्दरगाह इटली से मिले।

(v) जर्मन संघ के संविधान के अनुसार राष्ट्रसभा का स्थाई प्रधान आस्ट्रिया को बनाया गया।

(vi) नेपल्स और सिसली आस्ट्रिया के अंतर्गत कर दिए गए।

(3) जर्मनी और प्रशा की व्यवस्था – आस्ट्रिया और प्रशा की सहमति से जर्मनी प्रदेश में 39 छोटे राज्यों को मिलाकर एक संघ की स्थापना की गई। यह संघ आस्ट्रिया के अधीन कर दिया गया। यदि यहाँ वैधता के सिद्धान्त को अपनाया जाता तो 300 से अधिक राज्यों को अनुमति देना पड़ती। संविधान के अनुसार एक राष्ट्रीय सभा बनाई गई। प्रत्येक राज्य को आंतरिक मामलों में पूर्ण स्वतंत्रता दी गई, परन्तु राज्यों को परस्पर एवं बाहरी शक्तियों के विरुद्ध युद्ध करने का निषेध कर दिया गया।

प्रशा को अनेक नए राज्य – 38 राज्यों के अतिरिक्त अन्य राज्य दिए गए। प्रशा को रहाइन नदी का पश्चिमी प्रदेश, जो फ्रांस के अधीन था, अब प्रशिया को दे दिया गया। सेक्सनी का 40 प्रतिशत भाग प्रशा को दे दिया गया। पोलैण्ड के कई प्रदेश भी उसे प्राप्त हुए और डची ऑफ वारसा का पोसेन प्रान्त तथा डेंजिंग शहर भी मिले। स्वीडन से प्रशा को स्वीडिश पोमरेनिया एवं रूगन का द्वीप प्राप्त हुआ। इन सब भू–भागों के प्राप्त होने से प्रशा उत्तरी जर्मनी का प्रमुख राज्य बन गया।

(4) इटली की व्यवस्था – इटली के सम्बन्ध में मेटरनिख की इच्छा थी कि वह कई छोटे–छोटे राज्यों में बँट जाए। इस व्यवस्था में ऐसा ही हुआ इटली 'एक भौगोलिक नाममात्र रह गया था। इटली के विविध राज्यों को फिर से स्थापित कर दिया गया –

(i) सार्डीनिया – फ्रांस की सीमा पर सार्डीनिया का एक नया राज्य स्थापित किया गया। इसमें पीडमाउन्ट, जिनोआ एवं सेवाय को मिलाया गया था।

(ii) नेपल्स और सिसली – बूर्बो राजवंश को पुनः नेपल्स एवं सिसली की राज्यगद्दी पर स्थापित किया। फर्डीनेण्ड सप्तम को वहाँ का शासक बना दिया गया।

(iii) टस्कनी और मेडोना दोनों ही राज्य आस्ट्रिया के हेप्सबर्ग वंश के राजकुमारों को सौंप दिया।

(iv) पोप पायस सप्तम को उसका राज्य वापस दे दिया गया।

(v) नेपोलियन की पत्नी एवं आस्ट्रिया के सम्राट की पुत्री मेरिया लुईसा को पार्मा, पिआकेन्जा और गौस्टाला की डची प्रदान किये गए।

(vi) वेनिस पर आस्ट्रिया का अधिकार हो जाने से इसी का एक महत्वपूर्ण नगर– लोम्बार्डो वेनेटियन भी आस्ट्रिया के अधीन हो गया। इस तरह इटली छोटे–छोटे स्वतंत्र राज्यों में विभाजित हो गया। नेपोलियन के आक्रमणों के बाद इटली दो राज्यों इटली और नेपल्स में बँट गया था। इससे वहाँ राष्ट्रीयता की भावना विकसित होने लगी थी, परन्तु वियेना व्यवस्था से वह पुनः कई राज्यों में बँट गया इससे राष्ट्रीयता की भावना को ठेस पहुँची।

(5) स्वीडन – स्वीडन के सम्बन्ध में निम्न व्यवस्था की गई–

(i) फिनलैण्ड का प्रदेश स्वीडन से लेकर रूस को दिया गया।

(ii) पोमरेनिया का प्रदेश प्रशा को सौंप दिया गया।

(iii) नार्वे का राज्य डेनमार्क से लेकर स्वीडन को सौंप दिया।

(iv) स्वीडन को बाल्टिक क्षेत्र में कमजोर बना दिया गया।

(6) पोलैण्ड और सेक्सनी का विभाजन – वियेना कांग्रेस में सबसे जटिल समस्या थी पोलैण्ड और सेक्सनी के विभाजन की। रूस का जार अलेक्जेण्डर इस बात पर अड़ा था

NOTES

कि वह-सम्पूर्ण पोलैण्ड को अपने अधीन रखेगा। इससे रूस की पश्चिमी सीमा ओडर नदी तक पहुँच जाती। ब्रिटेन, फ्रांस और आस्ट्रिया रूस की शक्ति के पश्चिम की ओर प्रसार से सशंकित थे, अतः उसे सम्पूर्ण पोलैण्ड नहीं देना चाहते थे। अन्त में समझौता हुआ, इसके अनुसार पोलैण्ड में स्थित पोसेन के गेलीशिया के भाग को छोड़कर शेष **'डची ऑफ वारसा'** पोलैण्ड के राज्य के नाम से रूस को सौंप दिया गया।

सेक्सनी के विभाजन के प्रश्न पर भी आस्ट्रिया और प्रशा के मतभेद थे। आस्ट्रिया और प्रशा दोनों देश सेक्सनी प्रदेश पर अपना अधिकार करना चाहते थे। रूस का जार प्रशा को सम्पूर्ण सेक्सनी प्रदेश पर अधिकार के लिए उकसा रहा था। इससे आस्ट्रिया और प्रशा के बीच शत्रुता बहुत बढ़ गई थी। लार्ड कैसलर की मध्यस्थता से ही समस्या सुलझ सकी। अन्ततः इस तरह समझौता हुआ कि सेक्सनी का आधा भाग और राइन प्रदेश प्रशा को सौंप दिया और बवेरिया प्रदेश को आस्ट्रिया के अधीन एक शक्तिशाली राज्य के रूप में परिणत किया गया।

(7) ब्रिटेन – इस सम्मेलन में ब्रिटेन ने बहुत से नए उपनिवेश प्राप्त किये। इनमें माला, सेण्ट लूसिया, टोबैगा और मारीशस फ्रांस से छीनकर ब्रिटेन को दिए गए। स्पेन के अधीन त्रिनिदाद और होण्डुरस को ब्रिटेन को सौंप दिया गया। कुछ प्रदेश हॉलैण्ड से लेकर ब्रिटेन को दिये गए। ब्रिटेन ने जो प्राप्त किया वह समुद्री व्यापार की दृष्टि से महत्वपूर्ण था।

(8) वियेना कांग्रेस के अन्य महत्वपूर्ण निर्णय –

- दास प्रथा का विरोध और
- अन्तरराष्ट्रीय विधान।

उपर्युक्त प्रादेशिक व्यवस्था के साथ कुछ अन्य परिवर्तन भी किये गए इनमें प्रथम है– **दास प्रथा का विरोध।** इस सम्बन्ध में ब्रिटेन के प्रतिनिधि कैसलर ने दास व्यापार को समाप्त किये जाने का विचार प्रस्तुत किया था, परन्तु दास व्यापार के विरुद्ध एक प्रस्ताव पास हुआ जिसमें कहा गया कि यह सभ्यता और मानवीय अधिकारों के सर्वथा प्रतिकूल है। इस तरह कैसलर इस सम्बन्ध में पूर्ण सफल नहीं हुआ।

वियेना कांग्रेस ने यूरोप की समस्याओं से निपटने के लिए अन्तरराष्ट्रीय कानून (विधान) बनाने के प्रयत्न भी किये। इसमें युद्ध और शांति काल में व्यापार बड़ी नदियों के वाणिज्य नौचालन के नियम, राज्यों में परस्पर सम्बन्धों के नियम आदि का समावेश किया गया था।

वियेना कांग्रेस के कार्यों की समीक्षा

वियेना कांग्रेस जिन उद्देश्यों को लेकर प्रारंभ हुआ था उनको वह पूरा नहीं कर सका। इस सम्मेलन के छोटे–छोटे राज्यों एवं कई राज्यों की जनता के हितों को ताक पर रख दिया गया। यूरोप के तत्कालीन कूटनीतिज्ञों ने उदारवादिता, वैधता राष्ट्रवाद एवं लोकतंत्र के सिद्धान्तों की अवहेलना की। विकासशील प्रवृत्तियों का विरोध किया गया था, उनकी अपेक्षा की गई।

हेजन ने लिखा है – **"वियेना का सम्मेलन अभिजात वर्गीय लोगों का सम्मेलन था, वे लोग राष्ट्रीयता और जनतंत्र के उन आदर्शों को, जिनकी फ्रांसीसी क्रांति ने घोषणा की थी, समझने में असमर्थ थे अथवा उनसे घृणा करते थे।"**

8.6 मेटरनिख का युग (Age of Metternich)

आस्ट्रिया के प्रधानमंत्री मेटरनिख, जिसका पूरा नाम **'काउंट वलीमेंस मेटरनिख'** था, जो 1815 से 1848 तक न केवल आस्ट्रिया का वरन् सम्पूर्ण यूरोप का सबसे प्रभावशाली राजनीतिज्ञ था, इसके कारण 1815 से 1848 के काल को यूरोप में 'मेटरनिख युग' के नाम से जाना जाता है। आस्ट्रिया का सम्राट फ्रांसिस प्रथम किसी भी तरह के सुधार एवं परिवर्तन का विरोधी था।

इस काल में मेटरनिख जैसे प्रतिक्रियावादी व्यक्ति का महत्व बैठना स्वाभाविक था। इस युग में मेटरनिख की नीति तथा विचारधारा का प्रभाव यूरोप की राजनीति एवं घटनाक्रम पर बहुत अधिक रहा।

मेटरनिख का प्रारंभिक जीवन

मेटरनिख का पूरा नाम काउंट वलीमेंस मेटरनिख था। उसका जन्म 15 मई, 1773 को आस्ट्रिया के कुलीन घराने में हुआ था। उसके पिता आस्ट्रिया के सम्राट की सेवा में उच्चाधिकारी थे। 1795 में उसका विवाह आस्ट्रिया के चांसलर प्रिंस कानिज की पौत्री से हुआ। इस विवाह से उसकी सामाजिक एवं राजनीतिक प्रतिष्ठा में वृद्धि हुई। 1801 से 1806 के बीच उसे प्रशा, फ्रांस तथा रूस में राजदूत नियुक्त किया गया। 1809 में वह आस्ट्रिया का विदेश मंत्री बनाया गया। 1809 से 1813 के बीच उसने नेपोलियन से आस्ट्रिया की रक्षा की तथा आस्ट्रिया को यूरोप की राजनीति का केन्द्र बना दिया।

मेटरनिख की प्रणाली (विचारधारा)

मेटरनिख की व्यवस्था या विचारधारा की निम्न विशेषताएँ थीं–

(1) पुरातन व्यवस्था कायम रहना चाहिये।

(2) उदारवाद एवं राष्ट्रीयता को निरर्थक मानना।

(3) देश की गृहनीति एवं विदेश नीति में गहरा सम्बन्ध होना चाहिये।

(4) क्रांति एवं प्रगतिशील विचारों से देश को बचाना चाहिये।

(5) रूढ़िवाद का समर्थन।

(6) यूरोपीय संहति।

(7) पवित्र मैत्री का समर्थन।

1815 के बाद मेटरनिख की विचारधारा का मुख्य लक्ष्य था वियेना व्यवस्था की सुरक्षा करना। उसने अपनी प्रणाली में सबसे प्रथम कार्य किया कि यूरोप में उदारवादी विचारों के प्रभाव को फैलने से रोका। फ्रांसीसी क्रांति के फलस्वरूप यूरोप में दो मुख्य विचार तेजी से फैल रहे थे, ये थे उदारवाद एवं राष्ट्रीयता। मेटरनिख इन विचारों को संक्रामक बीमारी के समान समझता था। उदारवादी एवं राष्ट्रीयतावादी आन्दोलन का उद्देश्य शासकों द्वारा उदारवादी संविधान जारी करवाना था। मेटरनिख जानता था कि उसके अधीन प्रदेशों–जर्मनी और इटली में क्रांतिकारी और उदारवादी विचारधारा पनप रही थी। यूरोप के विभिन्न क्षेत्रों में कुछ बुद्धिजीवी वर्ग, मध्यमवर्ग तथा किसानों में उदारवादी विचारों का प्रचार–प्रसार कर रहे थे। ये विचार निरंकुश राजतन्त्र तथा परम्परागत रूढ़िवादी विचारों के स्थान पर वैधानिक (लोकतंत्रात्मक) राजतंत्र, समानता एवं बंधुत्व आदि विचारों को स्थापित करना चाहते थे।

जर्मन राज्यों में उदारवादी शासन के पक्ष में बुद्धिजीवियों का आंदोलन प्रारंभ हो गया था। एस.के. जार उदारवादी विदेश नीति का समर्थक था। उसका सलाहकार केपोडिस्ट्रियाज भी इसी नीति का समर्थक था। इन दोनों ने कई राज्यों जैसे – सेक्स, वीमर, बाडन और बवेरिया के शासकों से उदारवादी संविधान लागू करवाये थे। प्रशा के चांसलर ने फेडरिक विलियम तृतीय को रूस के प्रभाव से उदार संविधान जारी करवा लिया था। इटली में गुप्त संस्था कारबोनरी के प्रभाव से उदारवादी विचारधारा फैल रही थी।

मेटरनिख इन सब उदारवादी आंदोलनों को पूर्ण रूप से कुचल देना चाहता था। वह आस्ट्रिया के हैम्बर्ग साम्राज्य को सुरक्षित बनाये रखना चाहता था। साथ ही यूरोप में शांति भी बनाए रखना चाहता था। इस कारण उसने अपरिवर्तनवादी या प्रतिक्रियावादी नीति को अपनाया। उसने पामर्स्टन

को लिखा था कि– **"हम प्रतिरोधात्मक व्यवस्था इसलिए अपना रहे हैं जिससे हमें दमनकारी नीति न अपनाना पड़े हमारा निश्चित मत है कि यदि शासन को किसी भी प्रकार की माँग स्वीकार करनी पड़ी, तो वह राज्य के अस्तित्व के लिए घातक होगी।"**

NOTES

मेटरनिख प्रणाली का अर्थ था यथापूर्व स्थिति को बनाए रखना। मेटरनिख आस्ट्रिया तथा यूरोप के अन्य राज्यों में क्रांति के पूर्व की स्थिति को यथावत कायम रखना चाहता था। मेटरनिख के विचार उसके सम्राट के विचारों से बिल्कुल मिलते थे। दोनों का ही सोचना था कि **"शासन करो, किन्तु कोई परिवर्तन मत करो।"**

मेटरनिख की प्रणाली की एक विशेषता यह भी थी कि देश की आन्तरिक नीति को विदेश नीति से अलगाया नहीं जा सकता। दोनों एक दूसरे को प्रभावित करती हैं। इसका अर्थ यह था कि एक राज्य के अन्दर जो कुछ घटित होता है उसका प्रभाव दूसरे राज्यों पर भी पड़ता है। इसलिए प्रभावित राज्यों को अपने हितों की सुरक्षा के लिए राज्य में हस्तक्षेप करने का अधिकार देना चाहिये। इसी कारण उसने **'कन्सर्ट ऑफ यूरोप'** की स्थापना की तथा **'होली एलाएंस'** को समर्थन दिया।

8.7 मेटरनिख की गृहनीति

मेटरनिख आस्ट्रिया की जर्जर स्थिति को जानता था। वह यह भी जानता था कि आस्ट्रिया जैसे बहुजातीय वाले देश को कैसे बनाए रखा जा सकता है। इस सब स्थिति को देखकर उसने जो गृहनीति अपनाई उसकी निम्न विशेषताएँ थीं–

(1) राष्ट्रीयता की भावना का विरोध और दमन।

(2) उदारवाद का विरोध बनाम यथापूर्व स्थिति बनाए रखना।

(3) संरक्षात्मक शुल्क व्यवस्था।

(1) राष्ट्रीयता की भावना का विरोध :– आस्ट्रिया एक वृहत् राज्य था। इसमें आस्ट्रिया, हंगरी, बोहेमिया तथा इटली के कुछ भाग सम्मिलित थे। इस साम्राज्य में अनेक जातियाँ निवास करती थीं, इनमें आपस में कोई समानता नहीं थी। इनकी भाषा, संस्कृति और धर्म अलग–अलग थे। इन्हीं कारणों से आस्ट्रिया को विभिन्न जातियों का अजायबघर कहा जाता था। इस साम्राज्य का विकास राष्ट्रीयता के आधार पर करना सम्भव नहीं था। मेटरनिख का मानना था कि यदि राष्ट्रीयता की भावना को प्रोत्साहन दिया गया तो साम्राज्य कई टुकड़ों में बिखर जाएगा। आस्ट्रिया का शासक फ्रांसिस भी इस बात को समझता था कि साम्राज्य की जड़ें खोखली हो चुकी हैं। उसने कहा था **"मेरा साम्राज्य एक दीमक लगे हुए भवन के समान है।"** इस खोखली स्थिति में मेटरनिख जैसा प्रतिक्रियावादी कूटनीतिज्ञ सामाज्य को सुरक्षित बनाए रखने के लिए राष्ट्रीयता की भावना का विरोध करना उचित समझता था। उसने **"फूट डालो और राज करो"** की नीति का पालन किया।

(2) उदारवाद का विरोध यथापूर्व स्थिति बनाए रखना :– मेटरनिख की आन्तरिक नीति का मुख्य पहलू था साम्राज्य के अन्दर उदावादी विचारों का प्रचार न होने देना। इसके लिए उसने हर उस रास्ते को बन्द किया जिससे उदारवादी विचार देश के अन्दर आ सकते थे या फिर उस स्थिति को समाप्त किया जिसके कारण इस तरह के प्रगतिशील विचार देश के अन्दर जन्म ले सकते थे। इसने विश्वविद्यालयों, समाचार–पत्रों तथा पुस्तकों पर कठोर नियंत्रण लगाया। विश्वविद्यालय के प्राध्यापकों के व्याख्यानों को प्रतिबन्धित किया, उनके चारों तरफ गुप्तचर बैठाये। पाठ्यक्रम सरकार द्वारा निर्धारित होने लगे। विद्यार्थी संगठनों पर प्रतिबंध लगा दिया गया। विदेशों से आने वाले पत्रों–पत्रिकाओं तथा पुस्तकों, समाचार–पत्रों को सेंसर कर दिया

गया। नाट्य शालाओं पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया गया। उसने उदारवादी विचारों के फैलने के हर संभव संभावना को समाप्त करने का प्रयास किया।

(3) संरक्षात्मक शुल्क एवं कर व्यवस्था :– मेटरनिख ने विदेशों से कम से कम सम्पर्क हो इसके लिए व्यापारिक लेन–देन भी सीमित करने का प्रयास किया। उसने संरक्षात्मक शुल्क व्यवस्था अपनाकर विदेशी व्यापार को सीमित कर दिया। इसके अतिरिक्त करों का अधिकांश भाग जनता को वहन करना पड़ता था।

8.8 मेटरनिख की विदेश नीति

मेटरनिख की विदेश नीति के मूल आधार को व्यक्त करते हुए **ए.जे.पी. टेलर** ने लिखा था, **"मेटरनिख के विचार में यूरोप के लिए आस्ट्रिया आवश्यक था और आस्ट्रिया के लिए यूरोप। मेटरनिख की विदेश नीति का लक्ष्य था यूरोप।"** मेटरनिख की विदेश नीति का लक्ष्य था यूरोप में शांति व्यवस्था बनाए रखना एवं वियेना सम्मेलन के निर्णयों को सुरक्षित रखना। 1815 से 1848 तक सम्पूर्ण यूरोप में मेटरनिख की विचारधारा का प्रभाव बना रहा। उसने यह भी प्रयास किया कि यूरोप के अन्य देश उसके विचारों को अपनायें। उसने **'यूरोपीय संहति'** के माध्यम से प्रशा, रूस, फ्रांस तथा जर्मनी के अन्य राज्यों को अपनी नीति को मानने के लिए समझाया, जिसका उद्देश्य यूरोप में क्रांतिकारी विचारधारा को रोकना था।

(1) जर्मनी के प्रति मेटरनिख की नीति :– विएना कांग्रेस ने जर्मनी को 39 राज्यों के एक संघ में परिणत कर दिया था। आस्ट्रिया को इनका प्रधान नियुक्त किया गया था। शेष राज्य प्रशा के अधीन थे। फ्रांसीसी क्रांति के विचार 1815 के बाद जर्मनी में तेजी से फैलने लगे थे। जर्मनी के दार्शनिकों तथा इतिहासकारों ने जर्मन जाति के गौरव को जनता के समक्ष रखा। इससे वहाँ राष्ट्रवादी और प्रगतिशील विचारों का प्रभाव बढ़ने लगा था। मेटरनिख इस विचारधारा को जड़ से खत्म कर देना चाहता था। उसने आस्ट्रिया की गृहनीति को जर्मनी में भी लागू किया। 1819 में कात्सेबु की हत्या हो गई। इस घटना से मेटरनिख ने फायदा उठाया और जर्मन संघ के प्रमुख राज्यों के प्रतिनिधियों से **'कार्ल्सवाद के आदेशों'** की मंजूरी ले ली।

कार्ल्सवाद के आदेशों के द्वारा मेटरनिख के दमन की प्रक्रिया को तेज कर दिया गया विश्वविद्यालयों पर सरकार का कठोर नियंत्रण लगाया गया। छात्रों की सभायें तथा खेल–कूद की संस्थाएँ बन्द कर दी गई। समाचार–पत्रों की स्वतंत्रता समाप्त कर दी तथा राजनैतिक सभाओं पर भी प्रतिबंध लगा दिया गया। मेटरनिख ने रूस की सहायता से जर्मनी में अनुदार नीति को पूरी तरह लागू किया।

(2) इटली में मेटरनिख की नीति :– 1815 के बाद इटली भौगोलिक अभिव्यक्ति मात्र रह गया था। आस्ट्रिया ने उसे छोटे–छोटे राज्यों में विभाजित करवा दिया था। लोम्बार्डी और वेनेशिया पर वह प्रत्यक्ष शासन करता था। इसी बीच इटली में राष्ट्रीयता की भावना बढ़ने लगी थी। मेटरनिख ने अपने शासित तथा प्रभावित क्षेत्रों में राष्ट्रीयता की भावना को कुचलने का प्रयास किया। जनता को करों के भारी बोझ तले लाद दिया गया। उनकी अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता छीन ली गई। वहाँ के कई छोटे राज्यों में निरंकुश और अनुदारवादी शासन व्यवस्था को चलाए रखा। नेपल्स के विद्रोह को दबाकर वहाँ पुनः निरंकुश शासन स्थापित किया गया। अन्य विद्रोहों को भी मेटरनिख ने दबा दिया।

मेटरनिख का पतन

आस्ट्रिया की जनता मेटरनिख की विचारधारा से परेशान हो चुकी थी। आस्ट्रिया की प्रगति थम गई थी। नये विचारों के अभाव में वहाँ गंदगी फैलने लगी थी। लोग परिवर्तन चाहते थे। ऐसे समय में 1848 में फ्रांस में क्रांति हुई इससे सम्पूर्ण यूरोप में विद्रोह भड़क उठे। आस्ट्रिया

भी इससे न बच सका। 13 मार्च को विद्यार्थियों एवं मजूदरों के विशाल जुलूस ने राजभवन एवं मेटरनिख के भवन को घेर लिया और उससे त्याग पत्र की माँग की। मेटरनिख का पतन यूरोप के लिए स्वतंत्रता एवं उदारवादी विचारधारा की विजय थी।

बोध प्रश्न

NOTES

1. मेटरनिख युग का वर्णन कीजिए?

....

....

....

2. मेटरनिख की गृह नीति का वर्णन कीजिए?

....

....

....

8.9 यूरोपीय संहति (CONCERT OF EUROP)

यूरोपीय संहति के निर्माण की पृष्ठभूमि

वियेना कांग्रेस की अंतिम संधि **'शामो की संधि'** के द्वारा चारों बड़े राज्यों ने यह निश्चय किया था कि वे अगले 20 वर्ष तक आपसी सहयोग बनाये रखेंगे। वियेना संधि के बाद शांति एवं व्यवस्था को बनाए रखना इन देशों के कूटनीतिज्ञों का सबसे महत्वपूर्ण लक्ष्य था। संधि द्वारा पुनर्निमित यूरोपीय प्रदेशों को बनाये रखने के लिए सभी देश– ब्रिटेन, आस्ट्रिया, रूस, प्रशा, फ्रांस, स्पेन, पुर्तगाल और स्वीडन– बाध्य थे। 9 जून, 1815 की वियेना कांग्रेस की अंतिम संधि के अनुसार विजेताओं का मुख्य कार्य था बीस वर्षों तक फ्रांस के कार्यों का निरीक्षण करना तथा समय–समय पर आपसी हितों से संबंधित समस्याओं पर बातचीत करना। इस संधि की यही शर्त **'यूरोपीय संहति'** की जन्मदाता मानी जाती है।

प्रो. देवेन्द्रसिंह चौहान यूरोपीय संहति की आवश्यकता बताते हुए लिखते हैं– "यूरोप के शासकों के व्यक्तिगत स्वार्थों की दृष्टि से भी, अन्तरराष्ट्रीय सहयोग की आवश्यकता थी। क्रांति जनित राष्ट्रीयता और प्रजातंत्र के सिद्धांतों का प्रसार और प्रचार बढ़ता जा रहा था। इटली, जर्मनी, पोलैण्ड तथा बाल्कन राज्यों में उनका प्रभाव स्पष्ट हो रहा था। प्रतिक्रियावादी निरंकुश शासकों के अधिकारों एवं शक्ति को इस नवीन विचार–धाराओं के कारण भय उत्पन्न हो गया था। मेटरनिख, राष्ट्रीय तथा लोकतंत्रीय विचारों का कट्टर विरोधी था और उन्हें राजतंत्र का सबसे बड़ा शत्रु मानता था। यूरोप के अन्य शासक भी उसके विचारों से प्रभावित थे। इस कारण वे सभी अपने हितों की रक्षा के लिए मेटरनिख के समान राष्ट्रीयता और उदारवाद की भावनाओं का दमन करने के लिए परस्पर सहयोग के लिए प्रस्तुत थे।"

अन्तरराष्ट्रीय सहयोग के लिए वियेना सम्मेलन के अन्त में दो योजनायें प्रस्तुत की गई थीं जो **यूरोप की संयुक्त व्यवस्था (कन्सर्ट ऑफ यूरोप)** की जनक बनीं। ये दो योजनायें थीं–

(i) पवित्र मैत्री (Holy Alliance),

(ii) चतुर्राष्ट्र मैत्री (Quadruple Alliance)

NOTES

8.10 पवित्र मैत्री (Holy Alliance)

रूस का जार भी अन्तरराष्ट्रीय संस्था के पक्ष में था। उसने 26 सितम्बर, 1815 को पेरिस के पास परेड मैदान में रूस, आस्ट्रिया और प्रशा के सम्राटों की 'पवित्र मैत्री' की घोषणा की। इस घोषणा में उसने कहा– **"भविष्य में सभी राजा अपने को एक दूसरे का भाई मानें। वे सच्चाई व भाईचारे के बन्धन में बँध जाएँ। प्रजा को वे अपनी संतान समझें तथा उस पर वे ऐसे ही शासन करें जैसा एक पिता अपने परिवार पर करता है।"** इस पवित्र मैत्री का उद्देश्य था यूरोप में शांति बनाए रखना। यह शांति मैत्री की इस घोषणा का अर्थ था कि यूरोप के शासक अब धर्म, न्याय तथा उदारता को आधार बनाकर शासन करें। टर्की एवं पोप को छोड़कर सभी यूरोपीय देशों ने इस पर हस्ताक्षर किये। इंग्लैण्ड के प्रतिनिधि ने हस्ताक्षर न करने की विवशता जाहिर कर दी।

8.11 चतुर्राष्ट्र संधि (Quadruple Alliance)

मेटरनिख ने नवम्बर 1815 को एक प्रस्ताव रखा जिसके अनुसार चार राष्ट्रों – इंग्लैण्ड, प्रशा, रूस और आस्ट्रिया ने एक संधि पर हस्ताक्षर किये, जिसे 'चतुर्राष्ट्र संधि' कहा जाता है। इस संधि के अनुसार ये चारों देश समय–समय पर सम्मेलन करते रहेंगे जिससे वियेना की व्यवस्था सुरक्षित रह सके एवं यूरोप में शांति बनी रहे। इस संधि की 6वीं धारा के अन्तर्गत यह स्वीकार किया गया कि– **"संसार के कल्याण हेतु चारों राज्यों के बीच स्थापित घनिष्ठ सम्बन्धों को सुदृढ़ बनाने के लिए तथा समान उद्देश्यों की पूर्ति के लिए समय–समय पर शासकों अथवा उनके मंत्रियों के सम्मेलन होते रहेंगे, जिनमें वे यूरोप की शांति तथा जनता की सुख–समृद्धि के लिए विभिन्न उपायों के विषय में विचार–विमर्श करेंगे।"**

इस तरह सम्मेलनों द्वारा अन्तरराष्ट्रीय सहयोग की एक नयी व्यवस्था की गई। इसी व्यवस्था को **'यूरोपीय संहति'** के नाम से जाना जाता है। इसे **'कांग्रेस प्रणाली'** भी कहा जाता है।

8.12 यूरोपीय संहति (कन्सर्ट ऑफ यूरोप)

अन्तरराष्ट्रीय सहयोग के लिए सम्मेलनों की इस व्यवस्था के निम्नलिखित उद्देश्य थे–

(1) वियेना व्यवस्था को सुरक्षित रखना,

(2) फ्रास पर नियत्रण रखना,

(3) यूरोप में शांति बनाए रखना,

(4) यूरोप के देशों में आपसी सहयोग को बढ़ाना,

(5) समस्याओं के समाधान के लिए 'कांग्रेस प्रणाली' को अपनाना,

(6) इन सबके माध्यम से राष्ट्रीयता और प्रजातंत्र के जैसी उदार एवं प्रगतिशील विचारधाराओं पर रोक लगाना।

सम्मेलनों की श्रृंखला (कांग्रेस प्रणाली)

यूरोपीय संहति के लिए निम्नलिखत सम्मेलनों का आयोजन किया गया–

(1) एक्स–ला–शैपल (1818) (2) ट्रोपो सम्मेलन (1820)

(3) लाइबेख सम्मेलन (1821) (4) पेराना कांग्रेस (1822)

NOTES

(5) सेंट पीटर्सबर्ग (1825)

1815 से 1825 तक के दस वर्ष के समय को **'कांग्रेस युग'** के नाम से जाना जाता है। इन दस वर्षों में बड़े राज्यों ने सम्मेलनों द्वारा यूरोप में शांति बनाये रखने का अथक प्रयास किया।

8.13 एक्स–ला–शैपल (1818)

चतुर्गुट संधि ने यूरोपीय संहिता के तहत प्रथम सम्मेलन 1818 में एक्स–ला–शैपल में आयोजित किया। इसमें आस्ट्रिया का फ्रांसिस द्वितीय, इंग्लैण्ड के कैसलर, रूस के जार एलेक्जेण्डर, नेसलरोड और कैपोडिस्ट्रियाज, प्रशा की तरफ से फेडरिक विलियम और फ्रांस की ओर से रिशेल्यू ने प्रतिनिधित्व किया। इस सम्मेलन में फ्रांस के प्रश्न पर विचार होना था। इसमें फ्रांस के क्षेत्र से संयुक्त सेनाओं को हटाना, फ्रांस के ऋण का प्रश्न तथा फ्रांस सम्मेलन में प्रवेश जैसे विषयों पर विचार होना था।

इनके अतिरिक्त इस सम्मेलन के समक्ष कुछ अन्य छोटे–छोटे मामले भी प्रस्तुत किए गए–

(1) डेनमार्क ने स्वीडन के विरुद्ध मदद माँगी,

(2) हेस के इलेक्टर ने राजा की पदवी चाही,

(3) मोनेका के लोगों ने अपने शासक के विरुद्ध शिकायत की,

(4) कुछ जर्मन राजाओं ने भी अपनी समस्याएँ प्रस्तुत कीं।

इसमें फ्रांस को चतुर्राष्ट्र संधि में शामिल कर लिया गया। अब यह पंचराष्ट्र सहबंध हो गया। यूरोपीय संहति को सबसे अधिक सफलता इसी सम्मेलन में मिली, परन्तु यही उसके अन्त का प्रारंभ भी कहा गया है, क्योंकि इंग्लैण्ड तथा निरंकुश राज्यों में सैद्धांतिक मतभेद प्रारंभ हो गये थे। यह सम्मेलन कैसलर की विजय का प्रतीक बन गया था, क्योंकि इसमें जो भी निर्णय लिए गए वे उसी के निर्देशों के आधार पर हुए थे।

इस सम्मेलन के बाद यूरोप में कुछ ऐसी घटनायें घटीं जिससे चतुर्राष्ट्र एवं फ्रांस में आपस में मतभेद उत्पन्न हो गए। कुछ मतभेद एवं समस्यायें इस प्रकार थीं–

(1) स्पेन के दक्षिण अमेरिकी उपनिवेशों का विवाद,

(2) दास व्यापार से सम्बन्धित विवाद,

(3) उत्तरी अफ्रीका के समुद्री डाकुओं के मामले संबंधी विवाद,

(4) मेटरनिख और कैसलर के विचारों की भिन्नता जो यूरोपीय शांति भंग करने वाले मामलों में हस्तक्षेप को लेकर था,

(5) स्पेन की क्रांति में हस्तक्षेप के मामले में मेटरनिख और ब्रिटेन एक पक्ष में तथा रूस दूसरे पक्ष में था,

(6) नेपल्स की क्रांति में विद्रोह को दबाने के पक्ष में आस्ट्रिया था, परन्तु रूस और फ्रांस आस्ट्रिया के हस्तक्षेप के पक्ष में नहीं थे।

8.14 ट्रोपो सम्मेलन (1820)

1820 में ट्रोपो के स्थान पर कांग्रेस का दूसरा सम्मेलन बुलाया गया। इस सम्मेलन का मुख्य उद्देश्य नेपल्स की समस्या को सुलझाने एवं विद्रोह को दबाने के लिए स्वीकृति लेना था। इस सम्मेलन में आस्ट्रिया के सम्राट फ्रांसिस प्रथम एवं प्रधानमंत्री मेटरनिख, रूस के जार

अलेक्जेण्डर, प्रशा के युवराज एवं मंत्री हार्डनबर्ग ने भाग लिया था। इस सम्मेलन में फ्रांस तथा इंग्लैण्ड की ओर से विशेष प्रतिनिधि ने भाग नहीं लिया। इस सम्मेलन में मेटरनिख ने इस सिद्धान्त की घोषणा की कि यदि किसी राज्य में क्रांति होने से पड़ोसी राज्यों के समक्ष खतरा हो तो पड़ोसी राज्यों को अपनी सेनाओं द्वारा उसे कुचलने का अधिकार होना चाहिए। उसके अलावा यह भी प्रस्ताव प्रस्तुत हुआ कि सम्मेलन को यह भी अधिकार होना चाहिये कि वह वियेना व्यवस्था की रक्षा के लिए संघ की सेना का उपयोग कर सके।

इस सम्मेलन में आस्ट्रिया एवं रूस के बीच एक संधि पर हस्ताक्षर किए गए जिसका उद्देश्य चतुर्गुट संधि की अपेक्षा **"पवित्र संघ संधि"** को भविष्य के लिए आधार बनाया जाएगा। इस परिस्थिति में पवित्र संघ संधि को नया अर्थ भी दिया गया।

प्रो. देवेन्द्र सिंह चौहान ने लिखा है कि– "ट्रोपो के पूर्व लेख में एक नये सिद्धान्त की घोषणा की गई– जिन राज्यों में, क्रांति के फलस्वरूप, शासन में ऐसा परिवर्तन हो गया है, जिसके परिणामों से अन्य राज्यों को खतरा है, वे यूरोपीय संघ के सदस्य नहीं रहेंगे और वे तब तक उससे बाहर रहेंगे जब तक उनकी स्थिति से व्यवस्था एवं स्थिरता की गारंटी प्राप्त नहीं होती। यदि इन परिवर्तनों के कारण दूसरे राज्यों को तुरन्त ही शांति भंग होने की आशंका हो तो सम्मिलित राष्ट्र शांतिपूर्ण उपायों अथवा आवश्यक होने पर शस्त्रबल द्वारा अपराधी राज्य को इस महान संघ में वापस ले आयेंगे।"

इस सम्मेलन से पंचराष्ट्र संधि दो गुटों में बँट गई– पूर्वी और पश्चिमी गुट। पूर्वी गुट में रूस, आस्ट्रिया और प्रशा शामिल थे, जबकि पश्चिमी गुट में फ्रांस और ब्रिटेन शामिल थे।

8.15 लाइबेख सम्मेलन (1821)

ट्रोपो सम्मेलन बिना किसी अन्तिम निर्णय के समाप्त हो गया था। इसके बाद 1821 में लाइबेख में सम्मेलन बुलाया गया। इसमें नेपल्स तथा पीडमान्ट में चल रहे विद्रोहों के सम्बन्ध में मंत्रणा होनी थी। इसमें आस्ट्रिया के पूर्वी गुट ने आन्तरिक हस्तक्षेप पर बल दिया। इस सम्मेलन के चलते ही तुर्की में विद्रोह प्रारंभ हो गया था। आस्ट्रिया ने नेपल्स तथा पीडमाँ के विद्रोहों को कुचल दिया। ब्रिटेन और फ्रांस आन्तरिक हस्तक्षेप के विरोधी गुट में रहे।

(4) वियेना कांग्रेस (1822) संघ का विघटन

इस सम्मेलन के पूर्व तुर्की की समस्या का समाधान नहीं हो पाया था। कैसलरे की मृत्यु हो चुकी थी तथा स्पेन में विद्रोह प्रारंभ हो गया था। फ्रांस स्पेन में अपनी शक्ति का प्रसार करना चाहता था। इन विषयों पर विचार करने के लिए वेरोना का सम्मेलन बुलाया गया था। ब्रिटेन के विरोध के बावजूद चार राज्यों की संयुक्त सेना फ्रांस के नेतृत्व में स्पेन में प्रवेश कर गई। स्पेन के विद्रोह को दबा दिया गया तथा फर्डिनेन्ड का निरंकुश शासन पुनः स्थापित कर दिया गया। इसी समय यूनान ने तुर्की के विरुद्ध विद्रोह कर दिया था। ब्रिटेन यूनानियों के समर्थन और सहायता के पक्ष में था, परन्तु मेटरनिख ने यह स्वीकार नहीं किया। स्पेन और यूनान में प्रतिक्रियावाद की सफलता से असंतुष्ट होकर ब्रिटेन इस गुट से अलग हो गया। वस्तुतः यहीं से यूरोप की संहति का अन्त हो चुका था।

(5) यूरोपीय संघ और मुनरो का सिद्धान्त

स्पेन का शासक यूरोपीय संघ की सहायता से दक्षिण अमेरिकी उपनिवेशों पर पुनः आधिपत्य करना चाहता था, परन्तु केनिंग और अमेरिका के राष्ट्रपति इसके पक्ष में नहीं थे। इस सम्बन्ध में अमेरिका के राष्ट्रपति जेम्स मुनरो ने 2 दिसम्बर, 1883 को दक्षिणी अमेरिका के सम्बन्ध में अपनी घोषणा की। यही घोषणा **'मुनरो सिद्धान्त'** के नाम से प्रसिद्ध है। इस घोषणा में कहा था– 'भविष्य में अमेरिकी महाद्वीप में यूरोपीय राज्यों के उपनिवेश स्थापित नहीं किये जा सकेंगे।

NOTES

यदि कोई यूरोपीय शक्ति इन महाद्वीपों की राजनैतिक व्यवस्था में हस्तक्षेप करने अथवा नये क्षेत्रों पर अधिकार करने का प्रयत्न करेगी तो संयुक्त राज्य अमेरिका ऐसे प्रयत्न को अपने प्रति शत्रुतापूर्ण मनोवृत्ति का प्रमाण मानेगा।' यह घोषणा यूरोपीय संघ पर एक संघात था। इससे यूरोपीय संघ कभी उबर नहीं सका। इस सफलता पर केनिंग ने कहा था कि **"मैंने पुरानी दुनिया के संतुलन को ठीक करने के लिए नई दुनिया की रचना कर दी है।"**

(6) यूरोपीय संहति को बचाने का अन्तिम प्रयास सेंट पीटर्सबर्ग सम्मेलन (1824)

यह सम्मेलन यूरोपीय संघ को बचाने का अन्तिम प्रयास था। जार अलेक्जेण्डर ने सेंट पीटर्सबर्ग में यूनान और टर्की की समस्या पर विचार करने के लिए कांग्रेस का आयोजन किया। इसमें इंग्लैण्ड इससे अलग हो गया तथा रूस और आस्ट्रिया में भी मतभेद बढ़ गए। इसके बाद रूस ने पूर्वी समस्या पर विचार करने के लिए अपनी पृथक नीति अपनाने का निश्चय किया। इस तरह अन्तरराष्ट्रीय सहयोग का यह अन्तिम प्रयास असफल हो गया।

8.16 यूरोपीय संहति की असफलता के कारण

(1) सदस्य देशों के परस्पर विरोधी हितों एवं विचारधाराओं का संघर्ष – यूरोपीय संहति (कन्सर्ट ऑफ यूरोप) की असफलता का प्रमुख कारण था, सदस्य देशों के आपसी हित पृथक–पृथक थे और उनके राजनीतिक दृष्टिकोण में भी अन्तर था। उनकी सोच और संस्थाओं में मौलिक मतभेद थे। राजनीतिक स्वार्थों के साथ–साथ व्यापारिक (आर्थिक) हित भी आपस में टकराते थे। इंग्लैण्ड और फ्रांस संवैधानिक राजतंत्र थे तो रूस, आस्ट्रिया तथा प्रशा में निरंकुश राजतंत्र थे। इंग्लैण्ड और फ्रांस उदारवाद का सीधे–सीधे विरोध नहीं करते थे बल्कि उनके समर्थक थे तो दूसरी ओर आस्ट्रिया, रूस तथा प्रशा उदारवाद एवं प्रगतिशील विचारों के कट्टर शत्रु थे। इस तरह के विचारों को कुचल देना उचित समझते थे। इसे सैद्धान्तिक विचारधारा के कारण वे किसी भी प्रश्न पर विचार करते समय एकमत नहीं हो पाते थे।

प्रो. देवेन्द्र सिंह चौहान ने लिखा है– "कोई भी संघात्मक व्यवस्था तब तक नहीं चल सकती जब तक उसके सदस्यों के सामान्य हित समान न हों। संहति के सभी सदस्यों में पारस्परिक ईर्ष्या और सन्देह था। पूर्वी समस्या के संबंध में आस्ट्रिया और रूस के स्वार्थों का संघर्ष हुआ और प्रतिक्रिया स्वरूप इन स्तम्भों के बीच बड़ी कटुता उत्पन्न हो गई। यूरोपीय संघ का निर्बल जहाज इसी चट्टान से टकराकर छिन–भिन्न हो गया।"

(2) मेटरनिख की विचारधारा :– यूरोपीय संघ की असफलता का एक महत्वपूर्ण कारण मेटरनिख की प्रतिक्रियावादी विचारधारा का होना भी था। अधिकांश इतिहासकार यह मानते हैं कि यूरोप की संयुक्त व्यवस्था मेटरनिख की प्रतिक्रिया का साधन मात्र रह गई थी। मेटरनिख की विचारधारा का समर्थन प्रशा भी करता था।

द्रविड़ थामसन ने लिखा है– "इस व्यवस्था का दुर्भाग्य था कि मेटरनिख ने अप्रगतिशील उद्देश्य से उसका प्रयोग, परिवर्तन को रोकने के लिए, ऐसे युग में किया, जबकि प्रगतिवादी विचारधाराएँ अपरिवर्तनवादी व्यवस्था के विरुद्ध अधिक प्रभावशाली होती जा रही थीं। लोकतंत्र, उदारवाद और राष्ट्रीयता की प्रगतिशील विचारधाराओं के प्रबल वेग के समक्ष निरंकुश शासकों को प्रतिक्रियावादी नीति पर आधारित व्यवस्था का टूटना स्वाभाविक था।" मेटरनिख की नीति हमेशा ही चार बड़े राज्यों में किसी एक शक्ति के साथ आस्ट्रिया के संबंध अधिक निकटता से स्थापित करने की थी। 1819–20 में उसने इंग्लैण्ड को रूस के प्रति अविश्वास करने के लिए उकसाया। इसके लिए उसने फारस, भारत, आयोनिय द्वीप ब्रिटिश उपनिवेशों में, रूस की जासूसी गतिविधियों की जानकारी उसे दी। इसी तरह वैरोना कांग्रेस में मेटरनिख ने सफलतापूर्वक फ्रांस के प्रति रूस अविश्वासी और फ्रांस को रूस के प्रति अविश्वासी बना दिया और ब्रिटेन को फ्रांस और रूस दोनों के प्रति बहुत ही सफलता से अविश्वासी बना दिया था। मेटरनिख की यही

नीति अन्ततः संयुक्त व्यवस्था की असफलता का महत्वपूर्ण कारण बन गई।

(3) इंग्लैण्ड का व्यवस्था से पृथक होना :– इतिहासकारों ने इंग्लैण्ड का संयुक्त व्यवस्था से पृथक हो जाने को संयुक्त व्यवस्था की असफलता का एक कारण माना है। इंग्लैण्ड मेटरनिख की दूसरे राज्यों में हस्तक्षेप की नीति के खिलाफ था। इसी बात को लेकर वह संयुक्त व्यवस्था से अलग हो गया। उसके अलग होते ही यह व्यवस्था चरमरा गई।

(4) छोटे राज्यों को महत्व न देना – इसकी असफलता का एक कारण यह भी माना गया है कि इसे छोटे राज्यों को कोई महत्व नहीं दिया गया इसलिए वे इस संघ से खिलाफ हो गए।

मेटरनिख और स्पेन

वियेना – कांग्रेस के निर्णय के अनुसार स्पेन में फर्डीनेण्ड के निरंकुश शासन की स्थापना की गयी थी। जब 1820 में वहाँ की जनता ने निरंकुशता के विरुद्ध आन्दोलन किया तो राजा को जनता की माँग स्वीकार करनी पड़ी परन्तु मेटरनिख ने वेरोना – कांग्रेस से अनुमति प्राप्त कर फ्रांस के द्वारा विद्रोह को कुचलवा कर वहाँ पुनः निरंकुश शासन स्थापित कर दिया।

मेटरनिख व टर्की

जब 1820 में यूनानियों ने टर्की के अत्याचारपूर्ण शासन के विरुद्ध विद्रोह कर दिया तो रूस उनकी सहायता करना चाहता था, परन्तु मेटरनिख ने उसका विरोध किया। वह यूनानियों के इस विद्रोह को टर्की की वैध सत्ता के विरुद्ध उपद्रव मानता था। इसलिए न तो उसने यूनानियों को स्वयं ही कोई सहायता प्रदान की और न रूस को ही सहायता करने दी।

मूल्यांकन

मेटरनिख अपने समय का एक अद्वितीय राजनीतिज्ञ था जिसने नेपोलियन के पतन के बाद अपनी कूटनीतिक चालों से 1848 तक यूरोप पर अगना प्राधान्य कायम रखा। उसके प्राधान्य का रहस्य उसकी प्रसन्न प्रभावशाली मुद्रा, विशाल कूटनीतिक अनुभव, मिलनसारी, ठण्डा दिमाग, आदमी की बारीक परख, षड़यन्त्र – कुशलता तथा दृढ़ निष्ठा में था। वह अत्यन्त घमण्डी था। उसे अपनी शक्ति पर अत्यधिक विश्वास था। वह कहा करता था कि समस्त संसार उसके कन्धों पर टिका हुआ है तथा 'उसका जन्म पतनोन्मुख यूरोपीय समाज को सँभालने के लिए हुआ है। उसमें मनुष्य को परखने की अद्‌भुत क्षमता थी, परन्तु उसे परिस्थितियों की परख नहीं थी। वह यह बात नहीं समझ पाया कि 1815 के बाद का यूरोप 1789 के पहले का यूरोप नहीं था। वह क्रांति का केवल एक पक्ष – विनाशकारी – ही देख सका, उसका रचनात्मक पक्ष वह नहीं देख सका। वह फ्रेंच क्रांति द्वारा प्रसारित नवीन भावनाओं के महत्व एवं प्रभाव को नहीं समझ सका और उन्हें तुच्छ समझकर जीवन – भर उन्हें नष्ट करने के असफल प्रयत्न में लगा रहा।

उसकी दृष्टि में शान्ति को सबसे बड़ा अथवा एकमात्र खतरा उस काल की नवीन भावनाओं से ही था और उनके दमन से ही शान्ति रह सकती थी तथा यह कार्य केवल निरंकुश एकतन्त्र द्वारा ही सम्पन्न हो सकता था। आस्ट्रिया के साम्राज्य में तो उसने इन भावनाओं दबा कर निरंकुश एकतन्त्र को बिल्कुल कमजोर नहीं होने दिया, उसके बाहर भी उसने सर्वत्र निरंकुश एकतन्त्र का समर्थन किया और जार एलेक्जेण्डर तथा प्रशा के शासन फ्रेडरिक विलियम पर अपना प्रभाव डालकर उन्हें उदारवाद एवं राष्ट्रीयतावाद के दमन कार्य में अपन सहयोगी बना लिया। जर्मनी में तो उसने परिसंघ की विधायिका – सभा द्वारा सर्वत्र इन नवीन भावनाओं की प्रगति का सफलतापूर्वक विरोध किया और अन्यत्र (इटली तथा स्पेन में) उसने कांग्रेस व्यवस्था का एक शक्तिशाली दमनकारी शस्त्र की तरह उपयोग किया। ग्रीस में भी उसने जार एलेक्जेण्डर को टर्की के सुल्तान के विरुद्ध यूनानियों की सहायता नहीं करने दी।

NOTES

मेटरनिख जीवन–भर उदारवाद का कट्टर शत्रु बना रहा और अपने उद्देश्य की सिद्धि में वह सफल भी रहा, परन्तु जो सफलता उसे प्राप्त हुई, वह वास्तव में सफलता की छायामात्र थी उसके समय में ही गीस तथा बेल्जियम में उदारवाद एवं राष्ट्रीयतावाद की विजय हो चुकी थी और उसकी मृत्यु के बाद इन नवीन भावनाओं की सफलता को देखकर मेटरनिख की जो कड़ी निंदा की जाती है उसमें उसके साथ कुछ अन्याय होता है। उसकी आलोचना के साम्राज्य में, जैसा हम देख चुके हैं, अनेक प्रकार के लोग रहते थे। जिनमें किसी प्रकार की एकता कोई भावना नहीं थी और जो केवल बलपूर्वक ही साम्राज्य में रखे जा सकते थे। ऐसे साम्राज्य में राष्ट्रीयता की भावना को प्रश्रय देना उसके विनाश को नियंत्रण देना था। इसी साम्राज्यवाद के कारण वह इन नवीन भावनाओं का कट्टर शत्रु था और चूंकि उनसे आस्ट्रिया के साम्राज्य को बड़ा भारी खतरा था, वह उन्हें कहीं भी पनपने देना नहीं चाहता था। इसके अतिरिक्त इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि फ्रेंच क्रांति तथा नेपोलियन के समय में अनवरत युद्धों से यूरोप की जनता त्रस्त थी और अन्य सब वस्तुओं से अधिक शांति चाहती थी। जहाँ उसने नवीन भावनाओं का दमन करके जनता का इतना उपकार किया। वहाँ 40 वर्षों तक शांति कायम रखकर उसने उसका उपकार भी कम नहीं किया।

बोध प्रश्न

1. पवित्र मैत्री पर लेख लिखिए?

....

....

....

2. चतुर्राष्ट्र संधि का वर्णन कीजिए?

....

....

....

8.17 मेटरनिख का पतन

आस्ट्रिया की जनता मेटरनिख की विचारधारा से परेशान हो चुकी थी। आस्ट्रिया की प्रगति थम गई थी। नये विचारों के अभाव में वहां गदगी फैलने लगी थी। लोग परिवर्तन चाहते थे। ऐसे समय में 1848 में फ्रांस में क्रांति हुई इससे सम्पूर्ण यूरोप में विद्रोह भड़क उठे। आस्ट्रिया भी इससे न बच सका। 13 मार्च को विद्यार्थियों एवं मजूदरों के विशाल जुलूस ने राजभवन एवं मेटरनिख के भवन को घेर लिया और उससे त्याग पत्र की माँग की। मेटरनिख का पतन यूरोप के लिए स्वतंत्रता एवं उदारवादी विचारधारा की विजय थी।

पतन के कारण

(1) युग के अनुकूल बनने की अक्षमता– फिर भी इतना कहने में कोई अत्युक्ति नहीं होगी कि एक महान राजनीतिज्ञ में युग की प्रेरक शक्तियों को समझने तथा अपने आपको उनके अनुकूल बनाने का विशिष्ट गुण होता है। उससे वह बिलकुल शून्य था। अतुलनीय भौतिक एवं मानसिक विस्तार के युग के आरंभ में विद्यमान होते हुए भी वह यही विश्वास करता रहा कि भाग्य ने उसे ह्रास के युग में ला खड़ा किया था जिसमें उसका काम पतनोन्मुख संस्थाओं को सहारा देना था।

(2) निषेधात्मक नीति– उसके राजनीतिज्ञ ढंगों में भी कुशल राजनीतिज्ञता की छाप दिखायी नहीं देती थी। नेपोलियन कहा करता था कि मेटरनिख साजिश को ही राजनीतिज्ञता समझता है। तेलीरॉं उसे, सत्य एवं सम्मान की उपेक्षा करके प्रतिक्षण अपने उद्देश्यों एवं ढंगों को बदलते रहने वाला एक अवसरवादी ही कहा करता था। उसकी नीति वास्तव में निषेधात्मक एवं अवसरवादी थी। उच्च रचनात्मक आदर्शों द्वारा प्रेरित नहीं थी।

(3) नीति की अचलता– वह अवसरवादी था, परन्तु शायद उसके जीवन की सबसे बड़ी गलती यह थी कि वह सदा अवसरवादी नहीं रहा और उसने एक ऐसी ही नीति को, जो संकटकाल में शांति कायम रखने का एक अच्छा अस्थायी साधन बन सकती थी, एक स्थिर सिद्धांत बना डाला। एक थकी हुई और भीरू पीढ़ी के लिए यह आवश्यक था, किन्तु यह उसका दुर्भाग्य ही था कि अपनी उपयोगिता समाप्त होने के बाद भी बना रहा और यह न समझ सका कि जब वह स्वयं वृद्ध और क्षीण होता जा रहा था, उसी समय संसार पुनः यौवनावस्था को प्राप्त हो रहा था। अचल नीति का आश्रय लिये हुए वह प्रगतिशील संसार के बिलकुल ही अनुपयुक्त था। वह स्वयं इस बात को समझता था और कहता था कि **"मैं इस संसार में या तो बहुत जल्दी आ गया या बहुत देर से आया हूँ।"** यदि मैं पहले आया होता तो अपने युग का आनंद लेता और यदि मैं देर से आया होता तो उसके निर्माण में सहायक बनता, परंतु आज तो मुझे अपना जीवन क्षीणप्राय संस्थाओं को सँभालने में ही लगाना पड़ रहा है।

(4) नई भावनाओं की भक्ति– उसे क्रांति तथा निरंकुश शासन के बीच का कोई मार्ग दिखायी नहीं देता था और चूंकि उसे क्रांति से घृणा थी, इस कारण वह निरंकुश शासन का अन्धभक्त बना रहा और निरंतर उदारवाद तथा राष्ट्रीयता की भावना को कुचलने में लगा रहा, किन्तु ये भावनायें किसी प्रकार भी दबायी नहीं जा सकती थीं। इसके परिणामस्वरूप मेटरनिख–युग केवल एक प्रतिक्रियावादी दिष्कम्भक ही प्रमाणित हुआ जिसमें मेटरनिख के समस्त प्रयत्न ऐसे उद्देश्य की प्राप्ति के लिए हुए जिसकी पराजय निश्चित थी।

(5) इंग्लैण्ड और अमेरिका का विरोध – उसकी अंतरराष्ट्रीय चौकसी तथा दमन की व्यवस्था ब्रिटेन के असहयोग, मुनरो–सिद्धांत की घोषणा तथा 1830 में फ्रांस में हुई फिलिप के शासन की स्थापना के फलस्वरूप धीरे–धीरे निर्बल पड़ती गयी। ग्रीस तथा बेल्जियम के स्वतंत्र राज्यों की स्थापना में उसकी स्थितिपालकनीति की विफलता का प्रत्यक्ष प्रमाण मिलता है। 1848 तक कांग्रेस व्यवस्था पर आधारित यूरोपीय राज्यों का सहयोग समाप्त हो चुका था, जो क्षणिक थी। इन्हीं दोनों देशों में वे शक्तियों तैयार हो चुकी थीं जो आस्ट्रिया को वहाँ से बाहर निकालकर उसके प्राधान्य को समाप्त करने वाली थीं।

इन सब कारणों से उसकी स्थिति ऊपर से अक्षत और सुदृढ़ दिखायी देते हुए भी अंदर ही अंदर खोखली एवं दुर्बल हो गयी थी। जब 1848 में वियना में विद्रोह हो गया तो उसका साहस टूट गया और उसे देश छोड़कर भागना पड़ा। इस प्रकार उसके शानदार जीवन का अत्यंत दयनीय अंत हुआ।

8.18 सारांश

ऑस्ट्रिया के प्रधानमंत्री मेटरनिख जिसका पूरा नाम 'काउंट वलीमेंस मेटरनिख' रूप, जो 1815 से 1846 तक न केवल आस्ट्रिया का वहन सम्पूर्ण का सबसे प्रभावशाली राजनीतिज्ञ था, जितने कारण 1815 से 1848 के काल को यूरोप में मेटरनिख युग के नाम से जाना जाता है।

NOTES

8.19 अभ्यासार्थ प्रश्न

दीर्घोत्तरीय प्रश्न

(1) 'वियेना कांग्रेस' द्वारा यूरोप का पुनर्निर्माण हुआ। विवेचना कीजये।

(2) वियेना कांग्रेस के कार्यों का वर्णन कीजिये।

लघु उत्तरीय प्रश्न

(1) 'यूरोपीय संहति' (कन्सर्ट ऑफ यूरोप) क्या है?

(2) यूरोप की संयुक्त व्यवस्था का अर्थ 'सम्मेलनों की श्रृंखला' था। समीक्षा कीजिये।

(3) यूरोपीय संहति की असफलता के कारणों का वर्णन कीजिये।

विकल्प

1. वियना कांग्रेस का अधिवेशन हुआ था–

(अ) 1814 (ब) 1824 (स) 1804 (द) 1834

उत्तर 1. (अ)

8.20 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

विश्व इतिहास (18वीं, 19वीं सदी – डॉ. संजीव जैन, कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल)

●●●

अपनी प्रगति की जाँच करें
Test your Progress

NOTES

अध्याय-9 पश्चिमी यूरोप में उदारवाद का उदय और लोकतंत्र

(THE GROWTH OF LIBERALISM & DEMOCRACY IN WESTERN EUROPE) (1815-1914)

इकाई की रूपरेखा (इकाई–4)

9.0 उद्देश्य

9.1 परिचय

9.2 इंग्लैण्ड में उदारवाद का उदय

9.3 सुधारों से पूर्व ससदीय व्यवस्था

9.4 उदारवाद और संसदीय विचारक

9.5 संसदीय सुधार लागू होने की पृष्ठभूमि

9.6 1832 का सुधार विले

9.7 चार्टिस्ट आंदोलन

9.8 प्रजातंत्र का विकास

9.9 सारांश

9.10 अभ्यास प्रश्न

9.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

9.0 उद्देश्य

इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे कि–

1. उदारवाद का उदय एवं पृष्ठभूमि जान सकेंगे।
2. लोकतंत्र का उदय एव पृष्ठभूमि जान सकेंगे।
3. तत्कालीन सामाजिक राजनीतिक एवं धार्मिक स्थिति का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
4. तत्कालीन समसामयिक ऐतिहासिक घटनाओं से परिचित हो सकेंगे।

9.1 परिचय

इस सदी में इंग्लैण्ड में बदली हुई आर्थिक, सामाजिक परिस्थितियों के अनुरूप सुधार कानूनों की एक लम्बी यात्रा पूरी हुई। इसी सदी में इंग्लैण्ड की संसद ने अपने सामन्तीय स्वरूप को बदलकर सच्चे लोकतंत्रीय स्वरूप को ग्रहण किया। इस अध्याय में उदारवादी प्रवृत्तियों का संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत किया जाएगा।

9.2 इंग्लैण्ड में उदारवाद का उदय (RISE & GROWTH OF LIBERALISM IN ENGLAND)

NOTES

उदारवाद को समझने के लिए इंग्लैण्ड में हुए कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तनों को आधार बनाया जाएगा –

(i) संसदीय सुधार। (ii) मुक्त व्यापार।

(i) राजनीतिक उदारवाद बनाम संसदीय सुधार

यद्यपि इंग्लैण्ड में संसदात्मक शासन प्रणाली की स्थापना गौरवपूर्ण क्रांति के पश्चात् हो गयी थी, किन्तु उन्नीसवीं सदी के आरंभ तक इंग्लैण्ड की संसद सही अर्थों में जनता का प्रतिनिधित्व नहीं करती थी। हाउस ऑफ लॉर्ड्स **हाउस ऑफ कॉमन्स** की तुलना में बहुत अधिक शक्तिशाली था। मताधिकार सीमित था। केवल उच्च वर्ग के लोगों को मत देने का अधिकार था। वस्तुतः अठारहवीं शताब्दी में संसद जनता का प्रतिनिधित्व नहीं करती थी बल्कि वह रोटन बरो तथा धनिक वर्ग का प्रतिनिधित्व करती थी।

प्रथम सुधार अधिनियम (1832 ई.) से स्त्रियों को मताधिकार (1928 ई.) दिये जाने के मध्य इंग्लैण्ड के विधान में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए। कॉमन सदन का जनतंत्रीकरण हुआ, राजा की शक्ति समाप्त हुई, लॉर्ड्स सदन की शक्ति का अंत हुआ और उत्तरदायी मंत्रिमंडल की इंग्लैण्ड में सर्वोच्च सत्ता कायम हुयी और "हाउस ऑफ कॉमन्स" जनता का सच्चा प्रतिनिधि बन गया।

इंग्लैण्ड में ऐसे व्यक्तियों की कमी न थी, जो संसदीय सुधार के पक्षधर न हों। वे संसद के दोषों से अवगत थे और उसमें सुधार चाहते थे। यद्यपि अठारहवीं शताब्दी में ब्रिटेन में कैबिनेट प्रणाली की स्थापना हो चुकी थी, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि वहाँ लोकतंत्र अर्थात् जनता का राज कायम हो गया था। राजा की निरंकुश शक्ति अवश्य समाप्त हो गयी थी और संसद शक्तिशाली बन गयी थी, किन्तु संसद जनता के प्रतिनिधियों की सभा नहीं थी, उस पर जमींदार वर्ग का आधिपत्य था। औद्योगिक क्रांति ने अनेक ऐसे परिवर्तन किये, जिससे संसद में सुधार करने और उसे लोकतांत्रिक बनाने के प्रयास प्रारंभ हुये। संसदीय सुधार एवं सुधारकों पर विचार करने से पहले यह जानना समीचीन होगा कि 19वीं शताब्दी के प्रारंभ में इंग्लैंड में लोकतंत्र की स्थिति कैसी थी।

9.3 सुधारों से पूर्व संसदीय व्यवस्था

(1) द्विसदनीय व्यवस्था

ब्रिटेन की संसद के दो सदन थे –

(i) **कुलीन सदन – हाउस ऑफ लार्ड्स** – यह पूर्णतः जमींदारों एवं चर्च के अधिकारियों का सदन था। इसके सदस्य वंशानुगत हुआ करते थे। वे न तो जनता द्वारा निर्वाचित किये जाते थे और न ही साधारण जनता के हितों से उन्हें कोई सहानुभूति थी।

(ii) **लोकसदन – हाउस ऑफ कामन्स** – यह जनसाधारण के लिए था, परन्तु उसमें भी उच्च वर्ग के ही लोग थे।

(2) निर्वाचन क्षेत्र और मतदान के अधिकार

हाउस ऑफ कॉमन्स या लोकसदन के चुनाव के लिए जो पहले से चले आ रहे निर्वाचन क्षेत्र थे, वे ठीक नहीं थे। इन निर्वाचन क्षेत्रों और मतदान के अधिकारों में कुछ असंगतियाँ थीं जो कि इस प्रकार हैं –

(i) औद्योगिक क्रांति से पहले देश के अधिकतर निवासी ग्रामीण क्षेत्रों में रहते थे और गाँवों से ही सदन के लिए बहुसंख्यक प्रतिनिधि चुने जाते थे, किन्तु औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप अनेक गाँव उजड़ गये थे और नगरों की आबादी बढ़ गयी थी। मैनचेस्टर, लिवरपूल, बर्मिंघम, लीड्स शेफील्ड आदि महत्वपूर्ण नये नगर थे। लेकिन पुराने नियमों के अनुसार उन गाँवों को भी लोकसदन के लिए दो–दो प्रतिनिधि चुनने का अधिकार था, जिनमें केवल कुछ ही घर रह गये थे। इसके विपरीत नये नगरों को, जिनमें लाखों लोग रहते, एक भी प्रतिनिधि चुनने का अधिकार नहीं था।

(ii) निर्वाचन क्षेत्रों के मतदाताओं की एक सी योग्यताएँ नहीं थीं। कहीं स्वतंत्र भूमिपतियों को वोट देने का अधिकार था, तो कहीं अन्य योग्यता रखने वाले व्यक्तियों को, किन्तु धनी व्यापारी तथा उद्योगपति मताधिकार से वंचित थे।

(iii) चुनाव प्रणाली में सबसे बड़ी कमी यह थी कि मतदाता वोट देने में स्वतंत्र नहीं थे। उस युग में गुप्त मतदान की प्रणाली नहीं थी। खुलेआम वोट डाले जाते थे। अतः जमींदार लोग डरा–धमकाकर इच्छानुसार वोट डलवा लेते थे।

(iv) औद्योगिक क्रांति ने उद्योगपतियों एवं मजदूरों के दो नये वर्ग उत्पन्न कर दिये थे। उद्योगपति वर्ग के पास पूँजी थी, किन्तु संसद में अपना प्रभाव न होने से वह खिन्न था। दस्तकार व मजदूर भी चाहने लगे थे कि संसद में उनका भी प्रतिनिधित्व हो। समाजवाद का विकास इसी पृष्ठभूमि में हो रहा था अतः 19वीं शताब्दी के मध्य तक मजदूर स्वयं को संगठित कर अपनी ताकत का परिचय देने को प्रस्तुत था।

(v) मताधिकार बहुत सीमित था। 1832 ई. से पूर्व ब्रिटेन के एक करोड़ चालीस लाख लोगों में से केवल तीस हजार लोगों को मत देने का अधिकार था। संक्षेप में, यह कहा जा सकता है कि संसद की चुनाव प्रणाली दोषपूर्ण थी उसमें आमूल परिवर्तन की आवश्यकता थी। यह कार्य संसदीय सुधारकों के द्वारा संपन्न हुआ ।

1.4 उदारवाद और संसदीय विचारक

इंग्लैण्ड में अठारहवीं और उन्नीसवीं सदी में कई ऐसे विचारक हुए जो संसदीय प्रणाली में सुधारों के समर्थक थे और इस रूप में शासन में उदारवादी प्रवृत्तियों को अपनाने पर जोर दे रहे थे। इनमें कुछ प्रमुख विचारकों के व्यक्तित्व और विचारों का वर्णन यहाँ संक्षेप में प्रस्तुत है–

जेरेमी बैन्थम (1748–1832 ई.)

संसदीय सुधारों के विचारों के समर्थक जेरेमी बेन्थम का जन्म 15 फरवरी, 1748 ई. को लंदन में हुआ था। उसने उच्च शिक्षा प्राप्त करने के बाद कानून का विशेष अध्ययन किया। उसने प्रारंभ में कुछ समय के लिए वकालत का पेशा अपनाया था क्योंकि वह उसका खानदानी पेशा था, लेकिन कुछ समय पश्चात् उसे छोड़ दिया। उसने यह देखा कि मुकदमों, अदालतों और कानूनों में असंख्य त्रुटियाँ और कमजोरियाँ हैं। इस कारण न्याय व्यवस्था उसे निरर्थक सी प्रतीत हुई। उसे पूरा विश्वास हो गया कि उसके जमाने के अंग्रेजी कानून केवल बोझ मात्र थे और देश के लिए उपयोगी न थे। उसने इन कानूनों में संशोधन और परिवर्तन कराने का निश्चय किया। उसने विधियों के सुधार का महत्वपूर्ण आंदोलन चलाया और उसे सफलता मिली।

उसे अपने विचारों के समर्थन में फ्रांस के उपयोगितावादियों से बड़ी सहायता मिली। व्हिग दल के नेता लॉर्ड शेलबर्न उसके ग्रन्थों से बहुत प्रभावित हुआ। शेलबर्न से परिचय से उसे पिट, रोमली, केमडन, ड्युमांट आदि राजनीतिज्ञों के संपर्क में आने का अवसर मिला। उसके विचारों का प्रभाव दूर–दूर तक फैला। वह जातीय एवं वर्गीय विभेदों में विश्वास नहीं करता था। इसलिए उसकी लोकप्रियता विश्व के कई देशों में फैली। लॉर्ड विलियम बेन्टिक ने उससे प्रेरणा ग्रहण

NOTES

करके ही भारत में सामाजिक सुधारों का सूत्रपात किया था।

अपने 84 वर्ष के दीर्घकालीन जीवन में बैन्थम ने उपयोगिता के साथ–साथ उदार सुधारवाद की नींव सुदृढ़ की। उसमें मौलिकता या क्रांतिकारी दृष्टिकोण का अभाव भले हो रहा हो लेकिन उसकी सदाशयता तथा सद्भावना पर शंका नहीं की जा सकती है। 6 जून, 1932 ई. में बैन्थम की उस समय मृत्यु हुयी, जबकि इंग्लैण्ड का प्रथम सुधार अधिनियम पारित हो चुका था।

शासन में सुधार लाने के लिए बैन्थम ने वयस्क अधिकार, गुप्त मतदान, प्रत्यक्ष निर्वाचन, संसद के वार्षिक अधिवेशन, उचित प्रतिनिधित्व, जन प्रजातांत्रिक प्रणाली आदि का प्रयोग आवश्यक बताया क्योंकि इन सुधारों की माँग जनता में उठ रही थी। बैन्थम ने इनका औचित्य सिद्ध करते हुए शासन को धीरे–धीरे प्रजातांत्रिक मार्ग पर बढ़ने की सलाह दी। उसके अनुसार प्रजातंत्र में शासक और शासित एक सामान्य होते हैं। व्यापार, उद्योग, कृषि आदि में बैन्थम शासकीय हस्तक्षेप के विरुद्ध था। उसने मुक्त व्यापार तथा अहस्तक्षेप की नीति को प्रोत्साहित किया। बैन्थम के अनुसार राज्य द्वारा हस्तक्षेप का मतलब यह नहीं कि राज्य निष्क्रिय है। उसके अनुसार राज्य को हस्तक्षेप का प्रयोग बड़ी सावधानी और सतर्कता के साथ करना चाहिए।

राजनीतिक सुधारों पर बल – 1807 से 1810 ई. के बीच बैन्थम पर उसके मित्र जेम्स मिल का व्यापक प्रभाव पड़ा। इस प्रभाव के कारण उसकी यह धारणा बन गयी कि कानूनों के सुधारों सहित अन्य सभी प्रकार के सुधार तभी सफल हो सकते हैं, जब पहले राजनीतिक सुधार किये जायें। वह **"अधिक–से–अधिक व्यक्तियों के अधिक–से अधिक सुख"** के सिद्धांत का प्रतिपादक था। इस उपयोगिता के सिद्धांत के आधार पर ही बैन्थम ने अपनी पुस्तक में समान चुनाव क्षेत्र, वार्षिक पार्लियामेंट के अधिवेशन, परिवार के आधार पर मताधिकार और चुनाव–प्रतिक्रिया में सुधार की माँग की। इसके अनुसार लोकतंत्र के द्वारा ही सबसे अधिक सुख मिल सकता है। इसमें संदेह नहीं है कि इंग्लैण्ड में सुधारों का युग बैन्थम के विचारों को लेकर आरंभ हुआ। बैन्थम ने हर कानून और परिपाटी के साथ उपयोगितावाद के सिद्धान्तों को जोड़ दिया। उसका कहना था कि वे सभी संस्थाएँ, जिनका कोई उपयोग नहीं है, समाप्त कर देनी चाहिए। उसका विचार था कि इंग्लैण्ड के हर कानून में सुधार होना आवश्यक है।

बैन्थम की विचारधारा का प्रभाव – बैन्थम के विचारों का उन सभी राजनयिकों और प्रशासकों पर व्यापक प्रभाव पड़ा जो उसके समकालीन थे और बाद में भी राजनयिक उसके विचारों से प्रेरणा ग्रहण करते रहे। उसके अनुसार, सरकार को समाज में ऐसी परिस्थितियों को स्थापित करना चाहिये जिनसे अधिक–से–अधिक व्यक्तियों को अधिक से अधिक सुख मिले। वह अठारहवीं शताब्दी की प्रशासकीय प्रणाली को भ्रष्टाचार पर आधारित अयोग्य तथा दकियानूसी मानता था। उसका विचार था कि सरकार को व्यक्ति और समाज के हितों में संतुलन रखने के लिए आवश्यक हस्तक्षेप करना चाहिए। नया मध्यम वर्ग चाहता था कि सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र में उसे उचित सम्मान मिले। बैन्थम भी परम्परागत सरकारी नियंत्रणों के विरुद्ध था और व्यक्ति के हितों को सबसे अधिक महत्व देता था। उसकी यह विचारधारा नये मध्यम वर्ग की आकांक्षाओं के अनुरूप थी। इस मध्यम वर्ग ने उसकी विचारधारा को पूर्ण समर्थन दिया। उपयोगितावाद के सिद्धांत को आधार बनाकर बैन्थम ने प्रशासकीय और संवैधानिक दोनों प्रकारों के सुधारों को समान महत्व दिया। उसकी विचारधारा को "उग्र सुधारवाद" कहा जाता है, उसके इन लोकतांत्रिक विचारों का पूर्ण विकास उन्नीसवीं शती के दूसरे दशक में हुआ।

जेम्स मिल (1773–1836 ई.)

जेम्स मिल का जन्म स्कॉटलैण्ड के एक मध्यम परिवार में हुआ था। एडिनबरा विश्वविद्यालय से उसने शिक्षा प्राप्त की। वह बैन्थम का समकालीन था और उससे उसका निकट का संपर्क था। जेम्स मिल का विश्लेषण बैन्थम के सिद्धांत पर आधारित है कि मनुष्य सुख चाहता है और

दुःख से बचने की कोशिश करता है। उसके अनुसार, शासन के द्वारा राज्य व्यक्तियों की स्वतंत्रता को इस प्रकार नियंत्रित करता है कि मनुष्य अपना व्यक्तिगत विकास तथा निजी उन्नति करने के लिए तो स्वतंत्र रहे, परन्तु उसकी स्वतंत्रता अन्य लोगों की स्वतंत्रता में बाधक न बने ।

प्रतिनिधि शासन का समर्थन – उसका कहना है कि प्रतिनिधि शासन तंत्र ही एकमात्र ऐसी दोषहीन व्यवस्था है, जिससे समाज की सारी आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाती है। उसके अनुसार विधायिका शक्ति जनता के प्रतिनिधि के हाथ में रहनी चाहिए और विधान मण्डल का कार्यकाल सीमित होना चाहिए। विधान मंडल का कार्यकाल समाप्त होने पर नये निर्वाचन होने चाहिए।

NOTES

मताधिकार – मताधिकार के विषय में मिल ने कहा है कि जिन व्यक्तियों को अपने जीवनयापन के लिए दूसरों पर आश्रित रहना पड़ता हो अथवा जिन व्यक्तियों के हित दूसरे व्यक्तियों से संबंधित हों उनको विधान मंडल के सदस्यों के निर्वाचन में मतदान का अधिकार नहीं मिलना चाहिए। मिल के विचारों में यही एक अंश है, जिस पर उसके विरोधियों को बड़ी आपत्ति है। यदि मिल की उक्त बात मान ली जाती है, तो वयस्क औरतों से मतदान का अधिकार छिन जाता है और बहुत से पुरुष भी चुनाव में भाग लेने से वंचित कर दिये जाते हैं। अतः सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार के हिमायती तथा महिला मताधिकार की माँग करने वाले व्यक्ति मिल की उक्त बात कभी नहीं मान सकते। इन सबके बावजूद 1832 ई. के सुधार विधेयक में मिल का बहुत बड़ा योगदान था।

जॉन स्टुअर्ट मिल (1806–1873 ई.)

एक ऐसा राजनीतिक चिंतक है, जो यह विश्वास करता है, "यदि संपूर्ण मनुष्य जाति का एक मत है और केवल एक व्यक्ति का मत उसके विरुद्ध है, तो मनुष्य जाति को उसे रोकना अधिक न्यायसंगत नहीं होगा।" जैसे कि यदि उस व्यक्ति में शक्ति होती, तो वह समस्त मनुष्य जाति को शांत करने में समर्थ होगा। मिल अपने युग का सुप्रसिद्ध बैन्थमवादी विचारक था। उसने उपयोगिता का समर्थन करते हुये सुधारकों का साथ दिया। इसका पिता भारत में व्यापार करने वाली ईस्ट इंडिया कम्पनी के एक महत्वपूर्ण पद पर काम करता था। मिल विचार स्वातंत्रय का कट्टर समर्थक था। सरकार के अधिकारों के संबंध में मिल ने कहा कि प्रशासन को किसी प्रकार के दमन का अधिकार प्राप्त नहीं हो सकता, चाहे इसमें जनता का ही समर्थन क्यों न प्राप्त हो। इंग्लैण्ड की पार्लियामेंट का सदस्य होने के कारण मिल राज्य में कानून का महत्व स्थापित करना चाहता था। उसके अनुसार सर्वोत्तम शासन प्रणाली वह है, जिसमें नागरिकों को अधिकतम राजनीतिक शिक्षा मिलती है। किसी भी सरकार का मूल्यांकन उसके कार्यों में सबसे बड़ी बात नागरिकों के मानसिक और नैतिक गुणों का विकास है। जिस मात्रा में यह अधिक होगा, उसी मात्रा में शासन भी श्रेष्ठ होगा। शासन की सफलता शासकों के गुणों पर निर्भर है। उसके अनुसार मत देने का अधिकार उन्हीं व्यक्तियों को दिया जाना चाहिए जिनमें मत देने की योग्यता हो। उसने स्त्रियों को भी मत देने के अधिकार का समर्थन किया है।

9.5 संसदीय सुधार लागू होने की पृष्ठभूमि

सामाजिक असंतोष

1832 के सुधार अधिनियम के पूर्व सन् 1815 से 1820 ई. के बीच इंग्लैण्ड मे सामाजिक असंतोष अपनी चरम सीमा पर था। इस असंतोष के कई कारण थे –

(i) नेपोलियन के विरुद्ध युद्ध समाप्त होने के बाद यूरोप के अन्य देशों में उद्योग जोर–शोर से चलने लगे। अतः अब इंग्लैण्ड की बनी वस्तुओं की माँग अन्य देशों में उतनी नहीं रही। इस स्थिति में इंग्लैण्ड में अनेक मजदूर बेकार हो गये।

NOTES

(ii) कृषि और औद्योगिक क्रांतियों के कारण भी खेतिहर किसानों और मजदूरों की आर्थिक दशा खराब हो गयी।

(iii) बढ़ती हुई आबादी के कारण भी दरिद्रता में वृद्धि हुयी।

(iv) मजदूरों को मजदूरी कम मिलती थी और उन्हें काम अधिक करना पड़ता था। इसके साथ ही उन्हें गंदी बस्तियों में रहना पड़ता था।

(v) इन परिस्थितियों में इंग्लैण्ड के समाज में सुधारकों के दो वर्गों का उदय हुआ। एक वर्ग शांतिपूर्ण और वैधानिक तरीकों से सुधार करना चाहता था, दूसरा क्रांतिकारी वर्ग, शक्ति के प्रयोग और हिंसात्मक तरीकों से सुधार करना चाहता था।

सुधार आंदोलनों का विकास

इस समय इंग्लैण्ड में सुधार आंदोलन का तीव्रता से विकास हो रहा था। सुधार आंदोलन चलाने के लिए अनेक संघों की स्थापना हुयी। मध्यम वर्ग भी अब सुधारों के पक्ष में हो गया था। परिणामस्वरूप ग्रे की अध्यक्षता में अब व्हिग पार्टी भी सुधारों की समर्थक हो गयी। इधर जनता की आर्थिक कठिनाइयों में वृद्धि हो रही थी तथा मजदूरों में असंतोष फैल रहा था। ऐसी स्थिति में कुछ राजनीतिक नेता मजदूरों को हिंसा के प्रयोग के लिए भड़का रहे थे। मध्यम वर्ग में यह आशंका उत्पन्न हो गयी थी कि यदि इस समय पर उचित कार्यवाही नहीं की गयी तो खूनी क्रांति हो जायेगी। 1820 ई. में सुधारवादियों ने पूरे टोरी मंत्रिमंडल की हत्या करने का षड्यन्त्र रचा किन्तु षड्यंत्र का पहले ही भेद खुल जाने से षड्यंत्रकारियों को मृत्यु–दंड दे दिया गया। 1822 ई. में लिवरपूल मंत्रिमंडल का पुनर्गठन हुआ, जिसमें रॉबर्ट पील को गृह–मंत्री तथा कैनिंग को विदेश मंत्री बनाया गया, जो सुधारवादी विचारों के समर्थक थे।

उग्र सुधारवादी संसदीय सुधार को अन्य सुधारों का माध्यम समझते थे। इंग्लैण्ड में विभिन्न स्थानों पर आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियाँ भिन्न–भिन्न थीं, इसीलिए सुधारों की माँगों में भी भिन्नता थी, किंतु सभी स्थानों पर उग्र सुधारवादियों का उद्देश्य एक ही था – जनसाधारण की दशा में सुधार करना। फ्रांसिस प्लेस ने संगठन विरोधी कानून की समाप्ति की माँग इसलिए की कि वह समझता था कि मजदूरों को संगठित होकर उद्योगपतियों से अपनी आर्थिक स्थिति ठीक कराने के लिए सौदा करने का कानूनी अधिकार है। प्लेस के प्रोत्साहन देने पर ही 1824 ई. में जोजफ ह्युम ने संसद में इन कानूनों को समाप्त करने का विधेयक रखा था। 1825 से 1835 ई. के बीच अनेक ट्रेड यूनियनें बनीं।

फ्रांस की क्रांति का प्रभाव

जुलाई, 1830 ई. में फ्रांस में क्रांति हो गयी, जिसके फलस्वरूप फ्रांस में लोकप्रिय प्रभुसत्ता की स्थापना हुई। लुई फिलिप "फ्रांस का शासक" नहीं था बल्कि फ्रांस की जनता का शासक था। फ्रांस की इस क्रांति की सफलता की सूचना मिलते ही इंग्लैण्ड की जनता ने संवैधानिक सुधारों की माँग तेज कर दी। स्थान–स्थान पर सार्वजनिक सभायें होने लगीं। टोरी सरकार ने सुधारों की माँग को अस्वीकार कर दिया। वस्तुतः फ्रांस की जुलाई की क्रांति ने इंग्लैण्ड में सुधारों के लिए अनुकूल वातावरण तैयार कर दिया और सुधारवादियों की संख्या में वृद्धि होने लगी। सुधारों की मात्रा के संबंध में प्रचुर मतभेद था परन्तु सुधार की आवश्यकता के पक्ष में अब बहुमत हो गया। लॉर्ड ग्रे, जॉन रसेल, लॉर्ड डरहम, पामर्स्टन, स्टेनली तथा सर जॉन ग्राहम– ये सभी सुधारवादी हो गये। टोरी दल की रूढ़िवादी नीति के कारण उसकी प्रतिष्ठा को भारी धक्का लगा तथा नवम्बर, 1830 ई. के चुनाव में व्हिग दल को बहुमत प्राप्त हुआ तथा वेलिंगटन मंत्रिमंडल का पतन हो गया। राजा विलियम चतुर्थ ने ग्रे के व्हिग मंत्रिमंडल को निमंत्रित किया। लॉर्ड ग्रे के प्रधानमंत्री बनते ही इंग्लैंड में सुधारों का द्वार खुल गया।

NOTES

9.6 1832 का सुधार बिल (REFORM ACTS OF 1832)

इंग्लैण्ड में 1832 के सुधार अधिनियम का पारित होना सुधारवादियों की जीत थी। 1830 ई. के आसपास स्थान–स्थान पर संसदीय सुधारों की माँग की जाने लगी, उग्र विचारों के लोग सभाएँ करने लगे और सरकार को धमकियाँ देने लगे। राजनीतिक संघों ने इस समय अपने आंदोलन को तीव्र किया। बर्मिंघम और मेनचेस्टर के सभी सुधारवादी संगठित होकर सुधार बिल पारित करने के लिए कटिबद्ध हो गये। ब्रिटेन के उत्तरी भागों में हड़ताल की लहर आ गयी। प्रारंभ में तो जमींदार लोग, जिनका संसद पर एकाधिकार था, अपने विशेषाधिकार छोड़ने को तैयार नहीं हुए किन्तु अंत में उन्हें झुकना पड़ा।

लॉर्ड ग्रे ने **लॉर्ड डरहम** की अध्यक्षता में सुधार बिल का मसविदा तैयार करने के लिए मंत्रिमंडल की कमेटी नियुक्त की। लॉर्ड डरहम अपने प्रगतिशील विचारों के लिए इतने प्रसिद्ध थे कि उन्हें उनके विरोधियों ने **"रैडिकल जैक"** की उपाधि दे रखी थी। इस कमेटी में उनके दो प्रमुख सहयोगी जॉन रसेल तथा लॉर्ड एलथार्प विख्यात सुधारक थे। **"डरहम कमेटी"** द्वारा निर्मित मसविदा **जाफल रसेल** ने सुधार विधेयक के रूप में मार्च 1831 ई. में लोकसदन में रखा। इस मसविदे में सर्वप्रथम जनता के प्रतिनिधित्व को महत्व दिया गया था। 24 जून, 1831 ई. को जॉन रसेल ने इसे 109 मतों के बहुमत से पारित कर दिया, किन्तु लॉर्ड्स सदन में यह विधेयक 41 मतों से अस्वीकृत हो गया। लॉर्ड्स सदन में परास्त होने के बाद मंत्रिपरिषद ने त्याग पत्र देने से इंकार कर दिया। सरकार ने संसद का अधिवेशन स्थगित कर दिया। यह विधेयक तीसरी बार संसद के नये अधिवेशन में दिसम्बर, 1831 ई. में मामूली परिवर्तन के साथ लोकसदन में रखा गया। मार्च, 1832 ई. को लोकसदन ने इसे पास कर दिया, परन्तु इस बात की आशंका थी कि लॉर्ड्स सदन इसे फिर अस्वीकार कर देगा। लार्ड ग्रे ने राजा से यह वचन प्राप्त करके मंत्रिमंडल बनाया कि आवश्यकता पड़ने पर वह (राजा) इतने पीयर्स नियुक्त कर देगा कि बिल पारित हो जाये।

इस दौरान देश में बिल के पक्ष में जोश के साथ आंदोलन चल रहा था वातावरण अत्यंत ही तनावपूर्ण हो गया था। इधर सम्राट ने इस बात का प्रयत्न किया कि मन्त्रिमडल बिल में ऐसे संशोधन कर दे कि लॉर्ड्स सदन उसे पास कर दे किन्तु मंत्रिमंडल इसके लिए तैयार नहीं था। ऐसी स्थिति में सम्राट ने ऐसा कदम उठाया, जो असंवैधानिक था किन्तु सम्राट के इस कार्य का किसी ने विरोध नहीं किया। सम्राट ने अपने व्यक्तिगत सचिव द्वारा व वेलिंगटन तथा अन्य टोरियों को यह कहलवाया कि वे बिल पर मतदान के समय स्वयं को अनुपस्थित रखें। अब टोरियों को यह मालूम हो गया कि उनकी दाल नहीं गल सकती। अतः राजा के प्रार्थना करने पर वालिंगटन और उसके साथी लॉर्ड्स सदन को छोड़कर चले गये। फलस्वरूप 4 जून, 1832 ई. को यह सुधार विधेयक भारी बहुमत से पारित हो गया।

बोध प्रश्न

1. सुधारों से पूर्व संसदीय व्यवस्था का वर्णन कीजिए?

....

....

....

2. इंग्लैण्ड में उदारवाद के उदय का वर्णन कीजिए?

....

....

NOTES

1832 के सुधार अधिनियम की विशेषतायें

(1) 2000 से कम आबादी वाले निर्वाचन क्षेत्रों को एक भी सदस्य भेजने का अधिकार नहीं रहा।

(2) 2000 से 4000 तक जनसंख्या वाले क्षेत्रों को एक प्रतिनिधि चुनने का अधिकार दिया गया।

(3) उक्त व्यवस्था से 143 स्थान लोकसदन में खाली हो गये, जिन्हें नये निर्वाचन क्षेत्रों – काउन्टी तथा बरों में बाँटा गया।

(4) बरो (नगरीय क्षेत्र) में उन सभी गृह–स्वामियों और किरायेदारों को मत देने का अधिकार दिया गया, जो दस पौण्ड प्रतिवर्ष लगान अथवा किराया देते हैं।

(5) काउन्टियों (देहाती क्षेत्र) में दो पौण्ड प्रतिवर्ष लगान देने वाले भूमिधरों और पट्टेदारों तथा पचास पौण्ड प्रतिवर्ष लगान देने वाले साधारण किसानों को भी मताधिकार दिया गया।

(6) यह भी निश्चित किया गया कि प्रत्येक चुनाव से पहले मतदाताओं की एक विस्तृत सूची तैयार की जायेगी, उन्हें ही वोट देने का अधिकार होगा।

सुधार बिल द्वारा किये गये परिवर्तन

लोकसभा के सदस्यों की संख्या 658 ही रही, लेकिन उनके वितरण में परिवर्तन किया गया।

1. जिन बरों अथवा काउन्टियों की आबादी 2 हजार से कम थी, उन्हें एक भी सदस्य भेजने का अधिकार न रहा। इस नियम के कारण 56 बरों को प्रतिनिधि भेजने के अधिकार से वंचित कर दिया गया।

2. दो हजार से चार हजार तक आबादी वाले निर्वाचन क्षेत्रों को केवल एक सदस्य भेजने का अधिकार मिला। इससे 32 क्षेत्रों की केवल एक ही प्रतिनिधि भेजने का अधिकार रह गया।

3. इस प्रकार 143 स्थान रिक्त हो गये। जिनका फिर से वितरण इस प्रकार किया गया। इंग्लैण्ड और वेल्स की काउण्टी तथा छोटे–बड़े नगरों को 130 स्थान, स्काटलैण्ड को 8 तथा आयरलैण्ड को 5 स्थान मिले।

4. 1832 के पहले और बाद में सीटों का वितरण अब इस प्रकार था–

	1832 के पूर्व		1832 के बाद
1. इंग्लैण्ड और वेल्स			
(क) काउण्टी	94	(+65)	159
(ख) बरो	419	(– 78)	341
2. स्काटलैण्ड	45	(+8)	53

मताधिकार में वृद्धि

1. बरों में मताधिकार की विषमता और विभिन्नता को समाप्त कर दिया गया। उन सभी गृहस्वामियों या किरायेदारों को, जो 10 पौण्ड वार्षिक लगान या किराया देते थे, मताधिकार दिया गया।

2. काउण्टियों में 2 पौण्ड वार्षिक लगान देने वाले स्वतंत्र स्वामियों के अतिरिक्त 10 पौण्ड वार्षिक लगान देने वाले कापी होल्डरों और लम्बे पट्टदारों को भी मताधिकार मिला।

3. काउण्टियों में 50 पौण्ड प्रतिवर्ष लगान देने वाले साधारण काश्तकारों को भी मताधिकार मिल गया।
4. मताधिकार केवल वयस्क पुरुषों तक ही सीमित रहा।
5. मताधिकार सम्बन्धी परिवर्तनों से, अब इंग्लैण्ड में निर्वाचकों की संख्या में पहले से तीन गुनी से भी अधिक वृद्धि हो गई। इंग्लैण्ड की जनसंख्या में अब 24 व्यक्तियों में एक व्यक्ति को मताधिकार प्राप्त हो गया।
6. मतदाता सूची बनाई गई।

सुधार अधिनियम से हुए परिवर्तनों की समीक्षा एवं महत्व

ब्रिटेन के संवैधानिक विकास में इस प्रथम सुधार अधिनियम का महत्वपूर्ण स्थान है। इस अधिनियम के महत्वपूर्ण होने के लिए निम्नलिखित तथ्यों को देखा जा सकता है–

(i) इस अधिनियम से निर्वाचन क्षेत्रों की विषमता एवं असंगतियाँ दूर हो गयीं और मतदाताओं की संख्या में दुगुनी वृद्धि हुयी।

(ii) इस कानून ने जमींदारों और कुलीनों के राजनीतिक एकाधिकार को समाप्त कर दिया।

(iii) इसने मध्यम वर्ग को राजनीति में स्थान प्रदान किया, जिसका भविष्य में ब्रिटेन की राजनीति पर गंभीर प्रभाव पड़ा।

(iv) इसके अतिरिक्त इसने पार्लियामेंट के सुधारों का मार्ग सरल कर दिया। जब सिद्धांत के आधार पर एक बार पार्लियामेंट के सुधारों को आवश्यक रूप से स्वीकार कर लिया गया, तो परिस्थितियों के बदलने पर नवीन सुधारों की आवश्यकता को स्वीकार करना आवश्यक हो गया और इस कारण 1867, 1884, 1918 ई. में पार्लियामेंट के सुधार कानून बने, जिनके आधार पर निरंतर प्रतिनिधित्व प्रणाली और मताधिकार में उस समय तक परिवर्तन किये गये, जब तक ब्रिटेन में आधुनिक प्रजातंत्र शासन का निर्माण न हो गया।

(v) प्रोफेसर ग्रांट एवं टेम्परले के अनुसार, 1832 ई. के अधिनियम ने 1688 ई. की क्रांति को पूर्ण कर दिया।

(vi) ट्रेवेलियन ने 1832 ई. के सुधार अधिनियम को **"आधुनिक मैग्नाकार्टा"** कहा है और यह माना है कि इसने मध्यम वर्ग के पक्ष में सत्ता संतुलन को झुकाते हुए लोकतंत्र का पथ प्रशस्त किया है।

(vii) जो शक्ति पहले जमींदारों के मात्र विशेषाधिकार प्राप्त तबके तक सीमित थी उसे एक ओर तो सभी जमींदारों में तथा दूसरी ओर मध्यम वर्ग के एक तबके में बाँट दिया।

(viii) ट्रेवेलियन ने 1832 के प्रथम सुधार बिल को **"आधुनिक काल का मेग्नाकार्टा"** कहा है।

(ix) टोरियों की दृष्टि में यह एक "क्रांति" थी। भले ही यह क्रांति फ्रांसीसी ढंग की न हो, लेकिन अंग्रेजी ढंग की क्रांति अवश्य थी।

(x) संसदीय प्रणाली में हुए परिवर्तनों के फलस्वरूप प्रतिनिधित्व अब कुछ सीमा तक आबादी के आधार पर हो गया। काउण्टियों में निर्वाचन क्षेत्रों की संख्या बढ़ी और बरों में घटी। 4 लाख 55 हजार नये मतदाता बने।

(xi) ट्रेवेलियन के अनुसार **"राजसत्ता भूपतियों के हाथ से अब भूपतियों तथा मध्यमवर्ग के हाथों में चली गई।"** भूपतियों और सामंतों का अब भी प्रभाव काफी था, लेकिन उनकी शक्ति के एकाधिकार का अन्त हो गया और सत्ता में मध्यवर्ग साझीदार हो गया।

NOTES

(xii) इंग्लैण्ड की राजनीति में औद्योगिक केन्द्रों का महत्व बढ़ गया तथा विभिन्न दल मतदाताओं को प्रभावित करने के लिए चुनावी वायदे करने लगे।

(xiii) इससे हाउस ऑफ कामन्स (लोकसभा) का महत्व बढ़ा तथा लार्ड सभा और ताज का महत्व कम हुआ।

(xiv) यह ठीक है कि सुधार बिल से सारे दोष दूर नहीं हुए थे, भूपतियों की शक्ति और प्रभाव अभी भी था, मताधिकार सीमित था, निम्न मध्यवर्ग तथा मजदूर महिलाओं को वोट का हक नहीं मिला था। जिस कारण चार्टिस्ट आन्दोलन हुआ। फिर भी यह सुधार बिल परिवर्तन को प्रथम स्वीकृति थी। जो दरवाजा लम्बे समय से बंद था वह खुल गया। 1832 के सुधार बिल से जो सफर शुरू हुआ वह 1867, 1884, 1918 और 1928 के बिलों के रूप में जारी रहा। इस दृष्टि से यह एक नये युग का प्रारंभ था। मेरियट को यह ठीक लगता है कि "इसने बहुत सी गम्भीर बुराइयों को दूर किया, लेकिन अनेक दुविधाओं को यथावत छोड़ दिया। इसने जनतंत्र के सिद्धान्त को स्वीकार किये बिना कुलीनता के सिद्धान्त को तोड़ दिया।"

(ii) आर्थिक उदारवाद बनाम मुक्त व्यापार

इस युग के इंग्लैण्ड की एक विशिष्टता थी – अहस्तक्षेप की नीति का प्रचार करना व सरकार द्वारा उसका अपनाया जाना। 18वीं शताब्दी में पहले–पहल फ्रांस के एक अर्थशास्त्री ने इस शब्दावली का प्रयोग किया। इसका अर्थ यह था कि सरकार को उद्योग व व्यापार के क्षेत्र में कम से कम हस्तक्षेप करना चाहिए तथा उन्हें उद्यमियों के जिम्मे छोड़ देना चाहिए जो मुक्त प्रतिस्पर्धा के सिद्धांत के परिचालित होने के कारण जनता के लिए सस्ती व बढ़िया वस्तुओं का उत्पादन करेंगे। स्वतंत्र व्यापार नीति में विश्वास करने वाले मुक्त व्यापारी खुले व्यापार के पक्ष में थे। इसका अभिप्राय स्वतंत्र राष्ट्रों द्वारा एक–दूसरे को बिना विशेष कर दिये माल के हस्तांतरण से है। इसमें सरकारी हस्तक्षेप को लगभग अस्वीकार कर दिया गया। 18वीं शताब्दी के प्रारंभ में उद्योगपतियों व व्यापारियों ने इन विचारों का प्रतिपादन किया क्योंकि ये उनके निजी हित में थे। ये विचार इस कारण इतने प्रभावी हो पाये कि वह आर्थिक समृद्धि का युग था और प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने इन विचारों का अनुमोदन किया। इन अर्थशास्त्रियों में सबसे प्रसिद्ध है – **एडम स्मिथ,** जिसने अपनी पुस्तक **"एन इन्क्वायरी इन्टू दि वैल्थ आफ नेशंस"** में उस समय मान्य वाणिज्य के सिद्धांत पर प्रहार किया। उसने अपनी पुस्तक के एक–चौथाई भाग में केवल वाणिज्यवाद की ही आलोचना की। उसने व्यापार वाणिज्य के क्षेत्र में सरकार के हस्तक्षेप का विरोध किया और अहस्तक्षेप की नीति का जोर–शोर से प्रचार किया और व्यक्ति को स्वतंत्र छोड़ देने का समर्थन किया। उनकी यह पुस्तक प्रथम बीस वर्षों में आठ बार छपी। बाद में दूसरे अर्थशास्त्रियों ने इस विचारधारा का विकास किया। इनमें रिकार्डो, बैन्थम, जेम्स मिल तथा जॉन स्टुअर्ट मिल के नाम भी उल्लेखनीय हैं। रिकार्डो की पुस्तक **'प्रिंसिपल्स ऑफ पोलिटिकल इकॉनोमी एण्ड टैक्सेशन'** बहुत प्रसिद्ध हुई। यह संयोग ही था कि एडम स्मिथ की पुस्तक उसी वर्ष प्रकाशित हुई, जिस वर्ष अमेरिका की स्वतंत्रता की घोषणा हुई। अमेरिका उपनिवेशों के स्वतंत्र हो जाने के बाद ब्रिटेन व अमेरिका में व्यापार बढ़ता रहा।

उदारवाद की सोच राजनीतिक क्षेत्र के साथ–साथ आर्थिक क्षेत्र में भी परिलक्षित हुयी। इस युग का नवोदित बुर्जुआ वर्ग वाणिज्यवाद के स्थान पर अहस्तक्षेप के सिद्धांत पर आधारित मुक्त व्यापार की आर्थिक व्यवस्था चाहता था। उन्होंने बुर्जुआ तथा कुलीन वर्ग में अंतर करने वाले वंशानुगत के अंतर की भी पैरवी की।

उदारवादियों के अनुसार राज्य को कम से कम कार्य करने चाहिए। उनके विचार में सरकार का कार्य केवल परस्पर विरोधी हितों को समन्वित करना ही था। अपने इस रूप में सरकार को एक आवश्यक बुराई माना गया। इसी कारण जैसा कि **जेरमी बैन्थम** का भी तर्क था कि

सर्वोत्तम सरकार वह है, जो सबसे कम शासन करती है। उदारवादियों के अनुसार सरकार का मूल कार्य व्यक्तियों के निजी संपत्ति प्राकृतिक अधिकारों को सुरक्षा प्रदान करना था। **जॉन लॉक** के अनुसार, यदि सरकार वह सुरक्षा न दे सके तो उसके अस्तित्व का कोई औचित्य नहीं है। निजी हितों ने अपने आपको प्रतियोगी लोकतंत्र की संस्थात्मक व्यवस्थाओं द्वारा प्रोत्साहित करना चाहा। उन्होंने इस कुलीन तंत्रीय दावे का प्रतिकार किया कि जन्म तथा वंशानुगत आधार पर लोगों को असमान अवसर प्राप्त हों। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि समानता से संबंधित उनका दावा केवल राजनीतिक दावा ही था। उनका आर्थिक समानता में कोई विश्वास नहीं था। उदारवादियों में से कुछ वस्तुतः यह मानते थे कि आर्थिक असमानता न केवल अपरिहार्य है बल्कि वह सभी संबंधित व्यक्तियों के लिए एक सकारात्मक अच्छाई भी है।

जॉन स्टुअर्ट मिल और थामस हिल ग्रीन जैसे विचारकों ने उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में सिद्धांतों के परिवर्तन प्रस्तुत किये। आर्थिक क्षेत्र में अहस्तक्षेप की नीति के स्थान पर इन्होंने यह स्वीकार किया कि राज्य का उद्देश्य व्यक्ति के सामान्य कल्याण में वृद्धि करना है।

पूँजीपतियों द्वारा श्रमिकों के शोषण के कारण उदारवादियों ने आर्थिक और सामाजिक क्षेत्र में मुख्य प्रतियोगिता के पुराने सिद्धांत को त्याग दिया। यह स्मरण रहे कि औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप एकाधिकारी प्रवृत्तियाँ पनपने लगी थीं। आर्थिक जीवन पर ऐसे थोड़े से लोगों का नियंत्रण स्थापित होने लगा, जो आर्थिक दृष्टि से समर्थ थे। उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक समाज पर आर्थिक संकट एवं मंदी, व्यापार चक्र तथा श्रमिकों के विद्रोह का निरंतर दबाव बढ़ता जा रहा था। मिल तथा ग्रीन दोनों ये यह अनुभव किया कि प्रत्येक व्यक्ति का यह अधिकार है कि उसे समान अवसर प्राप्त हों। ग्रीन ने इस बात पर बल दिया कि व्यक्ति की स्वतंत्रता व उसकी संतुष्टि केवल समाज के माध्यम से ही सम्भव है। इन उदारवादियों की यह मान्यता थी कि वितरण की समस्याओं के निराकरण हेतु राज्य समाज के आर्थिक जीवन में सक्रिय हस्तक्षेप करे। **जॉन रॉल्स** का विचार है कि राज्य के लाभों व बोझों की योजना को इस ढंग से व्यवस्थित करना चाहिए, जिससे सबसे कम लाभ प्राप्त करने वाला व्यक्ति भी भाग्यशालियों के साधनों में हिस्सा प्राप्त कर सके।

1820 ई. से ही ब्रिटिश उद्योगपतियों तथा व्यापारियों द्वारा निर्बाध व्यापार विचारधारा का अनुमोदन प्रारंभ हो गया था। लंदन के व्यापारियो ने ब्रिटिश संसद को एक आवेदन–पत्र दिया, जिसमें माँग की गयी कि आयात व निर्यात कर केवल राजस्व के उद्देश्य से ही लगाये जाएँ। **"मेनचेस्टर चैंबर ऑफ कॉमर्स"** काफी समय से व्यापारिक कम्पनियों का एकाधिकार समाप्त करने के लिए प्रयत्नशील था। 1833 ई. के चार्टर एक्ट द्वारा ईस्ट इंडिया कम्पनी के एकाधिकार भी समाप्त कर दिये गये। समय–समय पर कानून पास करके बहुत–सी वस्तुओं पर से आयात व निर्यात कर हटा दिये गये। इस संदर्भ में **हस्किंसन** जो 1823–27 ई. तक बोर्ड ऑफ ट्रेड का अध्यक्ष था तथा रॉबर्ट पील, जो 1842–46 ई. तक प्रधानमंत्री था, के नाम उल्लेखनीय हैं।

वाटरलू के युद्ध के पश्चात् इंग्लैंड का आर्थिक पतन तीव्र गति से होने लगा था। राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को सुधारने के लिए स्वतंत्र व्यापार नीति को प्रोत्साहन दिया जाने लगा। मुक्त व्यापारियों के प्रभाव के कारण 19वीं शताब्दी के तीसरे दशक में पहला बड़ा सुधार किया। इस दशक में स्वतंत्र व्यापार की दिशा में एक बड़ा फैसला हुआ। विलियम हस्किंसन ने व्यापारियों के करों में पहला बड़ा सुधार किया। कस्टम अधिनियम को समाप्त करके करों में भारी सहूलियत प्रदान की गयी। बहुत से खनिज पदार्थों से भी कर समाप्त कर दिये गये या बहुत कम कर दिये गये। तम्बाकू और स्प्रिट पर से व्यापारिक कर हटा दिये गये। 1830 ई. में बहुत सी दैनिक उपयोग की वस्तुओं जैसे मोमबत्ती, चमड़ा, कलफ और मिठाइयों पर से आबकारी कर समाप्त कर दिया गया। इंग्लैण्ड का सबसे बड़ा वित्त सुधारक रॉबर्ट पील था। राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में सुधार लाने के लिए उसने स्वतंत्र व्यापार नीति को प्रोत्साहन दिया था। उसने व्यवसाय कर के घाटे की पूर्ति आयकर लगाकर की। खनिज पदार्थों पर से व्यापारिक कर समाप्त कर दिया

NOTES

गया। 1845 ई. में उस सभी माल पर जो कच्चे माल के रूप में विदेशों से इंग्लैण्ड आता था, कर मुक्त कर दिया गया। तैयार गाल से कर हटा दिये गये और काँच पर से आबकारी कर समाप्त कर दिया गया। सर रॉबर्ट पील का कार्यकाल इंग्लैण्ड के आर्थिक इतिहास का एक अत्यंत महत्वपूर्ण काल है, क्योंकि इस काल में जितने आर्थिक सुधार हुये वे शायद अन्य किसी काल में नहीं हुए। इसका मुख्य कारण यह था कि पील स्वयं एक मिल मालिक था, अतः उसे आर्थिक मामलों का गंभीर ज्ञान तथा अनुभव था। आर्थिक क्षेत्र में उसने कमाल कर दिखाया। जहाँ भयंकर घाटा हो रहा था, वहाँ उसने दुगुनी बचत कर यह दिखला दिया कि उसकी प्रतीक्षा बेजोड़ थी। इतिहासकार ट्रेवेलियन का कथन है कि **"किसी अन्य व्यक्ति की अपेक्षा पील ने इंग्लैण्ड में नेपोलियन के युद्धों के पश्चात् उत्पन्न आर्थिक गिरावट एवं कष्ट को समाप्त करने में अधिक योगदान दिया और उसने भौतिक समृद्धि की नींव डाली जो, विक्टोरिया युग की एक विशेषता बन गई।"** वस्तुतः पील के आर्थिक चिंतन के कारण ही ऐसा सम्भव हो पाया था।

मुक्त व्यापार विचारधारा के अपनाये जाने का मुख्य कारण व्यापारियों द्वारा अपने हितों की रक्षा करने का प्रयत्न था। यह वर्ग आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न हो चला था और यह जानता था कि यदि निर्यात कर के हटने से इनके माल की कीमत कम होती है, तो माँग जरूर बढ़ेगी। वे नहीं चाहते थे कि सरकार मालिक—श्रमिक संबंधों में दखल दे क्योंकि श्रमिकों की दशा सुधारने के प्रयत्नों से श्रम की लागत बढ़ती थी, जिनसे उत्पादन खर्च में वृद्धि होती थी। 1815 ई. में जमींदार वर्ग ने दबाब डालकर "अनाज कानून" पारित क़रवा लिया था। इस कानून के अंतर्गत ब्रिटेन में अकाल के समय छोड़कर अनाज के आयात पर रोक लगा दी गयी और इस प्रकार कृत्रिम ढंग से ऊपरी कमी दिखाई गयी। इससे जमींदारों को पुनः लाभ हुआ, यद्यपि उपभोक्ताओं को हानि उठानी पड़ी, परन्तु आगे चलकर उभरते हुए मुक्त व्यापार वर्ग ने इसका विरोध किया और 1846 ई. में **"अनाज कानून"** को रद्द किया जाना समाज और अर्थव्यवस्था पर मुक्त व्यापारियों के बढ़ते प्रभाव का सूचक है।

रिचार्ड कौबडेन (1804--65 ई.) और जॉन ब्राइट (1811–89 ई.) भी मुक्त व्यापार के समर्थक थे। ये दोनों ही अनाज कानून के विरोधी थे। दोनों उद्योगपति थे लेकिन दोनों नेता श्रमिकों का हित चाहते थे। उन्होंने मुक्त व्यापार आंदोलन को सशक्त बना दिया। उनका विश्वास था कि अनाज कानून समाप्त कर देने से विभिन्न देशों में व्यापार बढ़ेगा और इससे शांति तथा सद्भावना को प्रोत्साहन मिलेगा। अन्न कानून उत्पादकों के लिए, जिनमें भू—स्वामी थे, अधिक लाभदायक है। अतः इन नेताओं ने अन्न कानूनों का विरोध किया। उसके मतानुसार इसने देश की बहुत बुराई की। इसने व्यापार को अस्थिर तथा संकटपूर्ण बना दिया। इसने लोगों की राजनीतिक स्वतंत्रता छीन ली। इसने मजदूरों को अधिक असंतुष्ट और गरीब बना दिया।

इन नेताओं ने जुलूसों और सभाओं का आयोजन किया। तीन महीने में केवल लंदन में करीब 150 सभाओं का आयोजन हुआ था। पर्याप्त धन भी जमा कर लिया गया। देश के सभी भागों में संघ की ओर से प्रतिनिधि भेजे गये। इस तरह संघ के पक्ष में सबल जनमत तैयार हो गया। संघ को बहुत से उद्योगपतियों, मध्यम वर्ग वालों तथा कई अन्य लोगों की सहानुभूति प्राप्त हुयी। कौबडेन और ब्राइट दोनों का व्यक्तित्व प्रभावशाली था। दोनों ही कुशल व्यक्ति थे। दोनों पार्लियामेंट के सदस्य भी हो गये थे। 1841 ई. में कैबिडेन को और दो साल के बाद ब्राइट को संसद की सदस्यता प्राप्त हो गयी। दोनों ने बड़े ही जोरदार शब्दों में अपने विचारों को संसद के मंच से व्यक्त किया। ये दोनों नेता उत्पादकों की अपेक्षा उपभोक्ताओं के दृष्टिकोण से अधिक सोचते थे।

कौबडेन तथा ब्राइट के नेतृत्व में मुक्त व्यापार आंदोलन को लोकप्रियता प्राप्त होने लगी। 19वीं शताब्दी का पाँचवाँ दशक (1940—50 ई.) भूख एवं संकट का काल था। इसे **"हंग्री फोर्टीज"** कहा जाता था। कौबडेन और ब्राइट ने मुक्त व्यापार को भूख रूपी भयंकर रोग को दूर करने के लिए अचूक औषधि के रूप में आवश्यक समझा।

मुक्त व्यापार के परिणाम

मुक्त व्यापार की अवधारणा के परिणाम लाभदायक सिद्ध हुये। अब इंग्लैण्ड को कच्चे माल तथा अनाज आदि सस्ते मूल्य पर मिलने लगे। उसके तैयार माल भी सस्ते मूल्य पर आसानी से संसार के कोने-कोने में पहुँचने लगे। इस तरह इंग्लैण्ड के आयात और निर्यात दोनों में बहुत वृद्धि हुई। पूँजी बढ़ने लगी। संसार-पार के देशों में पूँजी का उपयोग किया जाने लगा। इससे भी पूँजी में वृद्धि होने लगी। देश में धन-दौलत के बढ़ने से सभी वर्ग के लोगों का जीवन स्तर ऊँचा होने लगा।

हालाँकि मुक्त-व्यापार बहुत प्रभावशाली था, परन्तु वह आर्थिक राष्ट्रवाद का एक अस्थायी दौर सिद्ध हुआ। 1870 ई. से शुरू होने वाले दशक में बढ़ती हुई अंतरराष्ट्रीय आर्थिक प्रतिस्पर्द्धा के अंतर्गत मुक्त व्यापार की नीति को छोड़ने का दौर प्रारंभ हुआ, क्योंकि इस प्रतिस्पर्द्धा के कारण स्वदेशी बाजार पर राष्ट्रीय नियंत्रण तथा समुद्रपार के देशों में प्रभाव क्षेत्रों का विस्तार करना जरूरी हो गया। खराब फसलों, कम कीमतों और समुद्रपार के कृषि उत्पादनों के भारी आयात के कारण यूरोपीय कृषि में जब मंदी का दौर आ गया, तब कृषक वर्ग ने संरक्षण की माँग की, जिसे राज्य ने स्वीकार किया। उद्योगपतियों ने अपने-अपने उद्योगों को बाहरी प्रतिस्पर्द्धा से बचाने के उद्देश्य से कृषक वर्ग की इन माँगों का तुरंत समर्थन किया। परिणाम यह हुआ कि 1870 ई. से शुरू होने वाले अधिकांश यूरोपीय देशों ने अपनी-अपनी अर्थव्यवस्थाओं को सुदृढ़ करने तथा तथाकथित विश्वव्यापी मंदी का सामना करने के प्रयास में आयात शुल्क दरें फिर से लागू कर दीं।

9.7 चार्टिस्ट आन्दोलन (CHARTIST MOVEMENT)

इंग्लैण्ड में सुधार आन्दोलन के सन्दर्भ में **'चार्टिस्ट आन्दोलन'** का महत्वपूर्ण योगदान है। यह मजदूर आन्दोलन था जो सुधार आन्दोलन के विकास की प्रतिक्रिया स्वरूप उदित हुआ। इस आन्दोलन के बारे में यह कहा गया है कि **"आर्थिक कठिनाइयों पर आधारित यह एक राजनीतिक आन्दोलन था, जिसका अन्तिम लक्ष्य था उग्रवादी सामाजिक क्रांति। इसे मजदूरों द्वारा प्रारंभ किया गया। राष्ट्रीय जागृति एवं स्व-शिक्षा का आन्दोलन भी कहा गया है।"**

चार्टिस्ट वर्ग के उदय की स्थितियाँ

इंग्लैण्ड के इतिहास में चार्टिस्ट आंदोलन का अपना महत्व है। यह आंदोलन अपनी असफलता के बावजूद इंग्लैण्ड के लिए हितकारी साबित हुआ। चार्टिस्ट आंदोलनकर्ताओं का इंग्लैण्ड के संसदीय सुधार के इतिहास में अभूतपूर्व स्थान है। यह वर्ग श्रमिकों का समर्थक था। इंग्लैण्ड के आधुनिक इतिहास में श्रमिकों का यह प्रथम संगठित आंदोलन था। उस समय के साहित्य पर भी इसका असर पड़ा। साहित्य में सामाजिक बुराइयों की चर्चा की जाने लगी और सुधारों पर जोर दिया जाने लगा। सामाजिक साहित्य का सृजन होने लगा। कार्लाइल की प्रसिद्ध पुस्तक **"चार्टिज्म पास्ट एण्ड प्रेजेंट"** में आंदोलन द्वारा उत्पन्न असंतोष का आभास मिलता है। कुछ अन्य लेखकों की कृतियों पर आंदोलन का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। जैसे डिसरैली द्वारा लिखित उपन्यास **"सिविल" (1845 ई.), "मेरी बार्टन"** (1848 ई), और **चार्ल्स किंग्स्ले** द्वारा लिखित **"यीस्ट (1848 ई.)"** और **"एल्टन लॉक (1850 ई.)"** उल्लेखनीय हैं। प्रसिद्ध विचारक **जॉन स्टुअर्ट मिल** पर भी चार्टिस्ट आंदोलन का प्रभाव पड़ा था। वह सर्वसाधारण की असुविधाओं से बहुत ही प्रभावित हुआ था। उसने **"पोलिटिकल इकानोमी"** नामक पुस्तक की रचना की थी। उसमें उसने धन के न्यायपूर्वक वितरण का समर्थन किया था। वह धन के समान वितरण के पक्ष में था। इसके लिए वह सरकार के हस्तक्षेप को भी आवश्यक समझता था।

NOTES

इंग्लैण्ड के इतिहास में 1825 ई. से 1950 ई. तक का काल अत्यंत ही महत्वपूर्ण है। इस काल में इंग्लैण्ड में वैचारिक संघर्ष चल रहा था। यह संघर्ष व्यक्तिवाद और समाज के बीच था, परन्तु शनैः–शनैः यह स्पष्ट होता जा रहा था कि व्यक्तिवाद द्वारा शोषण तथा अन्याय का अंत नहीं हो सकता, इसका निराकरण समाजवाद द्वारा ही संभव है। परिणामस्वरूप इस काल में एक ऐसे आंदोलन का जन्म हुआ, जिसका उद्देश्य समाज के आधारभूत सिद्धांतों में आमूलचूल परिवर्तन करके मजदूरों की दशा सुधारने के वेश में सामाजिक क्रांति का प्रयत्न था। **कार्लाइल** के विचार में, **"चार्टिज्म का मामला बड़ा गंभीर, युक्तियुक्त और दूर–दूर तक फैलने वाला है। इसका आरंभ केवल कल ही नहीं हुआ और न ही इसे किसी ढंग से आज या कल समाप्त किया जा सकता है।"** यह मजदूरों द्वारा प्रारंभ किया हुआ राष्ट्रीय जागृति का आंदोलन था, जिसका उद्देश्य मजदूरों का सर्वतोन्मुखी विकास करना था।

1836 ई. से 1848 ई. तक इंग्लैण्ड को आर्थिक परेशानियों एवं राजनीतिक उथल–पुथल का सामना करना पड़ा। मजदूरों की स्थिति उस समय विशेष रूप से शोचनीय थी। इस काल में ही चार्टिस्ट आंदोलन हुआ। इंग्लैण्ड में मजदूर या निम्न वर्ग सामाजिक या राजनीतिक समानता का इच्छुक था। अतएव कुछ नेताओं द्वारा माँगों का एक चार्टर बनाया गया। चार्टर को सरकार से स्वीकृत करने के लिए एक आंदोलन किया। अपनी माँगों को इन आंदोलनकारियों ने क्योंकि एक चार्टर के रूप में प्रस्तुत किया था, इस कारण इस आंदोलन को **"चार्टिस्ट आंदोलन"** के नाम से जाना जाता है। **मिस वैटरिज** के शब्दों में, **"चार्टिस्ट आंदोलन एक ऐसा प्रयत्न था, जिसके द्वारा देश में सामाजिक क्रांति लाने का उद्देश्य राजनीतिक सुधारों के रूप में छिपा हुआ था।"** मैरियट ने चार्टिस्ट आंदोलन के विषय में लिखा है कि चार्टिस्ट आंदोलन की जड़ें पुराने प्रगतिवादी आंदोलन, **ऑवेन, थाम्पस, हॉजस्किन** और दूसरे समाजवादियों के प्रयास और दूसरे समाजवादियों के प्रचार और ट्रेड यूनियन आंदोलन में निहित थीं।

आंदोलन के कारण

1. औद्योगिक क्रांति – इस नगरीय क्रांति के फलस्वरूप इंग्लैण्ड के विभिन्न भागों से आकर मजदूर नवस्थापित औद्योगिक नगरों में बस गये थे। इससे शिक्षा, आवास, सफाई आदि से संबंधित अनेक समस्याएँ उठ खड़ी हुयी थीं। निर्धन लोगों की मुसीबतें बढ़ गयी थीं। उनके वेतन बहुत कम थे तथा पूँजीपति वर्ग के हितों की रक्षा के लिए वस्तुओं के भाव जानबूझकर बढ़ाये जा रहे थे। इससे पूँजीपति अधिक धनी होते जा रहे थे और निर्धन लोगों की निर्धनता बढ़ती जा रही थी। इस प्रकार औद्योगिक क्रांति ने आंदोलन के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ पैदा की थीं।

2. समाजवादी विचारधारा – 1830 ई. के पश्चात् रॉबर्ट ऑवेन, टॉमस एडवुड तथा फीयरगस ओ कॉनर के नेतृत्व में इंग्लैण्ड में समाजवाद के प्रभाव में अत्यंत वृद्धि हो गयी थी। इन समाजवादियों का कहना था कि परिश्रम से ही धन की उत्पत्ति होती है तथा परिश्रम करने वालों द्वारा तैयार की गयी वस्तुओं पर श्रमिक वर्ग का पूर्ण अधिकार होना चाहिए, परन्तु इसके विपरीत उत्पादित वस्तुओं से सबसे अधिक लाभ पूँजीपतियों को होता है, जिससे अमीर और अधिक अमीर होते जा रहे हैं और गरीब और अधिक गरीब। इस प्रकार समाजवादी वर्ग–संघर्ष की शिक्षा दे रहे थे, जिसका जनमत पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा।

3. मताधिकार से वंचित होना – यह कारण भी समाजवादी विचारधारा से जुड़ा मजदूरों से संबंधित है, 1832 ई. के सुधार अधिनियम के पीछे मजदूर वर्ग में व्याप्त असंतोष था। 1832 ई. के सुधार अधिनियम के निर्माता लॉर्ड जॉन रसल ने घोषणा की कि वह भविष्य में किसी प्रकार के सुधार के पक्ष में नहीं है तथा 1832 ई. के नियम को उसने अंतिम सुधार अधिनियम घोषित किया। राजनीतिक अधिकारों से पूर्णतया वंचित श्रमिक वर्ग पूर्ण रूप से असंतुष्ट था और वह अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए इच्छुक था। ये स्मरण रहे कि इस सुधार अधिनियम को

पारित करवाने के लिए मजदूरों ने मध्यम वर्ग के साथ पूर्ण सहयोग किया था, किन्तु इसका लाभ केवल मध्यम वर्ग को मिला।

1837 और 1838 ई. में इंग्लैण्ड में साधारण व्यक्तियों की आर्थिक स्थिति बहुत खराब हो गई थी। उनकी दशा सुधारने के लिए दो संस्थाएँ स्थापित की गईं–चार्टिस्ट वर्ग और अनाज कानून विरोधी संघ। चार्टिस्ट आंदोलन का समर्थन मजदूर वर्ग कर रहा था। इसमें कुशल शिल्पकार, कारगी तथा भूमिहीन मजदूर सम्मिलित थे। चार्टिस्ट आंदोलन चलाने वालों ने उन्हीं तरीकों को अपनाया जो अनाज–कानून विरोधी आंदोलन चलाने वालों ने अपनाये थे।

इस आंदोलन के प्रमुख कारण राजनीतिक तथा सामाजिक दोनों थे, ओवन द्वारा बनाए गए सहवारी मजदूर संघों से मजदूर वर्ग संतुष्ट नहीं था, इसीलिए वह इस आंदोलन में भाग लेने लगा। लंकाशायर तथा यार्कशायर का मजदूर वर्ग आर्थिक कठिनाइयों के कारण उत्पन्न असंतोष के परिणामस्वरूप इस आंदोलन का समर्थक बन गया था। राजनीतिक कारणों में मजदूर वर्ग को 1832 के सुधार बिल से बहुत अपेक्षायें थीं जो पूरी नहीं हुई थीं, इसलिए वे असंतुष्ट थे और आंदोलन का समर्थन कर रहे थे। विलियन लॉवेट तथा फर्गुस ओकोनर इसके प्रमुख नेता थे।

इस आंदोलन के नेताओं ने सन् 1836 में लंदन में **'लंदन वर्किंग मैंस एसोसिएशन'** की स्थापना की। 1838 में लॉवेटे और फ्रांसिस प्लेस ने पीपुल्स चार्टर बनाया व इसमें उन्होंने अपनी पार्टी का राजनीतिक कार्यक्रम बनाया तथा निम्न माँगें प्रस्तुत कीं–

(1) वयस्क पुरुष मताधिकार दिया जाए।

(2) निर्वाचन क्षेत्र इस तरह बनाये जाएँ जिससे मतदाताओं की संख्या बराबर हो।

(3) संसद का सदस्य निर्वाचित होने के लिए संपत्ति की अर्हता न रखी जाए।

(4) संसद के सदस्यों को आर्थिक भत्ता दिया जाए।

(5) चुनाव में गुप्त मतदान कराया जाए।

(6) चुनाव प्रतिवर्ष कराया जाए।

चार्टिस्टों के इस आंदोलन में टॉमस ऐटवुड की 'बर्मिंघम पोलिटिकल यूनियन' भी शामिल हो गई। इस संघ ने पीपुल्स चार्टर बनवाया और संसद के समक्ष राष्ट्रीय याचिका प्रस्तुत करने की योजना बनाई।

आंदोलन का आरंभ एवं स्वरूप

इंग्लैण्ड में जिस उग्र राजनीतिक आंदोलन का जन्म 19वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हुआ, उसे **"चार्टिस्ट आंदोलन"** के नाम से जाना जाता है। 1838 ई. में जब मैलबोर्न मंत्रिमंडल सत्ता में था, तब आंदोलन का नाम "चार्टिस्ट आंदोलन" पड़ा तथा चार्टर के पक्षधर कहलाये। चार्टिस्ट आंदोलन के प्रमुख नेता **फीयर्गस ओकोनर, थॉमस आटवुड तथा विलियम्स लोवेट** आदि थे।

ओकोनर का कार्य क्षेत्र उत्तरी इंग्लैण्ड था, जहाँ मशीनों के प्रयोग के कारण अनेक कारीगर बेकार हो गये थे। यहाँ के लोग मशीनों के विरुद्ध थे। आटवुड का कार्यक्षेत्र बर्मिंघम था। यहाँ मध्य वर्ग तथा मजदूर वर्ग बेरोजगारी को दूर करने के लिए मुद्रा प्रणाली में सुधार कराना चाहते थे। लोवेट का कार्यक्षेत्र लंदन के समीपवर्ती क्षेत्रों में था। यहाँ लोगों का मत था कि सामाजिक व्यवस्था को बदले बिना निर्धनता और बेकारी की समस्या दूर नहीं होगी।

1834 ई. में **राबर्ट ओवेन** द्वारा **"ग्राण्ड नेशनल कन्सोलिडेटेड ट्रेड यूनियन"** की स्थापना की, जिसका उद्देश्य सभी उद्योग–धंधों तथा व्यवसायों पर मजदूरों का नियंत्रण स्थापित

NOTES

करना, व्यावसायिक प्रतिद्वंद्विता समाप्त करना तथा तैयार की हुयी वस्तुओं का न्यायोचित परिश्रम के आधार पर विनियम करना था। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए अनेक उद्योगों में हड़ताल हुयी, परन्तु इसमें ओवेन को सफलता प्राप्त नहीं हुयी। फलस्वरूप "ग्राण्ड नेशनल कन्सोलिडेटेड ट्रेड यूनियन" टूट गयी और उसके साथ ही हड़तालों द्वारा मजदूरों को अपने उद्देश्यों की प्राप्ति की आशा समाप्त हो गयी। तत्पश्चात् मजदूर नेताओं ने अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए राजनीतिक उपायों का प्रयोग करने का निश्चय किया। 1838 ई. में विलियम लॉवेट ने लंदन में असंतुष्ट मजदूरों का एक श्रमिक संगठन किया। विलियम लॉवेट ने बैन्थम के शिष्यों की मदद से जनता का आज्ञा–पत्र तैयार किया। **"जनता का आज्ञापत्र"** में प्रमुख रूप से छः माँगें थीं –

(1) प्रत्येक वयस्क को मताधिकार प्राप्त हो।

(2) संसद का वार्षिक चुनाव हो।

(3) मतदान गुप्त हो।

(4) निर्वाचन क्षेत्र समान हों निचले हाउस ऑफ कामन्स की सदस्यता के लिए जायदाद संबंधी शर्तों की समाप्ति हो।

(5) संसद के सदस्यों को वेतन दिया जाये।

संसद के सम्मुख प्रथम याचिका

चार्टिस्टों ने एक राष्ट्रीय सम्मेलन आयोजित किया। इसमें याचिका पर लाखों लोगों के हस्ताक्षर कराए गए। इस याचिका को संसद के समक्ष प्रस्तुत किया गया। संसद ने याचिका को नामंजूर कर दिया। इसके विद्रोह में बर्मिंघम और न्यूपोर्ट में चार्टिस्ट समूह **'फिजिकल फोर्स पार्टी'** कहलाता था। यह समूह हिंसात्मक तरीकों में विश्वास करता था। जब संसद ने चार्टिस्टों की माँगें ठुकरा दीं तो आन्दोलन का नेतृत्व क्रांतिकारी विचार के नेताओं के हाथों में आ गया। इन्होंने कई स्थानों पर हड़तालें तथा दंगे किये। विसेन्ट को गिरफ्तार किया गया तो मजदूरों की हिंराक भीड़ ने न्यूपोर्ट गें दंगे किये। रोना के गोली चलाने पर तीन चार्टिरट गारे गये।

1882 की दूसरी याचिका

'नेशनल चार्टिस्ट एसोसिएशन' अपने सिद्धान्तों का प्रचार करती रही और उसने 1842 में दूसरा आवेदन–पत्र संसद में प्रस्तुत किया। इस पर तीस लाख लोगों के हस्ताक्षर कराए गए थे। इसे भी संसद ने अस्वीकार कर दिया था। आंदोलनकारियों ने पुनः हड़ताल और आंदोलन किये, परन्तु सरकार ने इन्हें दबा दिया।

तीरारी यचिका

तीसरी याचिका संसद को प्रस्तुत की गई थी। इस याचिका के साथ जाने वाले जुलूस को सरकार ने कुचल दिया। उपर्युक्त माँगों से यह पूर्णतया स्पष्ट हो गया कि यह एक राजनीतिक कार्यक्रम था। चार्टिस्ट आंदोलनकारियों का विचार था कि उन्हें जिन अधिकारों से वंचित रखा गया है, वे ही उनकी आर्थिक–सामाजिक कठिनाइयों के लिए उत्तरदायी हैं।

चार्टिस्ट आंदोलनकारियों ने स्थान–स्थान कर सभाएँ कीं। रसेल ने इन सभाओं की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया और यह कहकर टाल दिया गया कि व्यक्तियों को सभा करने का अधिकार है। रसेल का विश्वास था, **"यदि आंदोलनकारियों को कोई दुःख नहीं होंगे, तो स्वयं ही सभाएँ समाप्त हो जाएँगी।"** किन्तु ऐसी ही एक सभा 1839 ई. में हुयी, जिसमें चार्टिस्ट दल दो भागों में विभाजित हो गया–

(i) **नैतिक शक्ति (मॉरल फोर्स)** में विश्वास रखने वाले जो कि आंदोलन को सांविधानिक रूप से चलाने में विश्वास रखते थे और

(ii) **शारीरिक शक्ति (फिजिकल फोर्स)** के समर्थक, जो कि आंदोलन की सफलता के लिए सशस्त्र विद्रोह आवश्यक समझते थे।

आटवुड ने जून, 1839 ई. को चार्टर की माँगें सदन के समक्ष प्रस्तुत कीं, जिन्हें सदन ने अस्वीकृत कर दिया। इस चार्टर के साथ साढ़े बारह लाख लोगों के हस्ताक्षर शामिल थे। इस चार्टर के अस्वीकृत हो जाने पर शारीरिक शक्ति में विश्वास रखने वाले चार्टिस्ट आंदोलनकारियों ने बर्मिंघम एवं न्यूपोर्ट आदि नगरों में सशस्त्र विद्रोह किये। रसेल ने चार्टिस्ट आंदोलनकारियों की माँगों को साम्यवादियों की माँग कहते हुए उसे दोषयुक्त बताया। फलतः पुनः बर्मिंघम में 15 जुलाई को गंभीर विद्रोह हुआ। इसके पश्चात् नवम्बर में मनमथ शायर के खनिजों ने उपद्रव किया। इस विद्रोह का कारण हेनरी विन्सेन्ट का कैद किया जाना था। इन खनिजों ने बलपूर्वक उसे स्वतंत्र कराने का प्रयास किया, परन्तु प्रशासन के कठोर रुख ने उन्हें तितर–बितर कर दिया। इसमें तीन चार्टिस्ट मारे गये तथा अनेक घायल हुये। न्यूपोर्ट में हुए उपद्रव का दमन होने के परिणामस्वरूप शारीरिक शक्ति के समर्थक चार्टिस्टों का पूर्ण अंत हो गया।

1840 ई. में राष्ट्रीय चार्टिस्ट संघ की स्थापना हुई और दूसरा आवेदन पत्र तैयार करके 1842 ई. में संसद के समक्ष प्रस्तुत किया। इस पर तीस लाख व्यक्तियों के हस्ताक्षर थे, किन्तु संसद ने इसे भी अस्वीकार कर दिया। चार्टिस्टों ने पूरे देश में आम हड़ताल की घोषणा कर दी। सरकार ने कठोर कदम उठाये, बहुत से चार्टिस्टों को जेल में डाल दिया, अनेक को देश निकाला दे दिया और इस प्रकार एक बार फिर आंदोलन को दबाने को सफल हुयी। **मैरियट** ने इंग्लैण्ड की तत्कालीन स्थिति के विषय में लिखा है, **"महान औद्योगिक क्रांति तक इंग्लैंड एक समाज रहा था। खेद है कि उस समाज को गत अर्द्ध–शताब्दी की घटनाओं ने विघटित कर दिया था और उस मानव बंधनों को तोड़ दिया था, जिन्होंने मनुष्य से मनुष्य को और एक वर्ग को दूसरे वर्ग से बाँध रखा था। परिणामतः इंग्लैण्ड परमाणुओं का पुंज मात्र रह गया था, जो अव्यवस्थित, असंतुष्ट एवं वैमनस्यपूर्ण था।"**

1848 ई. की फ्रांसीसी क्रांति के समाचारों से चार्टिस्टों में उत्साह की लहर दौड़ गयी। ओकोनर ने पुनः चार्टिस्ट आंदोलन को गति दी और एक बार फिर चार्टिस्ट आंदोलन उभरकर सामने आया। ओकोनेर नॉदर्न स्टार पत्रिका का संपादक तथा संसद का सदस्य था। ओकोनर ने एक वृहत प्रार्थना–पत्र तैयार किया, जिन्हें चार्टिस्ट आंदोलनकारियों की माँगें सन्निहित थीं। 10 अप्रैल, 1848 ई. को लंदन में एक विशाल आम सभा करने तथा एक बड़े जुलूस को गैरकानूनी घोषित कर दिया। फिर भी केनिंगस्टन के मैदान में आम सभा हुई और जुलूस संसद भवन की ओर रवाना हुआ, किन्तु जुलूस को वेस्टमिन्स्टर पुल से आगे नहीं बढ़ने दिया गया। फिर भी आवेदन–पत्र की जाँच की। जाँच करने पर पता चला कि आवेदन–पत्र में तीस लाख हस्ताक्षर जाली थे। परिणामस्वरूप चार्टिस्ट न केवल बदनाम हुए बल्कि वे संसद सदस्यों के मजाक और विनोद के विषय बन गये और उनका आंदोलन स्वयमेव समाप्त हो गया।

असफलता के कारण

1. इस आंदोलन के असफल होने का एक महत्वपूर्ण कारण योग्य एवं अनुभवी नेताओं का अभाव था। नेताओं में परस्पर विचारों में भिन्नता थी। इनमें कोई भी इतना अच्छा वक्ता नहीं था कि जनता को प्रभावित कर सकता। वे जनता को अपने आंदोलन का उद्देश्य समझाने में सर्वथा असफल रहे।

2. आंदोलनकारियों की एक विषय पर सहमति न थी। वे दो गुटों में विभक्त थे और उनके साधन भी भिन्न–भिन्न थे।

3. चार्टिस्ट आंदोलन की असफलता का प्रमुख कारण था कि उन्होंने जनता में फैले असंतोष को राजनीतिक समझा और उसके लिए गलत उपायों का प्रयोग किया। वस्तुतः जनता

NOTES

में फैला असंतोष सामाजिक एवं आर्थिक कारणों से था, किन्तु पील ने इस समस्या को समझ लिया और आर्थिक एवं सामाजिक सुधार करके व्याप्त असंतोष को समाप्त कर दिया।

4. इसमें संशय नहीं है कि चार्टिस्ट आंदोलनकारियों की माँगें उचित ही थीं परन्तु उन्होंने जिन तरीकों को अपनाया, वे गलत हिंसात्मक उपायों का अनुसरण करने के कारण सरकार ने कडा रुख अपनाया और ये आंदोलन दबा दिया गया।

5. इस समय इंग्लैण्ड के समाज में रूढ़िवादिता का अत्यधिक प्रभाव था और जनता में राजनीतिक ज्ञान का अभाव था। उनमें अभी जागृति उत्पन्न हुयी थीं, इस कारण चार्टिस्ट की माँगें उन्हें आश्चर्यजनक प्रतीत होती थी। वे तत्कालीन समाज के लिए समय से अत्यधिक आगे थीं।

6. चार्टिस्टों ने हस्ताक्षर अभियान चलाया था परन्तु उसमें गंभीर गलतियाँ कीं। इसमें बहुत से हस्ताक्षर झूठे और हास्यास्पद थे। कहीं उसमें **"ड्यूक ऑफ वैलिंगटन"** का नाम था, कहीं पर रानी विक्टोरिया का। कुछ नाम तो बिल्कुल ही झूठे थे जैसे "पग नोज", "नो चीज" आदि। इस प्रकार की अनैतिकता के कारण चार्टिस्ट आंदोलनकारियों की बहुत बदनामी हुयी।

चार्टिस्ट आंदोलन की असफलता के प्रमुख कारण

(i) जनता का समर्थन न मिलना,

(ii) मध्यवर्ग का अनाज–कानून विरोधी आंदोलन से जुड़ना,

(iii) आपसी विभाजन,

(iv) मजदूरों का धीरे–धीरे ट्रेड यूनियनों से जुड़ जाना,

(v) अपर्याप्त साधन और सुविधायें,

(vi) सरकारी सुधारों से मजदूरों की स्थिति में कुछ सुधार होना,

(vii) 1842 के इंग्लैण्ड का निर्यात व्यापार बढ़ा इससे मजदूरों को काम मिलना,

(viii) योग्य नेतृत्व का लगातार अभाव,

(ix) हिंसात्मक तरीके अपनाने से जन समर्थन का न मिलना।

चार्टिस्ट आन्दोलन का महत्व

तत्कालीन रूप से चार्टिस्ट आन्दोलन भले ही असफल रहा, परन्तु इसके दूरगामी परिणाम महत्वपूर्ण रहे। उनके द्वारा रखी गई माँगों या सुधारों के लिए प्रयास अन्य तरीकों से होते रहे। अन्ततः एक माँग को छोड़कर शेष सब शनैः–शनैः स्वीकृत हो गईं। 1867, 1884 तथा 1918 के सुधार बिल द्वारा वयस्क मताधिकार प्राप्त हो गया। 1872 में गुप्त मतदान पद्धति लागू की गई। 1911 के एक्ट के माध्यम से पार्लियामेन्ट के सदस्यों को वेतन देने का नियम बना दिया गया। पार्लियामेन्ट के हर वर्ष चुने जाने की माँग अव्यावहारिक तथा खर्चीली होने से कभी नहीं मानी गई।

यद्यपि चार्टिस्ट आंदोलन असफल हो गया, परन्तु उसके दूरगामी परिणाम निकले। तत्कालीन समाज पर इसने गंभीर प्रभाव डाले। इंग्लैण्ड के आधुनिक इतिहास में श्रमिकों का यह प्रथम संगठित आंदोलन था। उस समय असफल हो जाने पर भी इसने मजदूरों में सहयोग एवं एकता की भावना का संचार किया। टोरी दल, जिसने सुधार अधिनियम का कड़ा विरोध किया था, मताधिकार के विस्तार का आवश्यकता अनुभव करने लगा। डिजरैली ने चार्टिस्टों के विषय में निम्न शब्द कहे थे, **"चार्टिस्ट मध्य वर्ग के विरोधी और श्रमिक वर्ग के हितैषी**

थे। उन्होंने 19वीं शताब्दी में इंग्लैण्ड के आधुनिकीकरण में विशेष योग दिया।" इसी कारण से भविष्य में डिजरैली ने टोरी उदारवाद की नींव रखी और **"यंग इंग्लैण्ड पार्टी"** का निर्माण किया।

कारखाना नियम, खान नियम और सार्वजनिक स्वास्थ्य नियम (1848 ई.) चार्टिस्ट आंदोलन के अप्रत्यक्ष प्रभाव से ही हुये थे। अन्य कानून की समाप्ति पर भी इसका प्रभाव था। अतः इतिहासकार **ट्रेवेलियन** का मत है कि **"इस प्रकार चार्टरवाद ने अप्रत्यक्ष रूप से श्रमिक वर्ग की दशा को उन्नत किया और इस तरह इसके वास्तविक उद्देश्य की कुछ पूर्ति हुई।"** इस प्रकार चार्टिस्ट आंदोलन में इंग्लैण्ड के भावी जनतंत्र के प्रारूप की महत्वपूर्ण बातें थीं। कार्लाइल ने चार्टिस्ट आंदोलन के महत्व को दर्शाते हुये, चार्टिज्म पास्ट प्रेजेन्ट, में कहा है, कि चार्टिस्टों की विषय वस्तु गहरी और व्यापक थी। इसमें ऐसी क्षणिक बातें नहीं थीं, जो कल आरंभ हुई हों और आज या कल ही समाप्त हो जायें।

बोध प्रश्न

1. चार्टिस्ट आंदोलन से आप क्या समझते हैं?

....

....

....

2. चार्टिस्ट आंदोलन का महत्व लिखिये?

....

....

....

9.8 प्रजातंत्र का विकास

पश्चिम यूरोप में उन्नीसवीं सदी के प्रारंभ से निरंकुशतावादी शक्तियाँ कमजोर होने लगीं और राष्ट्रवाद का उदय एक निर्णायक घटना है। राष्ट्रवाद के साथ प्रजातंत्र का विकास आवश्यक घटना है। यह एक ऐसी भावनां है, जिसमें व्यक्ति की भक्ति, विश्वास और आत्मसमर्पण की उच्चतम स्थिति राष्ट्र के प्रति होती है। यूरोप में राष्ट्रवाद के कई रूप सामने आए। इनमें से **"संतुलित राष्ट्रवाद"** राष्ट्र की उन्नति में सहायक होता है। किन्तु राष्ट्रवाद की असन्तुलित अवधारणा और विकास ने, विषम परिस्थितियों एवं युद्धों को जन्म दिया। राष्ट्रवाद के विकास का प्रथम चरण अमेरिका के स्वतंत्रता संग्राम में दिखाई देता है। वहाँ स्वतंत्रता की इच्छा और राष्ट्रवाद की सशक्त अभिव्यक्ति देखी जा सकती है। इसके बाद फ्रांस की क्रांति ने राष्ट्रवाद को यूरोप में प्रसारित करने में मुख्य भूमिका निभाई। फ्रांस में राष्ट्रभक्ति और राष्ट्र प्रेम से ओत–प्रोत प्रसिद्ध **मार्शलीज गीत** की रचना हुई, जो आज भी फ्रांस का **राष्ट्रगीत** है।

फ्रांसीसी क्रांति और उसके बाद नेपोलियन के युद्धों के समय में यूरोप के विभिन्न देशों की जनता में राष्ट्रीयता की भावना का उदय हो चुका था और वह काफी तेजी से विकसित हो रही थी। **जर्मनी** तथा **पोलैण्ड** में राष्ट्रीय जागृति के लक्षण दिखाई दे रहे थे। इटली, हंगरी तथा बाल्कन प्रायद्वीप में भी राष्ट्रीयता की भावना हिलोरे ले रही थी। जनता में व्यक्तिगत स्वतंत्रता की इच्छा का उदय हो रहा था और लोग स्वशासन पाने को उत्सुक हो रहे थे। एक ओर राष्ट्रीयता की बलवती शक्तियाँ उन्नीसवीं शताब्दी में स्थापित होने को संघर्ष कर रही थीं और दूसरी ओर इनकी शक्ति को कम करने तथा इस तरह की भावनाओं को जड़ से उखाड़ फेंकने के प्रयत्न भी हो रहे थे। **मेटरनिख की प्रतिक्रियावादी** नीति इस दिशा में सर्वाधिक सक्रिय थी और

NOTES

वियेना कांग्रेस ने यूरोप का जो पुनर्निमाण किया, उसमें राष्ट्रीयता एवं उदारवाद की भावनाओं को कोई स्थान नहीं मिला और सर्वत्र उनकी उपेक्षा की गयी। इतना ही नहीं कांग्रेस ने यूरोप में फिर से **'पुरातन व्यवस्था'** को प्रतिष्ठित कर दिया। इस तरह यह वह युग था जब इसमें राष्ट्रवाद और प्रतिक्रियावाद दोनों ही भावनाएँ एक दूसरे को विस्थापित करके स्वयं को प्रतिष्ठित करने के प्रयत्न में संलग्न थीं।

यूरोप में राष्ट्रीयता की भावना के विकास और पोषण में **उदारवाद** एवं **प्रजातंत्र** की भूमिका महत्वपूर्ण रही। सामान्यतः उदारवाद का अर्थ **मर्यादित स्वतंत्रता** और समानता से है और उसका लक्ष्य अधिकांश क्षेत्रों को नियंत्रण से मुक्त करना था। उदारवादी व्यक्तिगत स्वतंत्रताएँ, जैसे–**भाषण, लेखन, सभा–संगठन तथा निजी सम्पत्ति की सुरक्षा** को सुनिश्चित करना चाहते थे। वे यह भी चाहते थे कि निर्वाचित विधानमण्डलों वाली संवैधानिक सरकारों का निर्माण हो। वे मताधिकार को विस्तृत तो करना चाहते थे किन्तु सार्वजनिक नहीं। प्रारम्भ में उदारवाद सीमित मताधिकार और व्यक्तिगत अधिकारों की संवैधानिक गारण्टी के साथ लोकप्रिय हुआ। उदारवादी उन्मुक्त व्यापार (लैसेज फेयर) के समर्थक थे। वे सरकारी मामलों में धार्मिक हस्तक्षेप का विरोध करते थे। उदारवाद का विरोध करने वालों में राजा, अभिजात वर्ग, पादरी और सैनिक अधिकारी ही थे। उदारवाद का प्रसार सर्वप्रथम पश्चिमी यूरोप में हुआ और पश्चिम यूरोप में भी उन्हीं देशों में जहाँ औद्योगिक क्रांति हो चुकी थी।

सैद्धांतिक रूप से राष्ट्रीयता अठारहवीं शताब्दी के बौद्धिक आन्दोलन से अनुप्रमाणित थी, जिसने असमानता और निरंकुश शक्ति की कड़ी आलोचना की। राष्ट्रवादी संसदीय प्रणाली और विधि–नियम के पक्ष में तो थे किन्तु यह वर्ग गरीबों एवं मजदूरों को मताधिकार देने के पक्ष में नहीं था। यह वर्ग चाहता था कि सामाजिक सुधार हों किन्तु ऐसा इसलिए चाहता था कि वे तानाशाही शासन से स्वयं को बचाने में सफल हों। वे संवैधानिक राजतंत्र का निर्माण इसलिए चाहते थे, जिससे उन्हें सम्पन्न बनने में बाधा न हो। यह ज्ञातव्य है कि 1870 ई. के बाद राष्ट्रवादियों का स्वरूप बदल गया। अब तक मध्यम वर्ग सम्पत्ति एवं सत्ता हथिया चुका था तथा अब वह और अधिक राजनीतिक एवं सामाजिक परिवर्तनों का विरोध करने लगा था। अब औद्योगिक मध्यम वर्ग का रवैया अनुदारवादी हो गया और उसका स्थान औद्योगिक सर्वहारा वर्ग ने ले लिया। 1870 ई. के पश्चात् उदारवाद एवं राष्ट्रवाद का अन्योन्याश्रय सम्बंध न रहा। राष्ट्रवाद ने भी आक्रामक अथवा उग्र रूप धारण कर लिया था। दूसरी ओर नए उदारवाद ने आर्थिक मामलों में अधिकाधिक सरकारी हस्तक्षेप की माँग की। राष्ट्रवाद के बदले रुख को निम्न–मध्यम वर्ग और सर्वहारा उदारवादी जनतंत्र के लिए खतरा मानता था।

राष्ट्रवाद का आदर्श धर्मनिरपेक्षता के आदर्श के बिना अधूरा प्रतीत होता है। फ्रांस की राज्य क्रांति के फलस्वरूप यूरोपीय देशों में धर्मनिरपेक्ष राज्य की स्थापना का मार्ग प्रशस्त हो गया। **हॉलिआक** को पश्चिमी यूरोप में धर्म निरपेक्षता का जनक माना जाता है। उसने धर्मनिरपेक्षता का अपना अभियान 1846 ई. आस–पास प्रारम्भ किया था। उसने अपने विचार **"प्रिंसीपल ऑफ सिक्युलरिज्म"** तथा **"ओरिजन एण्ड द नेचर ऑफ सिक्युलरिज्म"** में व्यक्त किये। उसने लिखा है, **"धर्म–निरपेक्षता का सिद्धांत है, जो जीवन के तत्काल कर्त्तव्य के रूप में सम्भावित उच्चतम बिंदु तक मानव के नैतिक और बौद्धिक स्वभाव के विकास की खोज करता है।"** धर्मनिरपेक्षता के सिद्धांत के प्रचार के फलस्वरूप यूरोपीय देशों में राष्ट्रीयता की भावना बलवती होने लगी। राष्ट्रीयता की भावना ने परम्परागत रूढ़िवादी शक्तियों को चुनौती देकर उदारवादी प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन दिया।

एक विचारधारा के रूप में राष्ट्रीयता के उदय से पूर्व उदारवाद का आरम्भ सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दियों में हो गया था। उदारवाद का व्यवस्थित विकास इंग्लैण्ड में हुआ। राजनीतिक सिद्धांत के रूप में उदारवाद का आरम्भ **थामस हॉब्स** से माना जा सकता है पर इसकी स्पष्ट अभिव्यक्ति **जॉन लॉक** की रचनाओं में मिलती है। **मान्तेस्क्यू, टॉमस, पेन** आदि ने उदारवाद

के विकास में योगदान दिया। **एडम स्मिथ, रिकार्डो, माल्थस, जरमी बैन्थम, जॉन स्टुअर्ट मिल** आदि ने आर्थिक क्षेत्र में हस्तक्षेप का सिद्धांत दिया। अठारहवीं शताब्दी के उदारवाद ने मुक्त व्यापार तथा समझौते पर आधारित अर्थव्यवस्था, जिसमें राज्य का हस्तक्षेप न हो, का समर्थन किया। इस प्रकार का उदारवाद नकारात्मक उदारवाद कहलाया, किन्तु उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के उदारवाद ने सार्वजनिक हित के नाम पर व्यक्ति की स्वतंत्रता में राज्य के हस्तक्षेप को स्वीकार किया। इस प्रकार का उदारवाद सकारात्मक उदारवाद कहलाया। लास्की तथा मैकाइवर ने भी आवश्यक सेवाएँ राज्य के हाथों में रखने की वकालत की। **टी.एच. ग्रीन** ने सामाजिक बुराइयों, जैसे–अज्ञानता, नशाखोरी तथा भिक्षावृत्ति के उन्मूलन के लिए राज्य द्वारा सकारात्मक भूमिका के निर्वाह की दलील दी।

लोकतंत्र का उदय एक सिद्धांत के रूप में यूरोपीय देशों – इंग्लैण्ड की शानदार गौरवपूर्ण क्रांति तथा फ्रांस की क्रांति के परिणामस्वरूप हुआ। इंग्लैण्ड की शानदार गौरवपूर्ण क्रांति ने इस धारणा को जन्म दिया कि **व्यक्ति की स्वतंत्रता इतनी पावन है कि कोई भी सत्ता उसकी अवहेलना नहीं कर सकती**। यह **संकल्पना राष्ट्रीयता** और लोकतंत्र की जीत थी।

प्रजातंत्र और राष्ट्रीयता उस राजतंत्रीय शक्ति के प्रत्युत्तर के रूप में जन्मी, जिसका यह दावा था कि दैवी अधिकारों के आधार पर राजा की शक्ति निरंकुश होती है। इंग्लैण्ड में राजा की शक्ति के विरुद्ध सम्पन्न वर्ग की चेतना राष्ट्रीयता के रूप में मुखरित हुई क्योंकि राजा ने संसद की सहमति के बिना प्रजा पर कर आरोपित करने चाहे थे। फ्रांस में भी राष्ट्रीयता राजतंत्र के विरुद्ध एक प्रतिक्रिया के रूप में प्रकट हुई क्योंकि वहाँ राजा ने राजनीतिक प्रसंगों पर चर्चा तथा बहस रोकने की चेष्टा की थी।

उन्नीसवीं शताब्दी में राजनीतिक निरंकुशता और सामाजिक समानता का पुरातन स्वरूप बना रहना मुश्किल था। यूरोप ने फ्रांसीसी क्रांति का स्वाद चखा था। बाद में थोड़ी कड़ुवाहट भले ही लगी हो, शुरू की सुखद स्मृतियाँ अविस्मरणीय थीं। क्रांति की जो व्यावहारिक उपलब्धियाँ थीं और जिन्हें नेपोलियन भी नकार न सका था, वे नेपोलियन की विजयों के साथ यूरोप में पहुँच चुकी थीं। यूनानी स्वाधीनता आन्दोलन के क्रांतिकारी सैनिक टी. **कोलोकोटरेन्स** के शब्द फ्रांसीसी क्रांति की उपादेयता का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करते हैं– **"मेरे विचार से फ्रांसीसी क्रांति और नेपोलियन के कृत्यों ने दुनिया को आँखें दी हैं। क्रांति से पूर्व राष्ट्रों को कुछ भी ज्ञान नहीं था। लोग सोचते थे कि पृथ्वी पर राजा ईश्वर का रूप है, अतः वे राजा के कृत्यों की प्रशंसा करने के लिए विवश थे।"** राष्ट्रवादी चेतना तेजी से बढ़ रही थी, परन्तु प्रतिक्रियावादी शक्तियां भी सक्रिय थीं। ऐसी प्रतिगामी ताकतें राजनीतिक क्षेत्र में ही नहीं वरन् आर्थिक और सामाजिक जीवन में भी आच्छादित होने को आतुर थीं, किन्तु औद्योगिक क्रांति और मध्यम वर्ग के बढ़ते प्रभाव के विरुद्ध मध्ययुगीन कृषि व्यवस्था और सामन्ती समाज का पोषण अब सम्भव नहीं था।

वियेना कांग्रेस में एकत्रित हुए राजनीतिज्ञों ने अपनी समझ एवं अपने अनुभव के आधार पर यूरोप का पुनर्निर्माण, किया था तथा उन्होंने उन्नीसवीं शताब्दी के आधुनिकतावादी मूल्यों के लक्षण – राष्ट्रीयता, उदारवाद एवं लोकतंत्रीय भावनाओं से यूरोप को दूर रखने की अपनी प्रतिज्ञा को दुहराया था लेकिन उन्होंने नए अंकुरित मूल्यों और चेतना को पहचानने में गलती की थी। फ्रांस की महान क्रांति ने उदारवाद के आदर्श का यूरोप में सर्वत्र बीज बो दिया था, जो बड़ी तेजी से अंकुरित हो रहा था। राष्ट्रीयता एवं लोकतंत्र की शक्तियाँ वियेना में एकत्र राजनीतिज्ञों को, जिन्होंने यूरोप में फिर से **"पुरातन व्यवस्था"** को बहुत हद तक प्रतिष्ठित किया था, चुनौती दे रही थीं।

1815 ई. का प्रारम्भ बड़े व्यापक संघर्ष के साथ हुआ। यूरोप के सम्मिलित राष्ट्रों ने नेपोलियन को पराजित तो कर दिया था, किन्तु नेपोलियन की पराजय से जनता के अधिकारों का प्रश्न

NOTES

हल नहीं हो सका। आगामी काल में फ्रेंच क्रांति तथा पुरातन व्यवस्था के परस्पर विरोधी सिद्धांतों का संघर्ष जारी रहा। एक ओर उदारवाद, प्रजातंत्र, राष्ट्रीयता तथा क्रांति की प्रगतिशील शक्तियाँ काम करती रहीं और दूसरी ओर निरंकुशता, स्थितिपालकता आदि अनेक नामों से पुकारी जाने वाली प्रतिक्रिया की शक्तियाँ उनका दमन करने का प्रयास करती रहीं। यूरोप के सभी देशों में यह संघर्ष किसी न किसी रूप में दिखायी देता है। ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस, स्पेन – जैसे देशों में, जहाँ राष्ट्रीय एकता पहले से ही थी और जो स्वतंत्र थे, जनता निरंकुश शासन का अंत कर अपने अधिकारों की प्राप्ति का प्रयत्न कर रही थी। इस तरह वहाँ आन्दोलन उदारवादी और जनतंत्रवादी था। जो देश विभक्त थे, जैसे – जर्मनी और इटली, या पराधीन थे, जैसे पोलैण्ड तथा आयरलेण्ड, उनमें जनता राष्ट्रीय विभाजन को मिटाकर राष्ट्रीय एकीकरण तथा विदेशी शासन से मुक्ति के लिए स्वतंत्र संघर्ष कर रही थी। इन देशों में आन्दोलन मुख्यतः राष्ट्रवादी था, किन्तु इसके साथ ही वहाँ की जनता अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील थी और इस तरह वहाँ आन्दोलन का पहलू जनतंत्रवादी भी था। उन्नीसवीं शताब्दी में यूरोप में जितने भी संघर्ष हुए, उन सबकी जड़ों में एक आधारभूत प्रश्न यह था कि **"राज्यों के शासन प्रबंध में उन लोगों का सहयोग कहाँ तक प्राप्त किया जायेगा, जो सम्बंधित राज्यों के निवासी हैं।"** इटली के एकीकरण और जर्मनी के एकीकरण का आधार भी यही प्रश्न था।

1815–1890 ई. का युग राजनीतिक दृष्टि से असफलता का युग था क्योंकि यह मूलतः संघर्ष का युग था। पुरातन व्यवस्था की पुनर्स्थापना तथा क्रांति के सिद्धांतों के मध्य होने वाले संघर्ष की असफलता इसमें निहित है कि संघर्ष का कोई निर्णायक हल नहीं निकला। एक ओर तो यूनान की स्वतंत्रता, बेल्जियम का हॉलैण्ड से अलग होना, फ्रांस में जुलाई, 1830 ई. में बूर्बों वंश का अपदस्थ किया जाना तथा ब्रिटेन में 1832 ई. के सुधार कानून का पारित होना तथा भविष्य में प्रतिक्रिया के गढ़, आस्ट्रिया में ही मेटरनिख (आस्ट्रिया का चांसलर) को निकाल बाहर किया जाना आदि तथ्य इसके सूचक थे कि यूरोप के प्रतिक्रियावादी शासक महाद्वीप की जनता पर अपने विचारों और पुरातन व्यवस्था को थोपने में सफल न हो सके, दूसरी ओर यूरोप में 1830 ई. एवं 1848 ई. की क्रांतियों की असफलता एवं महाद्वीप के अधिकांश देशों में स्वेच्छाचारी शासन इस तथ्य के प्रमाण थे कि राजनीति के क्षेत्र में नये सिद्धांत अपने को स्थापित न कर सके तथा ऐसा करने में उन्हें समय लगेगा, परन्तु देर–सवेर राष्ट्रवाद की विजय हुई।

1815 के बाद की ई. में यूरोप में उन सरकारों का राज्य था, जो किसी भी प्रकार के परिवर्तन के विरुद्ध थीं तथा शासन में अपनी स्वेच्छाचारिता को बनाये रखना चाहती थीं। सामाजिक दृष्टि से ये सरकारें कुलीनवर्गीय थीं तथा अपने को रूढ़िवादी उस युग में स्थापित करना चाहती थीं, जबकि यूरोप के आर्थिक व बौद्धिक परिवर्तन उसे समाज से अलग–थलग करते जा रहे थे। दुर्भाग्य से यूरोपीय शासक वर्ग ने उदारवाद को क्रांति के बराबर मान लिया, अतः उसे शांति एवं सुरक्षा के लिए खतरा बताने लगा। यह अनुदारवादी रवैया वहाँ प्रबल था, जहाँ मध्यम वर्ग कमजोर था और व्यापार एवं उद्योग की प्रगति पिछड़ी हुई थी। इस दौर में यूरोप में यातायात के साधनों का विकास हुआ, जनसंख्या में वृद्धि हुई, नये उद्योग–धंधों की स्थापना की गयी और विभिन्न देशों के मध्य व्यापार की वृद्धि हुई। इन आर्थिक क्रियाओं ने यूरोप के बुर्जुआ वर्ग को पुष्ट कर उसे समाज का नेतृत्व प्रदान किया। चूंकि समाज का नया वर्ग शासन को अपनी इच्छा और आदर्शों के अनुरूप ढालना चाहता था, अतः उदारवाद को शक्ति प्राप्त हुई।

इस युग के पूर्वार्द्ध में प्रतिक्रियावादी शक्तियों के मजबूत होने के बावजूद राष्ट्रवाद की प्रवृत्ति में वृद्धि हुई, किन्तु लोकतंत्र के विकास की गति मन्द पड़ गई, क्योंकि कुलीन और जागीरदार वर्ग लोकतंत्रवाद का विरोधी था। सर्वधारण जनता में अभी ऐसी जागृति उत्पन्न नहीं हुई थी कि वह लोकतंत्रात्मक शासन की स्थापना के लिए संघर्ष करती। लोकतंत्रवाद के समर्थक केवल मध्य वर्ग के वे लोग थे, जो नये विचारों से प्रभावित थे। लोकतंत्रवाद के विरुद्ध राष्ट्रीयता की भावना का समर्थन सभी वर्गों के लोगों द्वारा किया जाने लगा था। राजा व जागीरदार वर्ग के लोग

भी इसके समर्थक थे, क्योंकि राष्ट्रीयता द्वारा उन्हें अपने उत्कर्ष का अवसर मिलता था। राष्ट्रीयता के नाम पर वे उन प्रवृत्तियों का विरोध कर सकते थे, जो मध्य वर्ग को शासन–संबंधी अधिकारों व सुधारों के लिए प्रेरित कर रही थीं। यह मान्य तथ्य है कि राष्ट्रीयता की भावना राज्य के उत्कर्ष में सहायक होती है। इन सबके परिणामस्वरूप 1815 ई. के बाद के काल में यूरोप में राष्ट्रवाद की भावना का प्रसार तेजी से हुआ। राष्ट्रवाद की भावना ने निरंकुशता से लड़ने और उदारवादी प्रवृत्तियों का उदय दिखाई देता है। यह माँग की जाने लगी कि प्रजातंत्र की आवश्यकताओं के रूप में लोकतंत्रीय शासन स्थापित हो, प्रतिनिधिक संसदें हों, पूर्ण वयस्क–पुरुष मताधिकार हो, धार्मिक सहिष्णुता हो और समाचार पत्रों पर किसी प्रकार का बंधन नहीं रहे। कहीं–कहीं यह भी माँग उठी कि कृषि सम्बंधी अथवा उद्योग सम्बंधी छोटे–बड़े सुधार भी किये जायें। इस प्रकार की प्रवृत्तियाँ इंग्लैण्ड, फ्रांस, स्पेन, स्वीडन आदि राष्ट्रों में देखने को मिलती हैं।

यह स्मरण रहे कि राष्ट्रवादियों ने शुरू में अक्सर उदार कार्यक्रमों का समर्थन किया लेकिन वे राजनीतिक स्वतंत्रता के प्रति अधिक चिंतित एवं जागरूक थे। स्वराज्य पर उनका ज्यादा जोर था, बनिस्बत राज्य प्रणाली के। उनका तर्क था कि समान भाषा, समान रीति–रिवाज तथा समरूप संस्कृति के लोगों का अधिकार है कि वे अपनी स्वयं की राजनीतिक संस्थाएँ बनाएँ। इसके लिए वे स्वनिर्णय के अधिकार के आधार पर सार्वभौम सम्प्रभुता सम्पन्न राष्ट्र का निर्माण चाहते थे। उदारवाद, लोकतंत्रवाद, राष्ट्रीयता आदि नवीन प्रवृत्तियों के परिणामस्वरूप पश्चिमी यूरोप सहित शेष यूरोप में भी नये शासन–विधानों का निर्माण किया गया। एक अनुमान के अनुसार 1800 ई. के मध्य यूरोप के देशों में जो नये शासन विधान बने, उनकी संख्या 300 के ऊपर थी। जिन देशों में क्रांति द्वारा नई सरकारों की स्थापना होती थीं। उनमें तो नये शासन–विधान का निर्माण होता ही था, पर अन्य देशों में भी समझदार राजा लोकमत की बढ़ती हुई शक्ति का अनुभद कर रियायत के तौर पर शासन–विधान का निर्माण करते थे, ताकि जनता को आंशिक रूप से संतुष्ट कर क्रांति से देश की रक्षा की जा सके। धीरे–धीरे यूरोप से स्वेच्छाचारी शासन का अन्त होने लगा। 1815 ई. से 1871 ई. के मध्य प्रतिक्रियावादी और उदारवादी शक्तियों के बीच संघर्ष होता रहा, परन्तु अंत में उदारवाद की ही विजय हुई। बेल्जियम की स्वाधीनता, इटली और जर्मनी का एकीकरण इस युग की नवीन प्रवृत्तियों के परिणाम थे।

1830 ई. का वर्ष यूरोप के इतिहास में क्रांति का वर्ष रहा। छूत के रोग की तरह फ्रांस से आरम्भ होकर क्रांति की बीमारी सम्पूर्ण यूरोप में फैल गयी, परन्तु 1830 ई. की ये क्रांतियाँ बेल्जियम के अपवाद को छोड़कर राष्ट्रीय उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए नहीं हुई थीं। वे मूलतः विभिन्न देशों की जनता के उस विरोध की सूचक थीं, जिसका प्रदर्शन उसने अपने शासकों की रूढ़िवादी नीति के विरुद्ध किया। इस प्रकार ये मुख्य रूप में राष्ट्रवादी एवं उदारवादी क्रांतियां थीं।

फरवरी, 1848 ई. में फ्रांस से शुरू हुई क्रांति का प्रसार यूरोप के अन्य राष्ट्रों में भी हुआ। 1850 ई. के मध्य यूरोप में क्रांति समाप्त हो गयी। क्रांति असफल रही। कई सफलताएँ क्षणिक रहीं। उदारवाद और राष्ट्रीयता की शक्तियाँ परास्त हुईं और प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ विजयी हुईं। अधिकांश राज्यों में निरंकुश राज्यों में निरंकुश शासन पुनः स्थापित हो गया तथापि 1848 ई. की क्रांति सर्वथा निष्फल नहीं रही। क्रांति का दमन हो जाने के बाद राष्ट्रवाद की गति कुछ समय के लिए रुक गई किंतु प्रगतिशील विचारधाराओं को सदैव के लिए नहीं दबाया जा सका। क्रांति काल में किये गये कुछ परिवर्तन उसी प्रकार बने रहे। सार्डीनिया, हॉलैण्ड और डेनमार्क में क्रांति के फलस्वरूप स्थापित वैधानिक शासन कुछ अंशों में बना रहा। स्विट्जरलैण्ड में 1848 ई. में, जो प्रजातंत्रीय एवं संघीय गणतंत्र बना, वह स्थायी हो गया। 1850 ई. में इटली में सार्डीनिया ही एक मात्र वैधानिक एवं उदारवादी राज्य था। 1850 ई. के पश्चात् उदार संविधानवादी विचारधारा पश्चिमी यूरोप में किसी न किसी रूप में बनी रही। 1848 ई. की क्रांति के बारे में कहा जा सकता है कि इससे पुरानी राजनीतिक एवं सामाजिक मान्यता ही बदल गयी। क्रांतिकारियों ने राजाओं की प्रभुसत्ता, राज्यों के स्थान पर राष्ट्रों और आनुवांशिकता के स्थान पर बौद्धिकता को स्थापित

NOTES

यूरोप तथा मध्य यूरोप में संसदीय संस्थाओं का काफी विकास हुआ। वोट देने व व्यापक विस्तार हुआ। प्रजातंत्रीय संस्थाओं के प्रभाव में, मताधिकार के आधार म पर नियंत्रण करने की समर्थता में काफी अन्तर होते हुए भी यह कहा जा सकता यूरोप ही नहीं लगभग सम्पूर्ण यूरोप में प्रजातंत्रीय संस्थाएँ पनपने लगी थीं। यहाँ र है कि रूढ़िवादी तथा सुधारवादी दोनों ही वर्ग के लोग वोट की जादुई शक्ति में थे। रूढ़िवादी लोग यह सोचते कि जनसाधारण को मताधिकार देने से राजतंत्री तथा पारम्परिक व्यवस्था सभी अस्त–व्यस्त हो जायेंगे, इसलिए रूढ़िवादी तथ मताधिकार को वयस्क पुरुष मताधिकार तक भी विस्तारित करने के पक्ष में नहीं यह आशा करते थे कि मताधिकार से सामंतों तथा अभिजात वर्ग के विशेषाधि जायेंगे, परन्तु लोगों का यह सोच ठीक नहीं निकला कि मताधिकार से नाटकी जायेंगे। जिस तरह फ्रांस में एक रूढ़िवादी संसद "पेरिस कम्यून" (1871 ई.) का जर्मनी में चान्सलर बिस्मार्क विभिन्न तरीकों का प्रयोग करके लोक सभा पर नि कर सका, उससे यह स्पष्ट हो गया कि जनमत निजी सम्पत्ति बनाए रखने के प से परिवर्तन लाने के विपक्ष में था। यही वह समय था जब उग्रराष्ट्रवाद का

9.9 सारांश

लोकतंत्र का उदय एक सिद्धांत के रूप में यूरोपीय देशों–इंग्लैण्ड की शा क्रांति तथा फ्रांस की क्रांति के परिणामस्वरूप हुआ। इंग्लैण्ड की शानदार गौर धारणा को जन्म दिया कि व्यक्ति की स्वतंत्रता इतनी पावन है कि कोई सत्ता उ नहीं कर सकती। यह संकल्पना राष्ट्रीयता और लोकवेल की जीत थी।

9.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

अपनी प्रगति की जाँच करें
Test your Progress

दीर्घोत्तरीय प्रश्न

(1) इंग्लैण्ड में उदारवाद के विकास पर लेख लिखिये।

(2) 1832 के सुधार अधिनियम की विशेषताओं का वर्णन कीजिये।

(3) 1832 के अधिनियम की प्रमुख धाराओं का वर्णन कीजिये।

लघु उत्तरीय प्रश्न

(1) 1832 के सुधार अधिनियम द्वारा किये गए परिवर्तनों का वर्णन कीजिये

(2) चार्टिस्ट आन्दोलन पर एक निबन्ध लिखिये।

(3) पश्चिमी यूरोप में लोकतंत्र और राष्ट्रवाद के विकास को रेखांकित कीजि

विकल्प

1. चार्टिस्ट आंदोलन हुआ था–

(अ) फ्रांस (ब) इंग्लैंड (स) आस्ट्रिया (द) चीन

उत्तर 1. (ब)

9.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

विश्व इतिहास (18वीं, 19वीं सदी – डॉ. संजीव जैन, कैलाश पुस्तक स

●●●

सुझाव पत्र (विद्यार्थियों के लिये)

नाम —
नामांकन नं. —
फोन नं.—
ई—मेल आईडी —

कार्यक्रम का नाम —
कोर्स का नाम —
सत्र —

प्रिय छात्र—छात्राओं,

विश्वविद्यालय के द्वारा दूरस्थ शिक्षण संस्था में पंजीकृत छात्र—छात्राओं को दी जाने वाली पाठ्यसामग्री को हमेशा बेहतर बनाने का प्रयास रहा है। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु आपके विचार एवं सुझाव आंमत्रित है, कृपया आपको प्रदान की जाने वाली पाठ्य—सामग्री के संबंध में अपने विचार एवं सुझाव 500 शब्दों में लिखकर प्रेषित करें, ताकि उक्त विचार एवं सुझाव का अमल करते हुये हम अपने पाठ्य सामग्री को और अधिक सरल, सहज एवं रोचक बनाया जा सकें।

सुझाव —

....

....

....

....

....

....

....

....

....

छात्र का नाम एवं हस्ताक्षर

सुझाव पत्र (विषय विशेषज्ञ/पाठ्यक्रम समन्वयक/कार्यक्रम समन्वयक के लिये)

नाम – | पद –

विभाग/विषय – | पता –

फोन नं.– | सत्र –

ई–मेल आईडी –

प्रिय विषय विशेषज्ञ/पाठ्यक्रम समन्वयक/कार्यक्रम समन्वयक,

विश्वविद्यालय के द्वारा दूरस्थ शिक्षण संस्था में पंजीकृत छात्र–छात्राओं को दी जाने वाली पाठ्यसामग्री को हमेशा बेहतर बनाने का प्रयास रहा है। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु आपके विचार एवं सुझाव प्रार्थनीय है, कृपया आप इस पाठ्य–सामग्री के संबंध में अपने विचार एवं सुझाव 500 शब्दों में लिखकर प्रेषित करें, ताकि उक्त विचार एवं सुझाव का अमल करते हुये हम अपने पाठ्य सामग्री को और अधिक सरल, सहज एवं रोचक बनाया जा सकें।

सुझाव –

....

....

....

....

....

....

....

....

....

धन्यवाद,

नाम एवं हस्ताक्षर